नव नाथ चरित्र

एवं सिद्धांत सार

Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लेखन एवं सम्पादन
रामलाल श्रीवास्तव

संकलन एवं प्रस्तुति
प्रकाशनाथ शास्त्री

प्रकाशक
श्री सरस्वती प्रकाशन
सैन्ट्रल बैंक के पीछे, चूड़ी बाजार, अजमेर
☎ 0145-2425505

मुद्रक : भवानी प्रिन्टर्स, तोपदड़ा, अजमेर ☎ 620416

मूल्य 120 रुपये

प्रस्तुत पुस्तक विषय

एक नजर में

भारतवर्ष तथा (विश्व) में नाथ-सम्प्रदाय अपनी एक विशेष प्रतिभा लिये प्राचीन वर्षों से आज भी विद्यमान है। नाथ सन्तों में कुछ सिद्धनाथ-सन्त प्रमुख हैं। जिनकी सम्पूर्ण जीवनी एवम् उनके सिद्धान्त हमने कठिन परिश्रम करके आपके समक्ष प्रस्तुत किये हैं।

-प्रकाशक

भारतीय नाथ सम्प्रदाय

की

सर्वोच्च

गोरखपुर–पीठ

को

सादर समर्पित

रामलाल श्रीवास्तव

प्रकाशनाथ शास्त्री

विषय सूची

क्रम.सं.		पेज संख्या
1.	आदिनाथ शिव	11
2.	महायोगी गोरखनाथ	25
3.	कविनारायण मत्स्येन्द्रनाथ	74
4.	अन्तरिक्ष नारायण जालन्धरनाथ	100
5.	करभाजन नारायण गहिनीनाथ	123
6.	हरिनारायण भृर्तहरिनाथ	132
7.	प्रबुद्ध नारायण कानिपानाथ	150
8.	पिप्पलायन नारायण चर्पटीनाथ	170
9.	द्रुमुल नारायण गोपीचन्दनाथ	183
10.	चमस नारायण रेवणनाथ	197
11.	आविर्होत्र नारायण नागनाथ	201
12.	नवनाथ उपदेशामृत	206

अपनी बात

नाथ शब्द नाथृ धातु से बना है, जिसके याचना, ऐश्वर्य, उपताप (तापों को तप से समाप्त करना), आशीर्वाद आदि अर्थ है। यथा-नाथृ याचओपतापैश्वर्याशी: इति पाठिनि:।

अत: जिससे ऐश्वर्य, आशीर्वाद, कल्याण मिलता है वह नाथ हैं। नाथ शब्द का सामान्य अर्थ-स्वामी, प्रभु, मालिक आदि लगाया जाता है। योगी नरहरिनाथ जी के अनुसार नाथ यानि न+अथ जिसका अर्थ नहीं अर्थात् इससे आगे कोई तत्व नहीं। अगर कोई इस ब्रह्माण्ड की सीमा से पार है तो वह नाथ है। इस प्रकार नरहरि नाथजी शास्त्री ने नाथ-सम्प्रदाय को अनादि बताया।

विश्व के प्रचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के दशम पटल के सूक्त १३० में नाथ के बारे में कहा गया है-

को अद्धावेद: इह प्रवोचस्कत आजात कुत इंय वि सृष्टि।
अवीग्देवा अस्य विसर्जने नाथा को वेदयत आवाभूथ शंभूयति।।

यह सृष्टि कहाँ से हुई? इस तत्व को कौन जानता है? किसके द्वारा हुई? क्यों हुई? कब हुई? इत्यादि विषय के समाधान कर्ता व पथ दृष्टा "नाथ" ही है। अथर्ववेद में भी "नाथित" औरं "नाथ" शब्द का प्रयोग मिलता है। शक्ति संगम तंत्र के अनुसार "नाथ" तत्व मोक्ष प्रदान करता है, ब्रह्म का अनुमोदन और अज्ञान का स्थगन करता है-

श्री मोक्षदान दक्षत्वात् नाथ ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिताज्ञान विभवात श्रीनाथ इति गीयते।।

इस महान नाथ धर्म (नाथ-सम्प्रदाय) का शुभारंभ आदिनाथ भगवान शिव ने किया। वे इस सम्प्रदाय के प्रथम नाथ, निर्माता, नियंता, मार्ग प्रदर्शक हैं। आदिनाथ शिव द्वारा संस्थापित, अवलोकितेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा पोषित

तथा गुरु गोरखनाथ द्वारा अनुप्राणित-प्रचारित-प्रसारित और नाथ सिद्धों एवं सत योगियों द्वारा साधित मार्ग ''नाथ सम्प्रदाय'' कहा जाता है। इसे नाथ-पंथ भी कहते हैं।

नाथ-सम्प्रदाय की परम्परा में नव नाथ-चौरासी सिद्ध बहुत प्रसिद्ध हुये हैं, जिन्होंने नाथ-सम्प्रदाय का विराट स्तर पर प्रचार-प्रसार किया। ये नव नाथ-चौरासी सिद्ध कौन-कौन हुये ? कहना आसान नहीं है, क्योंकि इस बारे में काफी शास्त्रीय मतभेद हैं। महार्णव तंत्र, भक्त मंजरी माल, सुधाकर चन्द्रिका, तेलगु नवनाथ चरित्रम, चिंतामणि-विजय, अग्नि पुराण, भारद्वाज संहिता, प्राण तोषणी तंत्र, योगी सम्प्रदाय विकृति आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, तेलगु, जोधपुर, मारवाड़, चीन, नेपाल की परम्पराओं में नव नाथ-चौरासी सिद्धों के नामों में मतभिन्नता हैं। इस मतभेद के विषय में नेपाल के नरहरिनाथजी का कथन है कि-अति प्राचीन और विश्व व्यापक होने के कारण नव नाथ-चौरासी सिद्धों के नाम रूपों में देश द्वीप भेद से पाठ भेद अनेक मिलते हैं, जो स्वाभाविक है। किन्तु वर्तमान नाथ-सम्प्रदाय के १८-१२ पंथों में प्रसिद्ध व प्रचलित नव नाथ क्रमशः ये हैं-

आदि नाथ सदाशिव हैं, जिनका आकाश रूप।
उदयनाथ पार्वती पृथ्वी रूप जानिये।
सत्यनाथ ब्रह्माजी, जलस्वरूप मानिये।
विष्णु संतोषनाथ, जिनका है तेज रूप।।
अचल है अचंभे नाथ जिनका शेष रूप।
गजबेली कन्थड़नाथ, हस्ति रूप जानिये।।
ज्ञान पारखी वो सिद्ध है, जो चौरंगी नाथ,
अठार भार वनस्पति रूप जानिये।।

दादा श्री मत्स्येन्द्रनाथ, जिनका है माया रूप।
गुरु गोरखनाथ ज्योति रूप जानिये।
बालक ये त्रिलोक नव नाथों को नमन करें।
नाथजी ये बालक को अपना ही मानिये।।

नव नाथों के इसी नाम क्रम से नव नाथ नवकम्, नव नाथ जाप, नव नाथ स्वरूप, नव नाथ माला, नव नाथ स्तवन आदि बने हैं।

श्री मद भागवत, भविष्य पुराण के अनुसार- १. कवि, २. हरि, ३. अन्तरिक्ष, ४. प्रबुद्ध, ५. पिप्पलायन, ६. आविर्होत्र, ७. द्रुमिल, ८. चमस और ९. करभाजन- ये नव नारायण के स्वरूप हैं। योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ के अनुसार आदिनाथ शिव की प्रेरणा से कविनारायण ने मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में, हरिनारायण ने भर्तृहरि नाथ के रूप में, अन्तरिक्ष नारायण ने जालंधर नाथ के रूप, प्रबुद्ध नारायण ने कानिपा नाथ के रूप में, पिप्पलायन नारायण ने चर्पटी नाथ के रूप में, आविर्होत्र नारायण ने नाग नाथ के रूप में, द्रुमिल नारायण ने गोपीचंद नाथ के रूप में, चमस नारायण ने रेवण नाथ के रूप में और कर भाजन नारायण ने गहिनी नाथ के रूप में अवतार लिया और भक्तिमार्ग व योग महाज्ञान का प्रचार-प्रसार किया। नाथ परम्परा में आदिनाथ शिवनाथ सम्प्रदाय के निर्माता, नियंता, प्रथम नाथ एवं मार्गदर्शक होने तथा गोरखनाथ जी के साक्षात् शिव स्वरूप शिवावतार ''शिव-गोरक्ष'' होने के कारण दोनों (आदिनाथ शिव व गुरु गोरखनाथ) नव नाथों की उक्त परम्परा में सम्मिलित नहीं है।

नव नाथों के सम्बन्ध में उपरोक्त अवधारणा का पोषण यथेष्ट है। श्री सिद्धनाथ तीर्थ की निम्न रचना भी इस धारणा को पुष्ट करती है-

ॐ नमो: नव नाथ गण, चौरासी गोमेश।
आदिनाथ आदि पुरुष, शिव गोरक्ष आदेश॥
शिव गोरख आदेश, मछन्दर, ज्वाला, करणी, नाग।
गहनी, चरपट, रेवण, वन्दो गोपी भरथरी जाग॥
नव दुर्गा–नव नाथ में, रच्यो वन्ध्यो जग व्योम।
सिद्धनाथ की वन्दना, सोहम साखी ओऊम॥

ये नव नाथ गण आज भी जीवित हैं तथा वे काल दण्ड को खंडित कर ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहे हैं। वे अपने भक्तों-उपासकों को दर्शन देकर वर प्रदान करते हैं। नव नाथों के चरित्र के अध्ययन, मनन और चिन्तन से जीवन में सद्गति का उदय होता है, परम गति की प्रतिष्ठा होती है। ''नव नाथ चरित एवं सिद्धांत सार'' के प्रकाशन से लोक मानस में मानवता का मांगलिक मार्ग प्रशस्त हो सकेगा, ऐसी आशा है।

1. नाथ सम्प्रदाय के निर्माता

आदिनाथ शिव

नाथयोग ही नहीं, सम्पूर्ण योगदर्शन आदिनाथ महायोगेश्वर शक्तिमान पार्वतीवल्लभ भगवान शिव है। योगोपदेशमृत उनके सहज कृपा साम्राज्य की अक्षय श्रीनिधि है। यद्यपि योगीसम्प्रदाया विष्कृति ग्रन्थ मे वर्णित नवनारायणों के रूप में नवनाथचरित्र, महार्णव तन्त्र, सुधाकरचन्द्रिका, नेपाल परम्परा, वर्णरत्नाकार आदि में नवनाथों के उल्लेख में उनके सम्बन्ध में विभिन्न संकल्पनायें मिलती हैं और किसी-किसी सूची में वर्णित नागनाथ के नाम को गोरक्षनाथ के नाम का पर्याय तक स्वीकार कर लिया गया है, तथापि यह निर्विवाद है कि आदिनाथ के रूप में शिव ही नाथ-सम्प्रदाय की परम्परा में महायोगज्ञान के आदि उपदेष्टा हैं। महायोगी गोरखनाथजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना "गोरक्षपद्धति" में यह मत व्यक्त किया है कि योगशास्त्र आदिनाथ (शिव) के मुखकमल से निःसृत (वचनामृत) है। उनका कथन है कि योगशास्त्र का ही नित्यपाठ करना चाहिए, अन्य (दर्शन) शास्त्रों के विवेचन से क्या प्रयोजन है। यह योगशास्त्र आदिनाथ के मुखकमल से प्रकट है।

आदिनाथ शिव ही नाथसम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक हैं और उन्हीं के योग ज्ञानामृत का कल्पवृक्ष नाथयोग है। सिद्धपुरुष योगिराज गम्भीरनाथजी महाराज ने योग रहस्य में शिव की योगीश्वरता का प्रतिपादन करते हुए कहा है-'शिव योगीश्वर हैं। वे योगी, ज्ञानी, सन्यासी और मुमुक्षुओं के आदर्श हैं। वे नित्य एकरूप रहते हैं। महायोगीश्वर शिव के तत्वज्ञानदीप्त और परमानन्दमय, परवैराग्य

प्रतिष्ठ और परम प्रेममण्डित, आत्मसमाहित और जीवानुग्रहतत्पर, प्रशान्त, मधुर और ज्योतिर्मय महामूर्ति का ध्यान करते-करते तन्मयता प्राप्त हो जाने पर संसारासक्ति अपने अनजान में ही विनष्ट हो जाती है, अन्तःकरण अनायास ही सब संकीर्णता, रागद्वेष और अभिमान से अव्याहति पा जाता है, सहज ही अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की स्फुरणा होती है और विश्वहित में स्वार्थ-त्याग की प्रवृत्ति स्वभाव बन जाती है।'

शिवोपदिष्ट नाथयोग पर प्रकाश डालते हुए भगवती पार्वती ने योगबीज के आरंभ में शिव की आदिनाथ के रूप में जो वंदना की है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि योगज्ञान आदिनाथ शिव की ही देन है तथा शिव ही आदिनाथ हैं।

देवी पार्वती के वचन है -

नमस्ते आदिनाथाय विश्वनाथाय ते नमः।
नमस्ते विश्वरूपाय विश्वातीताय ते नमा॥
उत्पतिस्थितिहसंहारकारिणे क्लेशहारिणे।
नमस्ते देवदेवेश! नमस्ते परमात्मने॥
योगमार्गकृते तुभ्यं महायोगीश्वराय ते।
नमस्ते परिपूर्णाय जगदानन्ददहे तवे॥

(योगबीज १-३)

हे आदिनाथ (अलखनिरंजन, स्वस्वरूप परमेश्वर)! समस्त विश्व के पालक विश्वनाथ! आप को नमस्कार है। हे विश्व में व्यापक विश्वरूप! आप को नमस्कार है। हे विश्वातीत, (द्वैताद्वैतविवर्जित) अखण्ड परमात्मस्वरूप, निराकार, निर्विकार स्वसंवेद्य महेश्वर! आप को नमस्कार है। उत्पत्ति (सृष्टि), स्थिति

(पालन और रक्षण) तथा संहार (लय) करनेवाले, क्लेश-दैहिक, दैविक, भौतिक तापों का तथा जन्ममरणस्वरूप दुःखों का नाश करनेवाले, देवों के देव (महादेव)! आप को नमस्कार है। परमात्मा परमेश्वर! आपको नमस्कार है। (जीवात्मा-परमात्मा के सामरस्यरूप) योग-मार्ग के प्रवतर्क, महायोगियों के ईश्वर (महायोगीश्वर) परात्पर-अखण्ड बोधस्वरूप, परिपूर्ण समस्त जगत् में आनन्दरूप में अभिव्यक्त-जगदानन्दकारण परमेश्वर! आप को नमस्कार है। गोरखनाथजी की दृष्टि से नाथ-योग के प्रवर्तक-उपदेष्टा साक्षात् आदिनाथ शिव ही हैं-इसकी पुष्टि पार्वतीकृत उपर्युक्त आदिनाथ वन्दना में परिलक्षित है। पार्वती ने 'योगबीज' रचना के अन्त में शिव की योग राज के रूप में पुनः वन्दना की है।

महायोगी जालन्धरनाथ द्वैताद्वैतविलक्षण नाथ तेज की वन्दना में श्रीशिव के सहज रूप से स्वरूप का जो समन्वयात्मक वर्णन सिद्धांत वाक्य में किया है, उससे भी यही सिद्ध होता है कि नाथ-योग के आदि उपदेष्टा आदिनाथ भगवान् शिव ही हैं, जिनका अनुग्रहमय विग्रह योगमुद्रओं, त्रिशूल, नाद तथ भस्म आदि में समलंकृत है।

नाथसिद्ध भगवान् आदिसिद्ध-आदिनाथ शिव की ही योगपरम्परा के अनुवर्ती हैं। नाथ उन लोगों का बोध करता है, जिन्होंने न केवल परमात्मतत्व का अपनी साधना द्वारा प्रत्यक्ष-अनुभव कर लिया हो, प्रत्युत जो इस प्रकार पूर्ण सफल बन कर उसके तद्रूप तक भी हो चुके हों और जो दूसरों के लिये आदर्श कहे जा सकते हों। नाथ सिद्ध शब्द का एक पर्यायवाची शब्द नाथयोगी भी हैं, जिसमें जुड़े 'योगी' को 'सिद्ध' से भिन्न नहीं कहा जा सकता। शिव आदिनाथयोगी अपना आदिनाथ सिद्ध हैं।

परम तत्व निस्सन्देह नाथस्वरूप तत्व है, यह योगतत्व है। इस योगतत्व के प्रकाशक साक्षात् भगवान् शिव आदिनाथ ही है। महायोगी गोरखनाथजी ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में स्वीकार किया है कि देदीप्यमान शिव ही तत्वकर्ता हैं -

योगतत्व शिवतत्व का ही वाचक अथवा पर्याय है। नाथस्वरूप अथवा नाथतत्व का अत्यन्त मार्मिक विवेचन 'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' में उपलब्ध होता है। कहा गया है कि जो अद्वैत के ऊपर वर्तमान हैं तथा साकार-निराकार से परे हैं, उन नाथ से निराकार ज्योतिस्वरूप नाथ उत्पन्न हुए। उनसे साकार नाथ (योगोपदेष्टा पार्वतीपति शंकर) की उत्पत्ति हुई।

ना का अर्थ है नादरूप—अनादिरूप और 'थ' का अर्थ है स्थापित होना। नाथ घट-घट में व्याप्त परमशिव परमात्मा अलख निरञ्जन हैं। थकार सदा तीनों भुवनों को स्थापित करता रहता है।

नाथसम्प्रदाय में नाथ—परमेश्वर ही परम उपास्य तत्व हैं, वे देवताओं के लिये भी अगोचर अविनाशी तत्व हैं, योगस्थ योगी ही उनके चरणों का ध्यान करता है।

गिरिजारमण भगवान् शिव के चरितसमुद्र का पार पाना वेदों के लिये भी कठिन हैं, क्योंकि वे वेदातीत स्वसंवेद्य महेश्वर हैं। 'नाथसिद्धों की बानियाँ,' में 'अथनाथ सिद्धबंदना लिष्यत' के अन्तर्गत प्रेमदास ने आदिनाथ की वन्दना के क्रम में मत्स्येन्द्र और गोरखनाथजी का जो नामोल्लेख किया है, उससे भी स्पष्ट हो जाता है कि आदिनाथ ही शिव हैं।

गुजरात प्रदेश में बड़ौदा के सन्निकट दर्भावती (डभोई) के किले में नाथसिद्धों की मूर्तियों के साथ आदिनाथ की मूर्ति उपलब्ध हैं, जो उनके शिवस्वरूप का परिचायक हैं। महोयागी गोरखनाथजीने

'सिद्धसिद्धान्पद्धति' में शिव की व्यापक महिमा का विवेचन करते हुए आदिनाथ का तात्विक चिन्तन किया है। नाथयोग के मूल पुरुष के रूप में शिवतत्व की व्याख्या में गोरखनाथजी का कथन है कि सर्वशक्तिमान् होने से ही आदिनाथ शिव सूक्ष्म, स्थूल, समस्त भौतिक पदार्थों में परमकारण परमेश्वर हैं। वे अपने स्वरूप में परात्पर हैं, चैतन्यस्वरूप सब में व्यापक हैं, रुद्र, विष्णु आदि रूपों में अवतरित होने में समर्थ हैं। शक्ति युक्त होने पर वे सर्वसमर्थ है, शक्ति रहित होने पर कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं। अपनी निजाशक्ति से युक्त होनेपर ही वे विश्व के साक्षी—आभासक है।

नाथयोग की अभिव्यक्ति आदिनाथ शिव के ही अनुग्रह का फल है। 'योगबीज' में वर्णन है भगवती पार्वती ने शंकर से पूछा कि सभी जीव सुख दुःखरूप मायाजाल से वेष्टित हैं, उनकी मुक्ति किस तरह हो। आप मोक्षप्रद मार्ग-योगमार्ग का वर्णन कीजिये। शंकर ने कहा कि हे देवताओं की अधीश्वरी पार्वती! मैं नाथमार्ग, सिद्धामृतमार्ग का वर्णन करता हूँ, इसका आश्रय ग्रहण करने पर सभी जीव, जो संसार-बंधन में ग्रस्त हैं, मुक्त हो जाते हैं। यह सर्व सिद्धिकर मार्ग है।

पार्वतीजी ने अपने बार-बार अवतार-ग्रहण को ध्यान में रखकर पूछा कि अज्ञान के कारण ही संसाररूप जीवकी उत्पत्ति है और सत्स्वरूप का ज्ञान होने पर वह मुक्ति-पद प्राप्त करता है। योगकी साधना से इनका क्या कार्य सिद्ध होता है। शंकर ने समाधान किया कि चाहे कोई ज्ञाननिष्ठ हो, चाहे विरक्त, धर्मज्ञ और विजितेन्द्रिय हो, बिना योग के कोई—देवता भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

यद्यपि शिव (शक्तिमान्) और पार्वती (शक्ति) में रञ्जमात्र भी भेद नहीं है, दोनों-के-दोनों चन्द्रमा और चन्द्रिका के समान

अभिन्न हैं, तथापि योगज्ञान प्राप्त करने की पात्रता शिव ने शक्ति में ही सुरक्षित रखी और यही कारण है कि नाथयोग का उपदेश शंकर ने पार्वती को प्रदान किया।

अपने भक्त में अनुरक्त—अनुग्रहयुक्त होने पर ही शिवजी योगानुशासन का सयदुपदेश प्रकाशित करते हैं।

शिवजी ने जब भगवती पार्वती को योगोपदेश—नाथयोगज्ञान प्रदान किया, तब दैवयोग से उसका, श्रवण योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ ने किया और उनके द्वारा महायोगी गोरखनाथ ने उसे ग्रहण किया। इस तरह आदिनाथ भगवान् शंकर द्वारा उपदिष्ट योगज्ञान-परम्परा अद्यपर्यन्त नाथ सम्प्रदाय में ग्रहीत होती आ रही है। इस परम्परा का आधार अन्य योगशास्त्रों के अतिरिक्त नारदपुराण में उपलब्ध होता है। आदिनाथ भगवान् महेश्वर ने मणिप्रदीप्त सप्तश्रृंग पर भगवती उमा से योगतत्वोपदेश—महाज्ञान का वर्णन आरम्भ किया। भगवती के निद्राभिभूत होनेपर मत्स्य के उदर से निकल कर मत्स्येन्द्रनाथ ने यह योगतत्वोपदेश सुना। उन्होंने भगवान् शंकर को देवीसहित नमस्कार कर समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया। महेश्वर शिव ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी गोद में बैठाकर उनका मुख चूमा और अपना पूत्र सिद्धनाथ मत्स्यनाथ कहा।

महाराष्ट्रीय नाथसम्प्रदायपरक गुरुपरम्परा में सबसे पहले आदिनाथ के ही नाम का उल्लेख हैं। सतं योगी ज्ञानेश्वर ने नारदपुराण की सप्तश्रृंग पर पार्वती के प्रति शिवोपदिष्ट योगपरम्परा की पुष्टि अपने गीताभाष्य ज्ञानेश्वरी में की है। ज्ञानेश्वर महाराज का कथन है—

क्षीरसमुद्र के तट पर श्रीशंकर ने, न जाने, कब एक बार शक्ति-पार्वती के कान में जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्र की

लहरी में किसी मत्स्य के पेट में गुप्त मत्स्येन्द्रनाथ के हाथ लगा। मत्स्येन्द्रनाथ सप्तशृंग पर्वत पर चौरंगीनाथ से मिले, जिनिके हाथपाँव लूले थे। मिलते ही चौरंगीनाथ पूर्णाङ्ग हो गये। अचल समाधि का उपभोग लेने की इच्छा से मत्स्येन्द्रनाथ ने उपदेश गोरखनाथ को दिया। इस तरह उन्होंने योगरूपी कमलिनी के सरोवर, विषयों को विध्वंस करने वाले एक ही वीर शंकर के रूप में उस पद पर अभिषिक्त किया। शंकर से प्राप्त वह अद्वैतानन्द-वैभव गोरखनाथ से गहिनीनाथ ने ग्रहण किया। वे सब प्राणियों को कलिकाल से ग्रस्त देखकर दौड़ आये और निवृत्तिनाथ को यह आज्ञा दी कि आदिगुरु शंकर के शिष्य-परम्परा अनुसार हमें जों ज्ञाननिधि प्राप्त हुई हैं, उसे लेकर कलि के जीवों की रक्षा करो। इस तरह संत ज्ञानेश्वर ने स्वीकार किया है कि नाथ-सम्प्रदाय में योगज्ञान-निधि के आदि उपदेष्टा भगवान् आदिनाथ शंकर हैं।

महाराष्ट्रीय परम्परा की ही तरह बंगीय परम्परा में भी आदिनाथ को ही योगज्ञान का आदि उपदेष्टा स्वीकार किया गया है। फैजुल्लाकृत 'गोरक्षविजय' और श्यामदास कृत 'मीन चेतन की कथा में वर्णन है (बगला साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ९३७, लेखक सुकुमारसेन)—आद्य और आद्या ने पहले देवताओं की सृष्टि की। बाद में चार सिद्धों की उत्पत्ति हुई। एक कन्या भी हुई—गौरी। आद्य के आदेश से शिव ने गौरी से विवाह किया। चार सिद्ध थे मीननाथ, गोरक्षनाथ, हाडिफा (जालन्धरनाथ) और कानफा (कृष्णपाद), गौरी ने शिव के गले में मुण्डमाला देखकर उसका कारण पूछा। शिव ने बताया कि ये मुण्ड गौरी के ही है। गौरी ने कहा कि क्या कारण है कि आप मरते नहीं और गौरी मरती रहती हैं। शिव ने कहा कि यह गुप्त रहस्य है। चलो, हम लोग क्षीर-सागर

में डोंगी पर बैठ कर वार्तालाप करें, इस सम्बन्ध में जानकारी होगी। दोनों क्षीरसागर में पहुँचे और इधर मीननाथ मछली के रूप में डोंगी के नीचे बैठ गये। देवी को शिव का ज्ञानोपदेश सुनते-सुनते जब नींद आ गयी, तब भी मीननाथ हुँकारी भरते रहे। इस आवाज से जब देवी की नींद टूट गयी, तो उन्होंने कहा कि मैंने महाज्ञान सुना ही नहीं। शिव ने डोंगी के नीचे मीननाथ को देखा। उन्होंने शाप दिया कि एक समय तुम यह महाज्ञान भूल जाओगे। आदिगुरु शिव कैलाश पर चले गये। इस तरह आदिनाथ से मीननाथ ने (नाथ-) योगज्ञान प्राप्त किया।

महाराष्ट्रीय—मराठी साहित्य में मध्यकालीन शैव-वैष्णव परम्परा की समन्वयवादी भागवतधर्मपरक दृष्टि से 'योगिसम्प्रदायाविष्कृत' रचना अत्यन्त महनीय है। यह कृति संत ज्ञानेश्वर की कही जाती है। जो भी हो, इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में नवयोगीश्वरों के संदर्भ-प्रस्तुतीकरण के माध्यम से नवनारायणों को नवनाथों की संज्ञा प्रदान की गयी हैं। वे ऋषभदेव के उनकी पत्नी इन्द्रकन्या जयन्ती से उत्पन्न नवपुत्र कविनारायण हरिनारायण, अन्तरिक्ष नारायण, प्रबुद्धनारायण, पिप्पलायन नारायण, आविर्होत्र नारायण, द्रुमिल नारायण, चमस नारायण और करभाजन नारायण हैं। ऋषभदेव को आदिनाथ कहा गया है। इन नवों नारायणों को 'भागवत धर्मदर्शना' (श्रीमद्भा. ५।४।१२) कहा गया है। कहा जाता है कि दिगम्बर सन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिये शुद्ध सत्वमय विग्रह स्वयं भगवान् ऋषभदेव के रूप में प्रकट हुए।

नामदेव, निवृत्तिनाथ, संतयोगी ज्ञानेश्वर से लेकर परम भागवत संत तुकारामजी महाराज आदिपर्यन्त संत-महात्माओं की अचल

निष्ठा भगवान् पण्ढरीनाथ - रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण में थी और साक्षात् गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को श्रीकृष्ण मन्त्र प्रदान कर कृतार्थ किया था। मत्स्येन्दनाथ से गोरखनाथ जी ने और गोरखनाथ जी से गहिनीनाथ ने नाथयोग का उपदेश ग्रहण किया, जिसका प्रवर्तन आदिनाथ ने किया था। अतएव यह स्पष्ट है कि भागवत धर्म-वारकरीमत और शैवनाथयोग के समन्वय के मूलाधार आदिनाथ शिव का ही योगोपदेश है।

'हठयोगप्रदीपिका' की नाथसम्प्रदाय में अमित मान्यता है। उसके रचतिया ने (हठयोगप्रदीपिका १। ५) में आदिनाथ और तत्पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ से ही योगज्ञान की उपदेश-परम्परा का पोषण किया है।

श्रीआदिनाथमत्स्येन्द्रशाबरानन्दभैरवाः।
चौरंगोमीनगोरक्षविरूपाक्षविलेशयाः।

(हठयाग्रप्रदीपका १। ५)

उपर्युक्त श्लोक के भाष्य में महामति ब्रह्मानन्द ने अपनी 'ज्योत्सना' टीका में भगवान् आदिनाथ शिव द्वारा पार्वती के प्रति उपदिष्ट योगज्ञान और मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा उसके श्रवण का महत्व व्यक्त किया है। ब्रह्मानन्द का कथन है —'आदिनाथः शिवः सर्वेषां नाथानां प्रथमो नाथः। ततो नाथसम्प्रदायः प्रवृत्तइति नाथसम्प्रदायिनो वदन्ति। मत्स्येन्द्राख्यश्च आदिनाथ शिष्यः। अत्रैवं किंवदन्ती— कदाचिदादिनाथ कस्मिंश्चिद् द्वीपे स्थितः तत्र विजनमिति मत्वा गिरिजायैः योगमुपदिष्टवान्। तीरसमीपनीरस्थः कश्चन मत्स्यः तंयोगोपदेशं श्रुत्वा एकाग्रचित्तो निश्चलकायोऽवतस्थे। तं तादृशं दृष्ट्वानेन योगः श्रुतः इति तं मत्वा कृपालुरादिनाथो जलेन प्रोक्षितवान्। स च प्रोक्षणमात्राद्दिव्यकायो मत्स्येन्द्रः सिद्धोऽभूत।

तमेव मत्स्येन्द्रनाथ इतिवदन्ति।' इसका आशय यह है कि आदिनाथ शिव ही समस्त नाथों में आदिनाथ हैं। नाथसम्प्रदायी कहते हैं कि इन्हीं नाथ से नाथसम्प्रदाय प्रवर्तितहै। मत्स्येन्द्र आदिनाथ के शिष्य हैं। इस सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि एक बार आदिनाथ किसी द्वीप में स्थित थे, उस स्थान को निर्जन और एकान्त मानकार उन्होंने भवगती गिरिजा (पार्वती) को योगज्ञान का उपदेश दिया। तीर के समीप नीर में स्थित एक मत्स्य ने उस उपदेश का श्रवण किया और वहाँ एकाग्रचित्त तथा निश्चलकाय—स्थिर होकर स्थित था। उसको उस हालत में देखकर कृपालु आदिनाथ ने सोचा कि इसने योगज्ञान का श्रवण कर लिया है। उन्होंने उस पर जल छिड़का। जल से छिड़कने मात्र से वह दिव्य काय मत्स्येन्द्र सिद्ध हो गया। उन्हीं मत्स्येन्द्र सिद्ध को मत्स्येन्द्रनाथ कहा जाता है। ज्योत्सना टीकाकार ब्रह्मानन्द के इस मत से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके समय में आदिनाथ की यह योगपरम्परा अत्यन्त प्रसिद्ध थी।

यह नितान्त निर्विवाद है कि भगवान् आदिनाथ शिव ने नाथयोगज्ञान का सर्वप्रथम प्रतिपादन किया तथा गौरक्षरूप में साक्षात् अभिव्यक्त होकर उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा स्थापित परम्परा का संरक्षण किया। इस तथ्य का रहस्योद्घाटन स्वयं महायोगी गोरखनाथजी ने अपनी 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' रचना में किया है।

वेद, स्मृति और अन्य सभी शास्त्रों में योगमार्ग से श्रेष्ठ अन्य मार्ग है ही नहीं, इस योगमार्ग का निर्वचन साक्षात् शिव ने प्राचीन काल में किया है। तन्त्र और योग के महाज्ञान के समन्वय के धरातल पर आदिनाथ शिव की षोडशनित्यातन्त्र में वन्दना की मान्यता 'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह' में प्रस्तुत कर संग्रहकर्त्ता ने आदिनाथ शिव की योगोपदेष्टा के रूप में महिमा स्वीकार की है।

महायोगी गोरखनाथजी कृत 'योगबीज' में शिव ने योग-क्रम पर प्रकाश डालते हुए भगवती पार्वती से कहा है कि योग ही परम पुण्य है, योग ही परम सूक्ष्म ज्ञान है, योग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

आदिनाथ-प्रवर्तित महायोगमार्ग एक है। जन्मान्तर के भेद से यह दो प्रतीत होता है। यह क्रम से प्राणवायु के अभ्यास से प्राप्त होता हे। एक ही शरीर से निरन्तर धीरे-धीरे योगाभ्यास से चिरकाल में सिद्धि प्राप्त होती हैं। यह मर्कटक्रम हैं।

यदि बिना योगसिद्धि के ही प्रमाद से शरीर नष्ट होता है तो पहले ही वासना से युक्त होने पर साधक दूसरा शरीर पाता है। तदन्तर पुण्य से सद्गुरु के संग से पश्चिम सुषुम्ना-द्वार के मार्ग से सिद्धि-फल मिलता है। पहले जन्म के अभ्यास से तत्काल फल मिलता है। यह काकमत है।

योग-साधना प्रक्रिया के समस्त प्रधान अंग—आसन, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम नादानुसन्धान, कुण्डलिनी-जागरण, अमनस्कता आदि का प्रकाशन नाथयोग के परिक्षेत्र में भगवान् आदिनाथ की ही देन हैं, इन अंगों पर महायोगेश्वर आदि नाथ के सांगोपांग निर्देशन योगशास्त्र में उपलब्ध होते हैं। स्वसंवेद्य परमात्म तत्व अलखनिरञ्जन का अन्तर्साक्षात्कार ही आदिनाथ द्वारा प्रतिपादित योग का विशिष्ट प्राप्तव्य—प्रतिपाद्य है।

जितने प्रकार के जीव हैं, उतने ही प्रकार के योगासान हैं, उनके समस्त भेद शिवजी जानते हैं। शिवजीने चौरासी लाखआसनों में से प्रत्येक का अच्छी तरह वर्णन किया है। चौरासी आसनों को उनमें मुख्य बताया है।

इसी तरह शैव अथवा नाथयोग के मुख्य अंग मुद्राबन्ध-साधना पर कहा गया है कि श्रीआदिनाथ द्वारा (महामुद्रा, महावेध, महाबन्ध,

खेचरी, उड्डयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी आदि सम्बन्धी योगमहाज्ञान) उपदिष्ट आठ ऐश्वर्यों वाला योगवाङ्मय सभी सिद्धों को प्रिय और देवताओं के लिये दुर्लभ है।

आदिनाथ शम्भु ने ही दस प्रमुख मुद्राओं का प्रकाशन किया है।

हठयोगप्रदीपिका के रचयिता ने कहा है कि श्रीआदिनाथ शिव ने चित्त को आत्मस्वरूप में लय करने की सवा करोड़ विधियाँ बतायी हैं। वे सभी सिद्धिदायिनी हैं।

आशय यह है कि सम्पूर्ण हठयोगविद्या ही भगवान् आदिनाथ शिव की देन है। हठयोगविद्या को नाथयोग-साधना में अमित महत्व दिया गया है। हठयोगप्रदीपिका के रचयिता ने ग्रन्थ में मंगलाचरण में हठयोग के प्रकाश आदिनाथ शिव की वन्दना की है -

श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै
येनापदिष्टा हठयोगविद्या।

(हठयोगप्रदीपिका १।१)

नाथयोग का चरम साधन अमनस्कयोग—तारकयोग स्वीकृत है। वामदेव और शिव के सम्वाद के रूप में महायोगी गोरखनाथ ने इस सम्वाद का अपने 'अमनस्कयोग' ग्रन्थ में प्रकाशन किया इसेस स्पष्ट कहा गया है कि कैलाश के शिखर पर आसीन सर्वज्ञ और सर्वग शिव से वामदेव ने मुक्तिप्रद उपाय पूछा था। शिव ने कृपापूर्वक कहा था।

भगवान् आदिनाथ ने पार्वती को सावधान किया है कि मेरे द्वारा उपदिष्ट नाथयोगज्ञान शिवभक्तों—शैव (योगियों) को ही देना चाहिये। यह परम गोपनीय है।

यह सिद्ध हो गया कि नाथयोगपार्ग शैवयोग-मार्ग है और आदिनाथ शिव द्वारा उपदिष्ट योगज्ञान के अनुवर्ती नाथसिद्धों और नवनाथों द्वारा रससिक्त योगामृत का समुद्र है।

भगवान् आदिनाथ के उपदेश का सारतत्व यह है कि ईश्वर आदि जितने भी देवता हैं, वे सब एक ही परमात्मा में देखे जा सकते हैं। शरीर आदि सभी जड़ पदार्थ उसी एक विद्या (महाशक्ति) में निहित होने के कारण आत्मा से भिन्न प्रतीत होते हैं। आत्मा से भिन्न जो कुछ भी है, वह कल्पना मात्र है, उसे किसी ने भी सत्य नहीं माना। एक सत्ता से परिपूर्ण यह आत्मा ही सर्वत्र आनन्दस्वरूप विद्यमान रहता है। उससे भिन्न कोई नहीं है। जिसने ऐसा ज्ञान प्राप्त करके उसी में चित्त रमा लिया है, वही पुरुष जन्ममरणरूपी सांसारिक दुःखों से मुक्त हो गया—मन को आत्मा में लगाकर उसी का चिन्तन करना ही श्रेयस्कर योग है।

महायोगी गोरखनाथ ने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के मंगलाचरण में आदिनाथ शक्तियुक्त जगद्गुरु महायोगोपदेष्टा शिव की वन्दना की है, जिसमें यह परिलक्षित होता है कि सिद्धसिद्धान्तपद्धति—नाथसिद्धपरम्परागत महायोगज्ञान पार्वती के प्रति शिवोपदिष्ट योगामृत का ही पर्याय है।

इस कथन की सटीक संगति संत कबीर की बानी में भी उपलब्ध होती है, जिससे पता चलता है कि संत कबीर ने नाथयोग को आदिनाथ की योगपरम्परागत स्वीकार किया है।

संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी शिव-शंकर की वन्दना में स्वीकार किया है कि शिव और पार्वती की कृपा से ही सिद्ध-नाथयोगी स्वान्तस्थ परमेश्वर- स्वसंवेद्य तत्व का साक्षात्कार

करते हैं। रामचरितमानस के इस मंगलाचरण में यह स्पष्ट है कि नाथयोग आदिनाथ शिव और उनकी प्राणवल्लभा पार्वती की कृपा का महाज्ञान है।

निस्सन्देह महायोगीश्वर भगवान् आदिनाथ शिव शाश्वत चैतन्यस्वरूप अक्षय, शान्त महत्पद हैं, योगिजन उनकी ही कृपा से उनका साक्षात्कार करते हैं तथा उनके द्वारा उपदिष्ट योगज्ञानामृत का रसास्वादन कर संसार-सागर से तर कर परम में समाहित हो जाते हैं। जीव का शिव में सामरस्य ही—अन्तर्लीनता ही आदिनाथप्रतिपादित योगज्ञानकल्पवृक्ष का अमृत फल है।

2. शिवावतार अमरकाय

महायोगी गोरखनाथ

स्वानन्दविग्रह परमानन्द स्वरूप परमगुरु (मत्स्येन्द्रनाथ) की कृपा से चिदानन्दायित योगविग्रह शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी भवतापशमानरूप योगामृत प्रदान करने के लिये कालदण्ड का खण्डन-वंचन कर चारों युग में विद्यमान रहकर प्राणीमात्र को मोक्षपद-कैवल्यस्वरूप में अवस्थित करते रहते हैं। वे साक्षात् शिव-रूप में निरन्तर अभिव्यक्त रहते हैं और बड़े सौभाग्य से किसी-किसी सिद्ध पुरुष अथवा युक्तात्मा को उनका दर्शन होता है तो हो जाता है। यह दर्शन उन्हीं की परमकारुणिकता का अमर फल है। गोरखनाथजी ने अपने महायोग ज्ञान के प्रकाश में जीवात्मा और परमात्मा की अभिन्नता सिद्ध की। उन्होंने अपने योगसिद्धान्त, विशेषतया हठयोग के माध्यम से सच्चिदानन्द ब्रह्म के शिवस्वरूप का आत्मा से एकात्मबोध सिद्ध किया। वे अप्रतिम योगतत्वज्ञ और महाज्ञानी के सिद्ध पुरुष थे, वे असाधारण नाथसिद्ध थे। नेपाल में सिंहल और काश्मीर से कामरूप तथा द्वारिका क्षेत्र—आसेतु हिमाचल के भूमिखण्ड को उन्होंने अपनी महती योगसाधना से प्रभावित किया। निस्सन्देह वे नाथपंथ के प्रवर्तक थे। उन्होंने बौद्धमार्गीय योगसिद्धान्तों को भी अपनी साधना से प्रभावित किया और उनमें से अधिकांश अंगों को शैव रूप प्रदान किया। यह उनकी योग-साधना-पद्धति की मौलिकता थी। उन्होंने अपने योग दर्शन और योग सिद्धान्तों से भारतीय संस्कृति और साहित्य को चिर समृद्ध किया। उन्होंने शास्त्रसम्मत योगपद्धति के ज्ञान-प्रकाश

से जन-चेतना—लोकमानस को जागृत कर सत्य और शिव के महाज्ञान से समृद्ध और समलंकृत किया। यही उनकी अरमता की आधारशिला है। यही उनकी योगरसिकता है। कल्पद्रुमतन्त्रान्तर्गत गोरक्षस्तोत्रराज में योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने महायोगी गोरखनाथ को प्रणाम करते हुए अपनी हार्दिक श्रद्धा-भक्ति समर्पित कर उनकी महिमा ज्ञापित की है।

हे गोरक्ष (गोरखनाथ)! आप निरंजन निराकार, निर्विकल्प, निरामय, अगम्य, अगोचर अलक्ष्य हैं, सिद्ध आप की वन्दना करते हैं, आप को नमस्कार हैं। आप समस्त रसों के भोक्ता हैं तो सदा भोगों से विरक्त हैं। आप समरस हैं, आप को नमस्कार है। आप हठयोग के प्रवर्तक शिव हैं, अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की कीर्ति को बढ़ानेवाले हैं, योगी मन में आप का ध्यान करते हैं, आप को नमस्कार है। आप सिद्धों में महासिद्ध हैं, ऋषियों में ऋषीश्वर हैं, योगियों के योगीन्द्र हैं, आप को नमस्कार है। आप विश्व के प्रकाशक है, विश्वरूप हैं, विश्वद्वारावंद्य सदाशिव हैं, आप विश्वनामधारी हैं, विश्वनाथ हैं, आप को नमस्कार है। आप असंख्य लोकों में स्वामी हैं, नाथों के नाथ-शिरोमणि हैं, समस्त नाथों द्वारा पूज्य (शिव) हैं, आप को नमस्कार है। आप शून्यों से भी परम शून्य हैं, परमेश्वरों के परमेश्वर हैं, ध्यानियों के ध्येय धाम (पद) हैं, आप को नमस्कार है।

गोरखनाथजी की अमरता और उनके समय-समय पर प्राकट्य—साक्षात् दर्शन का प्रतिपादन 'श्रीवल्लभदिग्विजय' ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। गोस्वामी यदुनाथ ने महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्बन्ध में 'वल्लभदिग्विजय' ग्रन्थ की रचना की थी। उसमें महाप्रभु की पश्चिम यात्रा के सम्बन्ध में रैवतक पर्वत पर गोरखनाथ जी के

श्रीविग्रहदर्शन का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि महायोगी गोरखनाथजी सब समय यथास्थान सिद्धदेह में प्रकट होते हैं, वे अमर काय और अकाल हैं।

जोधपुराधीश्वर महाराजा मानसिंह ने 'श्रीनाथतीर्थावली' रचना में वर्णन किया है कि श्रीरुक्मिणी और श्रीकृष्ण को उनके विवाह के अवसर पर द्वार युग में गोरखनाथजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर आशीर्वाद प्रदान किया था।

(रैवतक पर्वत से) पश्चिम देश में क्षेत्रों में श्रेष्ठ प्रभास क्षेत्र है। वहाँ गोरक्षमठिका नाम का परम धाम है। वहीं रुक्मिणी और श्रीकृष्णजी का परिणय (विवाह) हुआ था। श्रीरुक्मिणीजी के रूप-लावण्य से देवता मोहित हो गये और उनका कंकण बाँधने में असमर्थ हो गये। तब ऋषियों तथा अन्य लोगों ने वहाँ विराजमान गोरक्षनाथजी की स्तुति की कि आप दर्शन दीजिये। स्तुति से संतुष्ट होकर योगीन्द्र गोरखनाथजी ने उन लोगों को दर्शन दिया। उनकी प्रार्थना से कंकणबन्धन सिद्ध हुआ। उसके बाद भगवान् कृष्ण और श्रीरुक्मिणीजी ने परम भक्ति से उनकी स्तुति की, जो संसार में प्रसिद्ध है। गोरखनाथजी योगीन्द्र ने स्तुति से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। दोनों ने निवेदन किया कि हे नाथ! आप यहीं निवास कीजिये। नाथजी ने तथास्तु कहा और वहीं प्रतिष्ठत ही गये।

महायोगी गोरखनाथ देश, काल से परे योगपुरुष हैं, उनका अस्तित्व सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है। वे मध्य एशिया में अपनी सिद्धि के लिए सम्मानित हैं तो भारत में भी अमित लब्धप्रतिष्ठ हैं। उनकी शिष्य-परम्परा तिब्बत, नेपाल, अफगानिस्तान आदि प्रदेशों में प्रभावकारी है तो भारत के विभिन्न प्रदेश—बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, सौराष्ट्र

और हिमालयस्थ देश भी उनकी योगधधना से कृतार्थ हैं, वे सत्युग में हैं तो त्रेता, द्वापर, कलियुग में भी उनकी प्रसिद्धि अक्षुण्ण है। संत कबीर महायोगी गोरखनाथ के चरित्र-व्यक्तित्व और योगसिद्धि से इतने प्रभावित थे कि उन्हें कलि में गोरखनाथ जी की अमरता का वर्णन करना पड़ा।

महायोगी गोरखनाथजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः समस्त आख्यानों तथा तत्सम्बन्धी अनेकानेक तथ्यों का मौलिक तात्पर्य एक मात्र यह है कि वे शिवस्वरूप हैं, अयोनिज और अमर हैं। वे कायसिद्ध योगेश्वर है। साक्षात् भगवान् शिव ने महाकालयोगशास्त्र में कहा है कि मैंने योगमार्ग के प्रचार के लिए गोरक्षरूप धारण किया है।

शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ का बड़ा मौलिक ध्यान नेपाल के कवि चक्रपाणि ने अत्यन्त मार्मिक वाणी में प्रस्तुत करते हुए कहा है—

हे गोरक्षनाथ! मैं आपका ध्यान करता हूँ, जो समस्त सिद्धियों के एक मात्र परमाश्रय हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में शोभित हैं, जो पृथ्वी के भीतर कन्दरा में तप में तत्पर होने के कारण धरापुत्र कहलाते हैं, जो लोक के उद्धार के लिए अनेक रूपों में अभिव्यक्त होते हैं, जो परम शक्ति से युक्त हैं, जो भवसागर से पार उतारने वाले हैं, जो मेघमालामय प्रचण्ड भुजगों के ऊपर सिद्धासन से विराजमान हैं, योगशक्ति से देदीप्यमान सिद्धों का समूह जिनके चरणों पर प्रणत है, जिनके चन्द्रकलोपम मात्र में अखण्ड विभूति शोभित है, मानो शरद्पूर्णिमा की रात में स्फटिक पर्वत कैलाश ही विभ्राजित है, जिनका मुखमण्डल प्रकाण्ड भव्य तेजोमण्डल से समलंकृत है, मैं उन आप के स्वरूप का ध्यान

करता हूँ। जो विशाल वनस्थली के मध्य में वटवृक्ष के मूल की प्रतिष्ठत वेदी पर दिव्य रत्नों से खचित स्फटिक मणि के भव्य आसन पर विराजमान है, जिनके ऊपर विशाल छत्र शोभित है, जो परम महिमामयी अद्वैतानन्दस्वरूप ब्रह्म समाधि में लीन हैं, उन आप विभु का मैं ध्यान करता हूँ।

जो जगत् के प्राणियों की (कृपापूर्वक) रक्षा करने में परम समर्थ हैं, अपने भक्तों को प्राणमयी शक्ति से सम्पन्न करते हैं, जिन्होंने हठपूर्वक (कठोर) योगाभ्यास कर सिद्धि प्राप्त की है, जिन्होंने सदा के लिए जीवनन के विषयभोग (-सुख) का त्याग कर दिया है, जो खेचरी मुद्रा में निरन्तर तत्पर रहते हैं, जो परम उदार (कारुणिक) है, उन इन्द्रियजयी गोरखनाथ को हम प्रणाम करते हैं।

'गोरखबानी' में संग्रहीत 'महादेवंगोरखगुष्टि' रचना में भगवान् शिव ने गोरखनाथ को 'परमयोगसम्प्राप्त योगी' के सम्बोधन से अलंकृत किया है।

नाथसिद्ध घोड़ा चौली ने अपनी सबदियों के गोरखनाथजी की महिमा और योगगरिमा प्रकाशित की है कि गोरखनाथजी के योगमार्ग का मर्म अनंतअसंख्य सिद्धों ने जानने की साधना की ओर उन्हें यह विश्वास हो गया कि गोरखनाथजी उन अनन्त सिद्धों में अतीत—अनुपम और स्वस्वरूप में ही अभिव्यक्त महायोगी है। घोड़ा चौली की दृष्टि में गोरखनाथ वे हैं, जो अपने स्वरूप में ही अवस्थित हैं, मन से माया को जिन्होंने पूरी तरह निष्कासित कर दिया है, जो सदा सहज स्वरूप आत्मा में ही तत्पर रहकर जगत् के प्रति सम्पूर्ण तटस्थ—उदासी हैं, साक्षात् शिवगोरक्ष हैं।

महायोगी गोरखनाथ को प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् श्री जी०

ए० ग्रीयर्सन ने शैवधर्म का प्रतिष्ठापक बताया है। ग्रीयर्सन का कथन है कि 'गोरक्षनाथ कनफटा योगिसम्प्रद्राय के प्रतिष्ठाता थे। वे शैव धर्म के श्रेष्ठ शिक्षागुरु थे। उन्होंने नेपाल को महायान बौद्ध धर्म के प्रभाव से मुक्त कर वहाँ शैव (योग) धर्म को प्रतिष्ठित किया।' भगवान् गोरक्षनाथ योगिराजराजेश्वर हैं, साक्षात् शिवस्वरूप महायोगविज्ञानी योगी अमरकाय योगसिद्ध है। उनका योगज्ञानामृत अक्षय, निर्विकार तथा निरंजन - अमायिक है।

महायोगी गोरखनाथ का व्यक्तित्वदर्शन साक्षात् नाथयोग का स्वरूपदर्शन है। नाथसम्प्रदायगत परम्परा और अनुश्रुति के अनुसार अभिनवशिव गोरखनाथजी को चारों युगों में विद्यमान कहा गया है। इस तरह उनका देहसिद्ध अथवा अमर होना युक्तिसंगत ठहराया जाता है। महामति ब्रिग्स ने अपनी 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' पुस्तक में एक ऐसी ही परम्परा के उल्लेख में यह निरूपित किया है कि गोरखनाथजी सत्ययुग में पंजाब में प्रकट हुए। त्रेतायुग में वे गोरखपुर में अधिष्ठित थे, द्वापर में वे द्वारिका (हरमुज) में थे और कलियुग में उनका प्राकट्य सौराष्ट्र में काठियावाड़ के गोरखमढ़ी स्थान में हुआ। इसका तात्पर्य यह है कि गोरखनाथजी अमर हैं और चारों युगों को अपनी योगसिद्धि से उन्होंने कृतार्थ और प्रभावित किया है। उपर्युक्त स्थल उनकी तपःस्थली हैं, समाधि नहीं।

किवदंती है कि नाथ-सम्प्रदाय की प्राचीनता और गोरखनाथजी की अयोनिज उत्पत्ति का एक अनुश्रुति से पता चलता है। इससे कहा गया है कि जब विष्णु कमल में प्रकट हुए, तब गोरखनाथजी पाताल में तपस्या कर रहे थे। सृष्टि-कार्य के लिये उन्होंने अपनी धूनी से विभूति दी; क्योंकि विष्णु चारों ओर जल-ही-जल की समस्या से चिन्तित थे। सृष्टिकार्य सुगम हो गया। ब्रिग्स महोदय ने

अपने ग्रन्थ में ('गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' में पृष्ठ २२८ पर) इस अनुश्रुति का उल्लेख किया है। गोरखथजी की उत्पत्ति की कथा फैजुल्लारचित 'गोरख विजय' बंगला काव्य में भी वर्णित है, जिसमें उनके अयोनिज स्वरूप-प्रकाट्य पर प्रकाश पड़ता है। इसमें कहा गया है कि शिव की नाभि से मत्स्येन्द्रनाथ, हाड़ से हाडिपा, कान में कानपा (कृष्णपाद) और जटा (ललाट) से गोरखनाथ की उत्पत्ति हुई।

यद्यपि यह बंगीय कथा एक रूपक मात्र है, तथापि लोकमानस में ये चारों नाथसिद्ध अयोनिज है। गोरखनाथजी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भारत के विभिन्न प्रदेशों में अनेकों परम्परायें मान्य हैं। नेपाल में तथा अन्य परम्पराओं में यह बात पुष्ट होती है कि उनका प्राकट्य अभिमन्त्रित था।

यह कथन नेपाल दरबार-ग्रन्थमाला से प्राप्त 'गोरक्षसहस्त्रनाम' से उदधृत है। स्पष्ट होता है कि गोरखनाथजी दक्षिण दिशा में बड़व नामक देश में महामन्त्र के प्रसाद से प्रकट हुए थे। महाराष्ट्रिय परम्परा में गोरखनाथजी को गोदावरी के तटवर्ती चन्द्रगिरि नामक स्थान का बताया जाता है। इस परम्परा का उद्गम संत ज्ञानेश्वर कृत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ है। नेपाल दरबार के गोरक्षसहस्त्रनाम में निर्दिष्ट बड़व और 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' मे निरूपित चन्द्रगिरि स्थान एक-दूसरे से पर्याय हो सकते हैं। महार्थमञ्जरी गोरखनाथजी की रचना कही गयी है। उसके त्रिवेन्द्रम् संस्करण से पता चलता है कि वे चौल देश के निवासी थे। उनके पिता का नाम माधव और गुरु का नाम महाप्रकाश था। उनके गुरु ने उनका (गोरखनाथ का, नाम महेश्वरानन्द रखा था, उनका लोकप्रचलित नाम गोरक्ष था।)

सतत उत्सवों से सम्पन्न चोलताम का जनपद है। अपने गुणों से श्लाध्य माधव मेरे जनक (पिता) है। समस्त सांसारिक मलिनता को दूर करने में निपुण महाप्रकाश (मत्स्येन्द्रनाथ) के चरण-कमल-पराग के परमाणु को नमस्कार है। लोकदृष्टि से गोरखनामवाला तथा गुरुदृष्टि से महेश्वरानन्द, मैं महार्थमञ्जरी के आन्तरिक परिमल का उन्मीलन करता हूँ।

अवध की परम्परा के अनुसार गोरखनाथजी जायस नामक नगर में एक परम पवित्र ब्राह्मणकुल में प्रकट हुए थे। यह मत 'दि साइकलोपीडिया आफ इण्डिया एण्ड आफ ईस्टर्न सदरन एसिया' के पृष्ठ १३३५ पर बालफर एडवर्ड का है, जिसका उल्लेख ब्रिग्स ने अपनी पुस्तक 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' (जैनेन्द्रप्रेस देल ही द्वारा १९७३ में पुनर्मुद्रित) के पृष्ठ २११ पर किया है। जनश्रुति है कि अयोध्या के निकट भगवती सरयू के तट से थोड़ी दूर पर जयश्री अथवा जायस नामक स्थान में अलख जगाते समय तथा भिक्षाटन करते हुए महायोगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ की दृष्टि एक निस्सन्तान ब्राह्मणी पर पड़ी, उन्होंने अपनी झोली से विभूति दी और आशीर्वाद दिया कि तुम पुत्रवती होगी। लोकलज्जा के भय से ब्राह्मणी ने विभूति सूखे गोबर के ढेर (भिटउर) में छोड़ दी। ठीक बारह साल के बाद मत्स्येन्द्र जायस आये। ब्राह्मणी ने उनके पूछने पर सही बात कह दी। वे भिटउर के पास गये, अभिमन्त्रित विभूति ने बाहर साल के तेजपूर्ण दिव्य बालक का आकार धारण कर लिया था। वे बालक को अपने साथ ले आये और उसका नाम गोरक्षनाथ रखा तथा अपने अत्यन्त प्रिय शिष्य के रूप में स्वीकार कर योगमन्त्र की दीक्षा दी। यह घटना उनकी अयोनिज उत्पत्ति का अत्यन्त लोकप्रचलित प्रमाण है। यह घटना इतनी प्रसिद्ध और

सम्मानित है कि इसी का आधार बना कर महाराष्ट्रीय परम्परागत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ के सन्दर्भ में मत व्यक्त हुआ है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने भ्रमण करते हुए गोदावरी नदी के किनारे बसे चन्द्रगिरि नामक गाँव में निस्सन्तान ब्राह्मणी को अपनी विभूति दी और उसने उसे गोबर में फेंक दिया, जिसमें से बारह साल के बाद दिव्य बालक के रूप में गोरखनाथ प्रकट हुए। गम्भीरता से विचार करने पर यही मत प्रमाणित प्रतीत होता है कि गोरखनाथजी मत्स्येन्द्रनाथजी की विभूति से बारह साल के बाद दिव्य बालक के रूप में आकारित होकर जायस में निस्संतान ब्राह्मणी के अयोनिज पुत्ररूप में लोकप्रसिद्ध हुए। जायस (जयश्री) प्राचीन काल से ही धर्मस्थान के रूप में सम्मनित होने के नाते गोरक्षनाथजी के प्राकट्य से गौरवान्वित हो उठा। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी प्रसिद्ध काव्यकृति पदमावत में स्वीकार किया है कि जायस नगर धर्मस्थान था।

यागीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ में गोरखनाथ जी को सिद्धामृत-नाथपंथ में दीक्षित कर उन्हें शिवोपदिष्ट योगज्ञान प्रदान किया, जिसका उन्होंने उस समय क्षीरसागर में डोंगी के नीचे मत्स्य के उदर से निकल कर श्रवण किया था, जब शिवजी पार्वती के प्रति उसका व्याख्यान कर रहे थे। इस आख्यान का वर्णन नारदपुराण के उत्तर भाग ६९वें अध्याय में उपलब्ध होता है और इस महाज्ञान श्रवण की परम्परा को ज्ञानेश्वरी टीका में संतयोगी ज्ञानेश्वर ने प्रतिपादित करते हुए कहा है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने यह ज्ञान गोरखनाथजी को प्रदान किया और गोरखनाथजी से इसे गैनी (गहिनी) नाथ ने प्राप्त कर निवृत्तिनाथ को दिया। नारदपुराण के उत्तर भाग के ६९वें अध्याय में कामोदा (कामाक्षा) महात्म्य में मत्स्येन्द्रनाथ को भगवती

पार्वती का पुत्र कहा गया है। उन्हें सिद्धनाथ नाम प्रदान किया गया है। सत्युग, त्रेता, द्वापर में लोग उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं, कलियुग में वे अन्तर्धान रहते हैं।

भगवान् महेश्वर ने मणिप्रदीप्त श्रृंग पर भगवती उमा के प्रति तत्वज्ञान का वर्णन किया। भगवती पार्वती के निद्राभिभूत होने पर मत्स्य के उदर से निकल कर मत्स्येन्द्रनाथजी ने वह तत्वोपदेश सुना। सिद्धनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) का चिन्तन कर मनुष्य सफलमनोरथ हो जाता है।

संत योगी ज्ञानेश्वर ने इसी पौराणिक प्रसंग का अपने गीताभाष्य—ज्ञानेश्वरी में पोषण किया है। महाराज ने ज्ञानेश्वरी के अठारहवें अध्याय की १७२१-१७६५ ओबियों में कहा है कि क्षीरसमुद्र में तटपर श्रीशंकर ने भवगती पार्वती के कानों में, न जाने, कब एक बार जो उपदेश दिया, वह क्षीर समुद्र की लहरों में किसी मत्स्य के पेट में गुप्त मत्स्येन्द्रनाथजी के हाथ लगा। अचल समाधि के उपभोग की इच्छा से मत्स्येन्द्रनाथ ने उपदेश गोरखनाथजी को दिया। श्रीशंकर से प्राप्त व अद्वैतानन्द श्रीगैनीनाथ (गहिनीनाथ) ने सम्पादित किया। उन्होंने निवृत्तिनाथ को आज्ञा दी कि आदि गुरु शंकर से प्राप्त उपदेश से तुम कलिकाल के जीवों की रक्षा करो।

माहेश्वर अभिनव गुप्त ने अपनी रचना तन्त्रालक में सिद्धनाथ के रूप में नारदपुराण के ही उत्तर भाग के ६९वें अध्याय में प्रख्यात मीननाथ को मच्छन्द विभु कह कर प्रमाण किया है। अभिनव गुप्त का कथन है —

जिन्होंने राग-गैरिकादि द्रव्य अथवा रागतत्व के अरुण-लाल अथवा भेददशा के प्रसार से युक्त गाँठो और सलिल के निर्गम स्थान, बिलों से अथवा ग्रन्थिमाया एवं बिल-भोगभूमियों से व्याप्त

लम्बाई और चौड़ाई मान से युक्त अथवा सर्वत्र फैले हुए तथा कला से अथवा शान्त प्रतिष्ठा, विद्या और निवृत्ति—कला से निर्मित जाल, मत्स्यबन्धन अथवा इन्द्रजालमयी माया को दूर कर दिया, चपल चित्तवृत्तिरूप पाशों का खण्डन करने वाले वे मच्छन्द विभु (गुरु) मुझ पर प्रसन्न हों। अभिनव गुप्त द्वारा इस तरह नाथयोग अथवा शैव योग की परम्परा में मीननाथ (सिद्धनाथ) — मत्स्येन्द्रनाथ और उनके शिष्य शिवगोरक्ष गोरखनाथ की प्राचीनता , योगपद्धति और व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। उपर्युक्त श्लोक पर जयरथ की टीका से स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा मच्छन्द ही मीननाथ— मत्स्येन्द्रनाथ थे और पृथ्वीधराचार्य ने अपनी रचना भवनेश्वरी स्तोत्र (३७) में इन्हीं को सिद्धनाथ कहा है, सकलागमचक्रवर्ती बताया है। अतएव यह निर्विवाद है कि नारद पुराण के उत्तर भाग के ६९ वें अध्याय में वर्णित सिद्धनाथ ही मत्स्येन्द्रनाथ हैं, जिन्होंने गोरखनाथ को क्षीर सागर के मणिप्रदीप्त सप्तशृंग पर शिवोपदिष्ट योगज्ञान प्रदान किया।

यद्यपि शिवगोरक्ष (गोरखनाथ) ही श्रीनाथ हैं और उन्हें गुरु बनाने की आवश्यकता नहीं-सी थी तथापि लोक-व्यवहार में गुरु की मर्यादा अक्षुण्ण करने के लिये उन्होंने योगीन्द्र मत्स्येन्द्र को अपना पथ-प्रदर्शक बना कर योग ज्ञान प्राप्त किया था।

ऐसे तो गोरखनाथजी साक्षात् शिवस्वरूप ही हैं, पर उन्होंने समय-समय पर भारत के विभिन्न स्थानों में तपस्या की, जिसका प्रामाणिक विवरण जोध-पुराधीश महाराज मानसिंह द्वारा संग्रहीत 'श्रीनाथतीर्थावली ग्रन्थ' में यथाक्रम उपलब्ध होता है। सौराष्ट्र, पंजाब, उत्तराखंड में हिमालय के अनेक स्थान, कर्नाटक तथा बंगाल आदि में उनके साधनापीठ—योगकेन्द्र विद्यमान हैं, उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध नगर गोरखपुर तो उन्हीं के नाम से गौरवान्वित हैं

और यह नगर उनकी तपः स्थली है। मत्स्येन्द्रनाथजी के सन्मार्गदर्शन में उन्होंने कठोर तप का पवित्र आचरण अपनाया। मत्स्येन्द्रनाथजी ने कहा कि अपने आप को देखना चाहिए और अनन्त ऐश्वर्य, माधुर्यं और सौन्दर्य से सम्पन्न चिन्मय शिव तत्व का विचार करना चाहिये। आत्मज्ञान की प्राप्ति से ही चेतना का रहस्य जाना जाता है। परम ज्योति—परब्रह्म परमात्मा में ही जीव सदा निवास करता है। शिव और शक्ति की कृपा-प्राप्ति ही योगी की पूर्ण सिद्धि है। गोरखनाथजी ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथजी के योगसिद्धान्त और उपदेशों के अनुरूप ही अपना जीवन पिरष्कृत किया। उन्होनें माया पर विजय पायी। सांसारिक जीवन के बन्धन से अपने आप को मुक्त कर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। उन्होंने आशा, तृष्णा और इच्छा का परित्याग कर दिया। देवलोक की अप्सराओं, मृत्युलोक की नवरमणियों और पाताल की नागकन्याओं का उन्होंने विस्मरण कर दिया। वे पहाड़ी गुफाओं और सघन वनों में तथा हिमालय की शीतल निर्जन कन्दराओं में तप करने लगे। उन्होंने उस जीवात्मा के स्वरूप की गहरी खोज की, जो जगत् में शरीर के साथ आता है और उसका त्याग कर चला जाता है। उन्होंने अनुभव व्यक्त किया।

जीव के स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त कर गोरखनाथ ने योगी का रूप अपनाया। उन्होंने प्राणपुरुष का अन्वेषण कर जगत् में जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का रास्ता समझ लिया। उनकी वाणी है कि ज्ञान ही सबसे बड़ा गुरु है, चित्त ही सबसे बड़ा चेला है। ज्ञान और चित्त का योग सिद्ध कर जीव को जगत् में अकेला रहना चाहिये। यही श्रेय अथवा आत्म-कल्याण का पथ है।

महायोगी गोरखनाथ को एकान्तवास का जीवन परम प्रिय

था। उन्होंने घट-घट में अपने आप को ही व्याप्त पाया। मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसाद से उन्हें कैवल्य पद—स्वरूपावस्थान की प्राप्ति हुई। वे निन्दा-स्तुति से ऊपर उठ गये और उनकी समस्त वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयी। उन्होंने आत्मसाक्षात्कार की भाषा में कहा कि मैंनेपिण्ड में ब्रह्माण्ड को ढूँढ कर सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हैं। देव, देवालय, तीर्थ आदि इसी शरीर में हैं। मैंने शरीर के भीतर अविनाशी परमात्मा अलख निरंजन की अनुभूति प्राप्त कर ली है, कायागढ़ को जीतना किसी वीर का काम है। उनका कथन है—

गोरखनाथजी ने नेपाल, गिरिनार, ज्वालादेवी की स्थली आदि में अमित समय तक तपस्या की। उन्होंने सतयुग मे झेलम नदी के किनारे गोरखटिल्ला में तपस्या की। त्रेतायुग में उन्होंने भगवती इरावती (राप्ती) के तट पर गोरखपुर में तपस्या की। कहा जाता है कि गोरखपुर तपःस्थली में रघवंशी नरेश रघु, अज और राम ने उनका दर्शन कर अपने आप को कृतार्थ किया था। द्वापर युग में जूनागढ़ राज्य में प्रभास पट्टन के समीप गोरखमढ़ी में उन्होंने तप किया। कलि में पेशावर के किले में गोरखहट्टी उनकी तपस्या से समलंकृत है। यहाँ प्रत्येक वर्ष असंख्य श्रद्धालु इस स्थान पर एकत्र होकर उनको अपनी श्रद्धा-भक्ति समर्पित करते हैं।

नेपाल में गोरखनाथजी शिवगोरक्ष के रूप में पूज्य है। निस्संदेह उन्होंने अपनी साधना और तपस्या से नेपाल के जनजीवन को अमित प्रभावित किया। नेपाल में मृगस्थली उनकी योगसाधना की भौमप्रतीक है। नेपाल में वागमती नदी के तटवचर्ती सिद्धाचल पर मृगस्थली में गोरखनाथजी ने विकट तप किया था।

गोरखनाथजी ने नेपाल और भारत की सीमा पर स्थित प्रसिद्ध शक्ति पीठ पाटन में भगवान् शिव की इच्छा की पूर्ति के रूप में

तपस्या की थी। दक्ष के यज्ञ के विनाश के बाद सती के प्राणरहित शरीर को लेकर महादेवजी के भमणू करते समय देवी का पट वामस्कन्ध के सहित इसी पुण्यक्षेत्र पाटन में गिरा था।

पाटेश्वरी पीठ की स्थापना का श्रेय गोरखनाथजी को ही हैं। उन्होंने भगवान् शिव की आज्ञा से पीठ स्थापित कर भगवती की अराधना और योग की साधना की थी।

गोरखनाथजी ने अपनी तपस्या से पाटन के पुण्यक्षेत्र की महिमा बढ़ायी। इस तरह समग्र भारत में अनेकानेक स्थान उनकी तपस्या के स्मारकरूप में पूज्य हैं। पंजाब, राजस्थान, सौराष्ट्र, कर्नाटक, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में और उत्तरांचल के अनेक प्रखण्डों और नेपाल आदि में उनके श्रीविग्रह प्रस्थापित हैं तथा चरणयुगल-प्रतिमायें अंकित हैं और उनकी पूजा सम्पन्न होती है। गोरखनाथजी ने झोपड़ी से महल, रंक से राजा, सभी को अपनी योग साधना और तपस्या से प्रभावित किया।

महायोगी गोरखनाथजी के क़ांगड़ा के ज्वाला देवी स्थान से गोरखपुर आने तथा तपस्या और योगसाधना करने के सन्दर्भ में नाथसम्प्रदाय में ही नहीं, लोकमानस में भी एक ऐतिहासिक परम्परा सम्मानित है। महायोगी गोरखनाथ एक बार हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा स्थान में ज्वालादेवी का दर्शन करने पहुंचे। देवी ने उन्हें वहाँ ठहरने की प्रेरणा दी, इस पर उन्होंने कहा कि आप के स्थान पर तामसी पदार्थों का भोग लगता है, हमारे लिये यहाँ आहारग्रहण की उचित व्यवस्था नहीं हो सकती है। विशेष आग्रह पर गोरखनाथजी ने कहा कि अच्छा, आप चूल्हा जला कर खिचड़ी के लिये पात्र में जल गरम करने हेतु रख दें, मैं भिक्षा माँग कर (खिचड़ी का)

अन्न स्वयं लाता हूँ। इस पर देवी ने पात्र में जल भर कर आग पर चढ़ा दिया, देवी का चूल्हा आज भी जल रहा है, परन्तु गोरखनाथजी उस स्थान पर आज तक नहीं पहुँच सके। वे भ्रमण करते हुए गोरखपुर आ पड़ें, जो उन्हीं के नाम से विश्रुत है। यहाँ की हरीतिमा और प्राकृतिक रमणीयता पर विमुग्ध होकर गोरखनाथजी इस स्थान को अपनी तप:स्थली का रूप प्रदान कर तपस्या में तत्पर हो गये। श्रद्धालु जनता ने उनके खप्पर को खिचड़ी से भरने का प्रयत्न किया, पर वह नहीं भरा जा सका। इस तपोमयी घटना की स्मृति में गोरखनाथ-मन्दिर में प्रत्येक वर्ष मकरसंक्रानित के महापर्व पर विशाल खिचड़ी मेला का आयोजन होता है। गोरखपुर में गोरखनाथ-मन्दिर में प्रत्येक वर्ष मकरसंक्रान्ति के महापर्व पर विशाल खिचड़ी मेला का आयोजन होता है। गोरखपुर में गोरखनाथ मंदिर में महायोगी गोरखनाथ की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जिसकी नित्य यथासमय, यथाक्रम पूजा सम्पन्न होती है। महायोगी गोरखनाथ की तपोभूमि होने के नाते यह मन्दिर नाथयोगियों, सिद्धों, संत-महात्माओं एवं जनसामान्य के सतत आकर्षण का केन्द्र होने का गौरव प्राप्त करता आ रहा है। यह सिद्ध योगपीठ के रूप में परिगणित है। गोरखनाथजी की दिव्य तपोभूमि में, अक्षयसलिला भगवती राप्ती के तटपर स्थित गोरखपुर का गोरखनाथ-मन्दिर अपनी समस्त गरिमा और महिमा से अलंकृत होकर चिरकाल से त्रयताप से संतप्त प्राणीमात्र को योगामृत प्रदान करता आ रहा है। इस मन्दिर में गोरखनाथ का व्यक्तित्व अभिव्यक्त है। गोरखनाथजी ने त्रेतायुग में तपस्या करते समय अखण्ड ज्योति प्रज्वलित की थी, आज भी मन्दिर के गर्भगृह में अनवरत अनेक झंझावातों एवं प्रलयकारी परिस्थितियों के आघात-प्रतिघात का प्रतिरोध करती हुई यह ज्योति अखण्ड रूपसे

जल रही है। त्रेतायुग में ही गोरखनाथजी ने अखण्ड धूना भी जलाया था, जो आज भी दर्शनीय है। कहा जाता है कि भगवान् राम के राज्याभिषेक-उत्सव में पधारने के लिये गोरखनाथजी से प्रार्थना की गयी थी, तप में तत्पर होने के कारण केवल उनका आशीर्वाद ही प्रेषित किया जा सका। ठीक इसी तरह यह अनुश्रुति गोरखनाथजी के व्यक्तित्व से युक्त है युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पधारने के लिये पाण्डववीर भीमसेन गोरखनाथजी के चरण में निमन्त्रण समर्पित करने आये थे। उस समय महायोगी गोरखनाथ जी गहन समाधि में तल्लीन थे, इसलिये भीमसेन ने कुछ समय तक यहाँ विश्राम किया था कहा जाता है कि उनके शरीर के भार से एक सरोवर बन गया। यह सरोवर मन्दिर के प्रांगण में दर्शनीय हैं। भीमसेन की शयनमुद्रा में विश्राम करती एक विशाल प्रतिमा भी दर्शनीय है। महायोगी गोरखनाथ के अमर, अखण्ड और अमृतमय व्यक्तित्व का प्राण उनका तपोमय जीवन है। उन्होंने योग का तप स्वरूप अभिव्यक्त कर उसे आचार—सदाचार अथवा रहनी से समृद्ध किया। अपनी तपस्या से उन्होंने शुद्ध शैवयोगशास्त्रसम्मत नाथयोग को प्राणशक्ति प्रदान की।

महायोगी गोरखनाथ के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंगों में एक प्रसंग है उनके द्वारा गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का विषयभोगपरक तान्त्रिक साधना से समुद्धार। उन्होंने तान्त्रिक वातावरण से उन्हें बाहर कर शुद्ध सिद्धामृतमार्ग—नाथयोग की पवित्र स्मृति और साधना से सम्बोधित कर शिवोपदिष्ट महायोगज्ञान में प्रतिष्ठित किया। कौलयोगिनी मत—कौलाचार की पद्धति के स्थान पर सिद्धसिद्धान्त का स्मरण दिलाया।

संतयोगी, ज्ञानेश्वरकृत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में वर्णित है

कि परकाय प्रवेश के द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ ने प्रयागराज के राजा के मृत शरीर में प्रवेश कर राजसुखोपभोग किया। बाहर साल के बाद रानियों को पता चला तो उन्होंने उनका शरीर नष्ट कर देना चाहा पर गोरखनाथजी के प्रयत्न से उन्हें अपना पहला शरीर फिर प्राप्त हो गया। जोधपुर के महाराजा, सिद्धसिद्धान्ततत्वज्ञ मानसिंह के द्वारा संग्रहीत नाथचरित्र में मत्स्येन्द्रनाथ के परकाय-प्रवेश की बात पुष्ट होती है। एक समय तीर्थयात्राकाल में उन्होंने एक मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया। हरिद्वार में योगी-सम्मेलन में कृष्णपाद ने गारेखनाथजी को सूचना दी कि मत्स्येन्द्रनाथजी सुखोपभोग से आसक्त हे, गोरखनाथजी ने विमला देवी के अवतार रानी परिमला के हाथ से गुरु का उद्धार किया, जिसने अग्नि में प्रवेश कर शरीर का त्याग किया और एक राजा के घर जयन्ती नाम से जन्म लिया। उसके पहले जन्म में मत्स्येन्द्रनाथ ने उससे फिर मिलने की प्रतिज्ञा की थी, इसीलिये उसकी तरुणावस्था में उसके साथ कदलीवन में विहार किया। देवताओं और सिद्धों ने उनकी स्तुति की।

फैजुल्लाकृत बंगला भाषा के 'गोरखविजय' काव्य में शिवोपदिष्ट महायोगज्ञान का विस्मरण कर कदली देश में महारानी के साथ भोगविलास में तत्पर होने का मत्स्येन्द्र-प्रसंग और नर्तकी-वेष अपना कर गोरखनाथजी द्वारा उनका उद्धार वर्णित है। इस आख्यान का पूर्ण रूप यह है कि योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ काम रूप में तप कर रहे थे कि वहाँ के राजा का प्राणान्त होने पर उसके मृत शरीर में प्रवेश किया और महारानी मंगला के साथ विहार में तत्पर हो गये। सिंहल देश में मंगला और कमला के रमणी-राज्य में पहुँचने पर उन्हें शिवोपदिष्ट ज्ञान का विस्मरण हो गया, मत्स्योदर से निकल कर क्षीर-सागर में डोंगी के नीचे छिपकर पार्वती के निद्रामग्न

होने पर हुँकारी भरते हुए उन्होंने योगज्ञान सुना था, पता चलने पर शिव पार्वती ने ज्ञानविस्कृति का उन्हें शाप दिया। इस घटना की मौलिकता और प्राचीनता पर विद्यारण्यमृत 'शंकर दिग्विजय' में प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ चौदहवीं शती की रचना हैं, क्योंकि इसके रचयिता विद्यारण्य (महामति-सायणाचार्य) का जन्म सम्वत् १३२४ वि. निर्धारित किया गया है। आदि शंकरचार्य विद्यारण्य से कहीं पहले थे। उन शंकराचार्य के श्रीमुख से अपने शिष्य के प्रति 'शंकर-दिग्विजय' ग्रन्थ में कहलवाया गया है कि प्राचीनकाल में जिस प्रकार मत्स्येन्द्र नाम के महात्मा योगी ने परकाय-प्रवेश कर अपने शरीर की रक्षा का भार अपने शिष्य गोरखनाथ को सौंपा था, उसी तरह मैं तुम्हें परकाय-प्रवेश के पहले अपनी शरीर-रक्षा का भार सौंपता हूँ।

दिण्डिमभाष्यकार धनपति सूरि ने उपर्युक्त श्लोक के भाष्य में गोरखनाथ द्वारा नर्तकी वेष अपना कर गुरु के उद्धार की बात का बड़ा ऐतिहासिक पोषण किया है। उनकी पवित्र वाणि है— एवं पुरावृत्तं वृतान्तं श्रावयितुमभिमुखी कृत्य तं श्रावयति हि प्रसिद्धम्। पुरा मत्स्येन्द्र नामा महात्मा स्वशरीरक्षणाय गोरक्षसंज्ञशिष्यमाज्ञाप्य कस्यचिन्मृकस्य राज्ञः शरीरं प्रविश्य तस्य नगरं प्राप्तवान् अथानन्तरेण गोरक्षगुरोः प्रवृत्तिं विज्ञाय बहुप्रकारेणास्य गुरोर्देहं रक्षन्सन्निशान्तास्यान्तः पुरस्य कान्तानर्तनोपदेष्टा संन्नस्य गुरोरत्यन्तमन्तरंगोबभूव।

कहा जाता है कि गोरखनाथजी एक बकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। आकाश-मार्ग से सिद्ध कृष्ण पाद कहीं जा रहे थे। गोरखनाथजी ने उन्हें योग बल से नीचे उतारा। कृष्णपाद (कान्हींपाव—कानिपा) ने कहा कि आप के गुरु कदली वन में सोलह सौ सेविकाओं द्वारा

सेवित महारानी कमला और मंगला के साथ महाज्ञान भूलकर कामोपभोग में व्यस्त हैं, उनकी आयु के केवल तीन दिन शेष हैं। गोरखनाथजी मत्स्येन्द्रनाथ को स्त्रीराज्य से मुक्त करने चल पड़े। गोरखनाथजीने लंग और महालंग नामक दो शिष्यों को लेकर कदली वन में प्रवेश किया। लोगों ने उनसे आशीष माँगे। सिद्ध की वाणी थी, फलवती होने लगी। उन्होंने योगी का वेष धारण किया। कदलीवन के एक सरोवर के किनारे बैठी एक नवरमणी उनके दिव्य सौन्दर्य से मुग्ध हो गयी। उसने उन्हें मत्स्येन्द्रनाथजी का पता बता कर कहा कि महारानी मंगला और कमला के राज्य में योगी का प्रवेश निषिद्ध है, केवल नर्तकी जा सकती है। गोरखनाथजी ने नर्तकी का वेषधारण किया। वे राज-द्वार पर जाकर मर्दल-ध्वनि करने लगे।

हे गुरुदेव! आप महायोग-ज्ञान के स्वामी हैं, आप का कोलाचार में उलझ कर (कामरूप में स्त्रीराज्य में) संभोगसुख के लोभ, कामिनी के रूप में और माया में आसक्त रहना कदापि उचित नहीं है। आप इनका त्याग कीजिये। आप आत्मा के योगी हैं गुरुपद पर प्रतिष्ठित योगेश्वर हैं। विद्यानगर (विजय नगर) के योगिराजेन्द्र सम्मान्य कृष्णपाद (कान्हींपाद—कानिपा) से मुझे यह उपदेश (सन्देश) मिला है कि आपने कामरूप के रमणीराज्य में योगिनी कौलमत की साधना में आसक्त होकर सिद्धामृत ज्ञान का विस्मरण कर दिया है। आपने माया बाधिनी को अंक में आलिंगित कर अमृतरस नष्ट कर दिया है। आपने माया नर्तकी के नृत्यपर उसकी नूपुरध्वनि से मूर्च्छित होकर महायोग ज्ञान-साधना की सिद्धिरूपिणी कमाई (सम्पत्ति) खो दी है। आप का वीर्यरस शरीर से बाहर निकल गया। मैं अवधूत गोरखनाथ इस षटपदी में नाथयोग मत का प्रतिपादन कर आप को साधना-सिद्धि का स्मरण दिलाता हूँ।

हे गुरुदेव! स्त्री के सहवास में योगी को नहीं रहना चाहिये। इससे शरीर में विद्यमान ज़ीवन-रस-प्राणामृत (वीर्य) क्षीण हो जाता है और शरीर मृत्यु का ग्रास बन जाता है। हे गुरुदेव! स्त्री योग की साधना में विघ्न डालती है। वह दिन में अपने हावभाव कामुक प्रवृत्ति और साजश्रृंगारयुक्त सुन्दर शरीर के प्रति मन में आकर्षण पैदा करती हैं और रात में अपने आलिंगन परिरम्भण से सद्विवेक का अपहरण कर अमृत के सरोवर को सोख लेती है। उसके साथ पुरुष के जीवन का रस नष्ट हो जाता है। वह स्त्री बाधिन है। लोग इसे घर-घर में पालते-पोषते हैं। जिस तरह नदी के किनारे का वृक्ष कभी भी गिर सकता है, इसी तरह स्त्री में कामासक्त पुरुष होता है, शरीर अब ढहे, तब ढहे मेरु-शिखर (सुशुम्ना के ऊर्ध्वमुख ब्रह्मरन्ध्र) से अमृत का भाव रुक जाने पर शरीर ढीला हो जाता है, पैर डगमगाने लगते हैं, बुढ़ापा आ जाता है, शक्ति क्षीण हो जाती है। उसके केश बगुला के पंख की तरह सफेद हो जाते हैं। इस रमणी से सदा दूर रहना चाहिये।

महाकवि विद्यापति ने मिथिलानरेश महाराजा शिवसिंह की आज्ञा से रचित अपने 'गोरक्षविजय' नाटक में उपर्युक्त प्रसंग के विवरण में गोरखनाथजी की अपने गुरु की समुद्धार-दिशा में महनीय भूमिका प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि मत्स्येन्द्रनाथजी १६०० सेविकाओं द्वारा आवृत्त सुन्दरी रानियों के मायाजाल में फँस गये। कदलीवन में योगियों का प्रवेश वर्जित था। गोरखनाथ ने अपूर्व सुन्दरी नर्तकी का रूप धारण कर कदलीवन में प्रवेश किया। गोरखनाथजी ने देखा— 'चारों दिशओं में नारियाँ चँवर डुला रही हैं, चार सौ नारियाँ चरणों का प्रसाधन कर रही है। राजा मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) को गोरखनाथजी के वचनों से धीरे-धीरे आत्मज्ञान

का स्मरण होने लगा।'

हे गुरुदेव! हे मीननाथ! आप गुरमुख की वाणी भूग गये। उस वाणी से परे और कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं है। स्त्री की नयन-ज्योति के सामने (ज्ञान के) माणिक और मोती भूल गए। हे मीननाथ! अब मोह सम्भव नहीं है। आप प्रबुद्ध हो जायइये। इसमें (लोकिक प्रेम में) और उसमें (आध्यात्मिक ज्ञान में) परम विरोध है।

कदलीवन के विहार से उत्पन्न मत्स्येन्द्रनाथ का मोहजाल छिन्न-भिन्न हो जाता है। वे गोरखनाथ को गले लगाकर उन्हें अपना प्राण स्वीकार करते हैं -

गोरखनाथजी ने कहा कि हे गुरु मत्स्येन्द्रनाथ! कोदण्ड (धनुष) और दण्ड (राजदण्ड), दोनों के बीच करोड़ो सूर्य के समान प्रभापूर्ण राज्य को छोड़कर, हे राजेन्द्र! उस ब्रह्मज्योति का चिन्तन कीजिये।

गोरखनाथजी ने महारानी कमला और मंगला के भोगराज्य से मत्स्येन्द्रनाथ को बाहर निकालने में विजय प्राप्त की। सिद्धसिद्धान्ततत्वज्ञ जोधपुरा-धीश्वर महाराजा मानसिंह द्वारा संग्रहीत 'नाथचरित्र' में वर्णन है कि गोरखनाथ जी कामरूप के रमणीराज्य से मत्स्येन्द्रनाथ को मुक्त कर चल पड़े। वे मत्स्येन्द्रनाथजी के पीछ-पीछे चल रहे थे। यद्यपि मत्स्येन्द्रनाथजी कामिनी के रूपजाल से मुक्त हो चुके थे तथापि उनके मन में भोगविषयक सामग्रियों के प्रति अनुराग क्षीण नहीं हो सका था। यह देख कर योगसिद्ध महायोगी गोरखनाथ ने अपने जलपात्र से जल छिड़क कर एक पर्वत को स्वर्णमय बना दिया। योगीन्द्र मत्स्येन्द्र नाथ के मन में इस घटना से स्वर्ण के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपने स्वर्ण के आभूषण आदि शरीर पर से उतार कर फेंक दिये। ज्ञानसिद्ध गोरखनाथजी ने स्वर्ण को कलह का कारण समझ कर स्वर्ण के

पर्वत को स्फटिक पर्वत बना दिया पर जब इससे भी उन्हें संतोष न हुआ तो उन्होंने उस पर्वत को गेरु का पर्वत बना दिया।

नेपाल की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परम्परा और लोक जीवन को महायोगी गोरखनाथ के व्यक्तित्व ने अमित प्रभातिव किया। नेपाल के लोकमानस में शैवयोग नाथयोग के साथ-ही-साथ बौद्धधर्म, बौद्धदर्शन और बौद्धयोग-साधना का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि नेपाल की जन श्रुति में उन्हें बौद्ध साधक अनंगवज्र अथवा रमणवज्र कहा गया है तथापि वे शिव के अवतार स्वीकार किये जाते हैं और नेपाल का गोरखाराज्य उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति का प्रतीक है।

शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी ने नेपाल वागमती नदी के तटपर स्थित सिद्धाचल पर मृगस्थली में कठोर तप किया था। मृगस्थली में उनका मन्दिर उनकी तपस्या का भौम स्मारक है। नेपाली बौद्ध कथा में उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथजी को अवलोकितेश्वर समझा गया है। मत्स्येन्द्रनाथजी एक पर्वत पर रहते थे। गोरखनाथजी उनके दर्शन के लिये गये। पर्वत पर चढ़ना दुष्कर समझकर नवनागों को बाँधकर तथा अपने आसान के नीचे छानबे करोड़ मेघमालाओं को दबाकर बैठ गये। उपर्युक्त आख्यान का ऐसा भी वर्णन मिलता है कि गोरखनाथजी पर्वत पर वर्षा के देवता कार्कोटक नाग को दबाकर आसनस्थ हो गये। नेपात में कर्कोटक नाग अथवा नवनागों अथवा छानवे करोड़ मेघमाला को दबाने का परिणाम यह हुआ कि बाहर साल तक वर्षा नहीं हुई और भीषण अकाल पड़ गया। सारे नेपाल में हाहाकार मच गया। राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बुद्धदत्त (बन्धुदत्त) ने अकाल का कारण समझ लिया। गोरखनाथजी के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को गोरखनाथजी के सामने लाने का निश्चय

किया गया। यह विचार किया गया कि जब अपने गुरुदेव को प्रणाम करने के लिये आसन से गोरखनाथजी उठेंगे, तब मेघमालयें स्वतःमुक्त हो जायेंगी। यथोचित अनुष्ठान द्वारा बवलोकितेश्वर मत्स्येन्द्रनाथजी गोरखनाथजी के समक्ष मृगस्थली में लाये गये। वे आसन से उठे नहीं, गुरु को मानसिक प्रणाम्र करते समय उनका बायां घुटना कुछ हिल गया और मेघमालायें मुक्त हो गयीं। जलवृष्टि हुई और अकाल का संकट टल गया। मत्स्येन्द्रनाथजी के आगमन के स्मरण में प्रत्येक वर्ष रथयात्रा-उत्सव मनाया जाता है।

नेपाल के ही एक प्रखण्ड दांग् के राजकुमार रतनपरीक्षक को गोरखनाथ ने नाथयोग में दीक्षित किया था। रतनपरीक्षक नाथसम्प्रदाय में सिद्ध हाजी रतननाथ के नाम से प्रसिद्ध है और वे सातसौ साल की आयु का भोग करते करते हुए पृथ्वी पर विचरण करते रहे। हजरत मुहम्मद साहब से भी बाबा रतननाथ का सत्संग हुआ था। एक दिन वे वन में युवावस्था में शिकार खेलने गये थे कि उन्हें जटाविभूषित, भस्म के अंगराग से शोभित महायोगी गोरखनाथजी ने दर्शन दिया। उन्होंने कहा कि अंहिंसा ही परम धर्म हैं, प्रत्येक प्राणी परमात्मा की सृष्टि है। उसके प्राण पर एकमात्र परमात्मा का नियन्त्रण है, जीव-हत्या नहीं करनी चाहिये। महाकारुणिक गोरखनाथजी ने कहा कि हे राजा, यदि शिकार ही खेलना है तो मनरूपी मृग का वध करो, जो अत्यन्त चंचल है। न उसके वक्षःस्थल है, न उसके रक्तमांस है। न चोंच हैं, न पंख है। मुक्ति की प्राप्ति के लिये मन को मारना चाहिये।

गोरखनाथजी ने रतनपरीक्षक को दीक्षित कर अमृतपात्र प्रदान किया। रतननाथजी ने दांग् में विशाल मन्द्रिर का निर्माण करा कर अमृतपात्र की पूजा का उपक्रम व्यवस्थित किया।

नेपाल के शाह राजवंश पर, जो आज भी उस महान् राष्ट्र तथा देश का शासक है, महायोगी गोरखनाथ का आशीर्वाद प्रत्यक्ष दर्शनीय है और इस वंश के नरेश द्रव्यशाह, रामशाह और विशेष रूप से महाराज पृथ्वी नारायण शाह पर गोरखनाथ जी का विशेष अनुग्रह रहा है। नेपाल के इतिहास में यशोवर्मा का नाम स्वर्णक्षरों में अंकित है। उनके तीन पुत्र थे नरहरिशाह, नरपतिशाह, और द्रव्यशाह। द्रव्यशाह माता की आज्ञा से गोसेवा में नियुक्त थे। एक बार वे दूध गरम कर रहे थे कि बारह साल के तरुणयोगी के वेष में गोरखनाथजी ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया, द्रव्यशाह के अतिथि-सत्कार से प्रसन्न होकर गोरखनाथजी ने आशीर्वाद दिया कि आप के वंश के नरेश सम्पूर्ण नेपाल के शासक होने का गौरव प्राप्त करते रहेंगे। द्रव्यशाह के पुत्र रामशाह को यह बात विदित्त थी कि हमारे वंश का राज्य भगवान् गोरक्षनाथ के आशीर्वाद से गो-सेवा करने के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। वे सदा गोसेवा में लगे रहते थे। शाहराजवंश के महान् शासक पृथ्वी नारायणशाह पर गोरखनाथ ने विशेष अनुग्रह किया था। एक दिन जब पृथ्वी नारायण शाह छोटे बालक थे, वे साथियों में खेलते हुए छिपकर एक गुफा में चले गये, गुफा के भीतर प्रवेश करते हुए, उन्होंने देखा कि व्याघ्र चर्म पर गले में सर्प धारण किये हुए, कोटि-कोटि कामदेव से भी सुन्दर, जटाजूट से शोभित, रुद्राक्ष माला से समलंकृत, कर्णकुण्डल पहने हुए महायोगी गोरखनाथ विराजमान है। गोरखनाथजी ने कहा कि घर जाकर मेरे लिये दही माँग लाओ। पृथ्वीनारायणशाह माता से दही मांगकर गुफा में ले आये। गोरखनाथजी ने दही पीकर बालक से कहा कि तुम अंजलि बाँधो, उसके ऐसा करने पर दही उलटकर उसे पीने का आदेश दिया, बालक ने अनच्छिा प्रकट

की, दही अंजलि खुल जाने पर उसके पैर पर गिरा। गोरखनाथजी ने कहा कि यदि यह दही प्रसाद के रूप में तुम खा लेते तो तुम्हारा वंश समस्त भूमण्डल का चक्रवर्ती राजा होता, पर दही की बूँदे तुम्हारे पैर पर पड़ी हैं, इसलिये तुम जिस भूखण्ड को जीतने के लिये युद्ध-यात्रा करोगे, उस पर तुम्हारा अनायास अधिकार होगा। कुछ समय के बाद एक महात्मा के वेष में गारखनाथजी ने उन्हें फिर दर्शन दिया और तलवार प्रदान की। नेपाल पर पृथ्वी नारायण शाह के वंश का ही आधिपत्य है। सभी शाह वंश के नरेशों ने गोरखनाथजी को अपना इष्टदेव स्वीकार किया है। नेपाल के सिक्कों पर गोरखनाथजी की चरणपादुकाओं का चिह्न अंकित रहता है। सिक्कों पर 'श्रीश्रीगोरक्षनाथ' अंकित रहता है। शाहवंश के राजाओं का राजतिलक गोरखनाथजी की तपोभूमि, मृगस्थली के महन्त द्वारा सम्पन्न होता है। गोरखनाथजी नेपाल के राष्ट्रगुरु के रूप में परम पूज्य हैं।

उज्जैन के अधीश्वर योगिराज भर्तृहरि और उनकी बहन मयनावती पर गोरखनाथ ने बड़ा अनुग्रह किया। उज्जैन के विशाल राज्य पर लात मार कर और पिंगला-जैसी अनिंद्य सुन्दरी रमणी के विश्वासघात से दुःखी होकर भर्तृहरि ने महायोगी गोरखनाथ से दीक्षा लेकर उनके सन्मार्गदर्शन में जीवन सफल किया। महाराज भर्तृहरि एक बार मृग मार कर लौट रहे थे। मृगी करुण विलाप कर रही थी। राजा के कोमल हृदय से उसका विलाप नहीं सहा गया। उनका चित्त चंचल हो उठा। योगसिद्ध गोरखनाथजी ने अपने योग बल से मृग को जीवित कर दिया, भर्तृहरि उनके शिष्य हो गये।

गौड़ बंगाल के शासक गोपीचन्द की माता मयनावती भर्तृहरि की बहन थी। मयनावती पर गोरखनाथ की बड़ी कृपा रहती थी।

उसके पुत्र गोपीचन्द की दीक्षा के अवसर पर गोरक्षनाथजी राजमहल में पुष्परथ पर विराजमान होकर गौड़ बंगाल की राजधानी में राजमहल में उपस्थित थे।(इसका उल्लेख ब्रिग्स ने अपनी पुस्तक 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' में किया है।) गोपीचन्द को सिन्ध में पीर पटाव कहा जाता है। वहाँ वे एक पहाड़ी पर रहते थे। उस पर पहले दयानाथ योगी का अधिकार था। उसके पास एक टोकरी थे, जिससे सवालाख फकीरों के लिये वह आग जलाया करता था। उसके पास एक बैल था, जो उसके योगबल से नदी से पानी के थैले को खींचा करता था। उसके पास एक रस्सी व सोटा था। वह किसी को भी उस रस्सी से खिंचवा कर सोटे से पिटवा सकता था। उन दिनों गोरखनाथजी गिरनार पर तप कर रहे थे। उनके योगबल से वातावरण में शान्ति छा गयी। दयानाथ ने यौगिक शक्ति से इस बात को जान लिया। वह एक फूंक से पहाडी पर आग प्रकट कर उसको छेड़कर धीणोधर की पहाड़ी पर आ गया। गोपीचन्द ने गोरखनाथजी से आग बुझाने की प्रार्थना की। आग का वेग शान्त हो गया। उन्होंने योगी दयानाथ और उसके अनुयायियों को अपना शिष्य बना लिया। गोपीचन्द ने परम कारुणिक गोरखनाथजी की कृपा के सिन्ध की उपर्युक्त पहाड़ी पर निवास किया।(यह वृत्तान्त ब्रिग्स कृत 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' ग्रन्थ में वर्णित है।) योगिराज गोपीचन्द पर महायोगी गोरखनाथ का अतुल प्रभाव था। गोपीचन्द को गोरखनाथ के माननाथी सम्प्रदाय का प्रवर्तक कहा जाता है। जोधपुर का महामन्दिर गोरखपन्थ के माननाथी-सम्प्रदाय का प्रधान स्थान कहा गया है।

महाराष्ट्र की नाथसम्प्रदायगत परम्परा में गोरखनाथ को शिव का अवतार समझा गया है, क्योंकि इस परम्परा के अन्तर्गत

(श्रीमद्भागवत ११। २। २१-२३ के अनुसार) नवयोगीश्वर—कविनारायण (मत्स्येन्द्रनाथ), करभाजन नारायण (गहिनीनाथ), अन्तरिक्ष नारायण (ज्वालेन्द्रनाथ), प्रबुद्धनारायण (करणिपानाथ), आविर्होत्र नारायण (नागनाथ), पिप्लायन नारायण (चर्पटीनाथ), चमसनारायण (रेवानाथ), हरिनारायण (भर्तृनाथ) और द्रुमिल नारायण (गोपीचन्द नाथ) के नाम के साथ गोरखनाथ का नाम न आना उनका शिवावतार सिद्ध करता है। संत ज्ञानेश्वर ने गीताभाष्य—ज्ञानेश्वरी के अठारवें अध्याय में स्वीकार किया है कि क्षीरसागर में सप्तश्रृंग पर शिवोपदिष्ट ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ ने श्रवण कर उसे गोरखनाथजी को प्रदान किया और गोरखनाथजी से उसे गहिनीनाथ ने ग्रहण किया। गहिनीनाथ ने उसको निवृत्तिनाथ को प्रदान किया। गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को 'कृष्ण' मन्त्र प्रदान कर नाथयोग के शैवरूप का वैष्णवीकरण किया।

निवृत्तिनाथ का कथन है कि गहिनी नाथ ने मुझपर कृपा की और मेरा कुल भगवान् कृष्ण के नाम-मन्त्र से पवित्र हो गया।

संत तुकाराम के शिष्य निलोबा राय का कथन है कि जो गुह्यज्ञान शंकरजी ने पार्वती के प्रति कहा, उसे मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) ने प्राप्त किया। मीननाथ ने उसे गोरखनाथ को प्रदान किया। उनसे गहिनीनाथ ने पाया। गहिनीनाथ ने दीन जनों के उद्धार के लिये उसे निवृत्तिनाथ को दिया। निवृत्तिनाथ ने ज्ञानेश्वर को प्रदान किया।

यह निर्विवाद है कि मध्यकालीन भारतीय उपासना-परम्परा के प्रधान स्रोत शैवधर्म और वैष्णवधर्म का समन्वय महाराष्ट्र के नाथयोगियों और विट्ठल के चरण में समर्पित संतों की महनीय देन है। यह वारकरी शैववैष्णव समन्वयात्मक भक्ति परम्परा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है।

स्याल कोट के पूरण भगत-योगिराज चौरंगीनाथ की गणना नवनाथ-सिद्धों में की गयी है। वे गोरखनाथ के विशेष कृपापात्र थे। विमाता रानी लूना उनकी सुन्दरता से आकृष्ट होकर कामोपभोग का प्रस्ताव कर बैठी। पूरण भगत ने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। उसने उनपर मिथ्या दोषारोपण किया, जिसके परिणामस्वरूप राजा शालिवाहन ने उनके हाथ-पाँव कटवा कर वन में एक कुएँ में छुड़वा दिया। उन्हें नेत्रहीन कर दिया गया। जंगल में दैव योग से कुएँ के निकट योगीन्द्र मत्स्येन्द्र का आगमन हुआ। उनके साथ महायोगी गोरखनाथ भी थे। चौरंगीनाथ को कुएँ से बाहर निकाला गया। गोरखनाथजी की कृपा और प्रसन्नता से वे पूर्णांग हो गये। उनकी नेत्र-ज्योति वापस आ गयी। चौरंगीनाथजी गोरखनाथजी का बड़ा आदर करते थे। उन्होंने अपनी प्राणसंकली रचना में कहा है कि हमारे योगदान के गुरु मत्स्येन्द्रनाथजी हैं उनकी कृपा से मेरे हाथ-पैर पूरे हो गये। मेरे अन्नदाता श्रीगोरखनाथ हैं।

पंजाबी प्रेम-कथा में योगी राँझा का नाम अमर है। राँझा की योग साधना का प्रतीक झेलमनदी के पवित्र तटपर स्थित गोरखटिल्ला है। राँझा तख्त हजारा के चौधरी के सब से छोटे लड़के थे। झंग के चौधरी मेहरचोचक की रूपमती कन्या हीर से वह प्यार करता था, पर हीर का विवाह उसके माता-पिता ने दूसरे से कर दिया। राँझा ने निराश होकर योगीश्वर गोरखनाथ की शरण ग्रहण की। एक दिन राँझा गोरखनाथजी के तपःस्थल झेलम नदी के तट पर स्थित गोरखटिल्ला पर आ पहुँचे। उनका मुख म्लान था, नेत्रों में निराशा थी, अधरों पर बाँसुरी करुण राग में विरहवेदना के स्वर उढेल रही थी। उन्होंने योगमूर्ति गोरखनाथजी के चरणों पर पाँच पैसे और सुपाड़ी समर्पित कर योग दीक्षा की याचना की।

उन्होंने योगेन्द्र गोरखनाथ से कहा कि मुझे आशीष दीजिये कि मैं हीर का प्रेम प्राप्त करूँ। गोरखनाथजी ने कहा कि योगी होना आसान काम नहीं है: प्रेमास्पद तो एक मात्र परमात्मा हैं। योगी को शरीरपर राख मल कर शरीर को राख समझना होता है। नारी वर्ग को माँ-बहन के रूप में देखना होता है। आजीवन भिक्षा माँगकर जीवन-यापन करना होता है। संसार को सपना समझना होता है। राँझा ने कहा कि मेरा प्रेमास्पद ही परमात्मा है। मैं योगी बनूंगा। करुणामूर्ति गोरखनाथजी ने उनके कान फाड़कर उनमें कुण्डल पहना कर नाथयोग की दीक्षा दी और अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। गोरखनाथजी के आशीर्वाद और अनुग्रह से वे नाथ-सम्प्रदाय में प्रेम योगी के रूप में प्रसिद्ध हो गये। पंजाब के बड़े-बड़े कवियों और संत-महात्माओं ने उनके प्रेमयोग का रसास्वादन किया।

राजस्थान के मेवाड़, मारवाड़ तथा बीकानेर आदि के राजवंश, राज परिवार और राजस्थान की सामान्य जनता में महायोगी गोरखनाथजी के प्रति लम्बे समय से श्रद्धाभक्ति और सम्मान की भावना अक्षुण्ण रहती चली आ रही है। मेवाड़ का राजवंश गोरखनाथजी की अकारण कृपा और आशीर्वाद से अनुग्रहीत है। गोरखनाथजी ने मेवाड़ के सिसोदिया वंश के राज्य-संस्थापक बापा रावल को दुधारा खाँडा प्रदान कर उनका अपने योगबल से संरक्षण किया था। गोरखनाथजी द्वारा प्रदत्त खाँडे की मेवाड़ के महाराणा, भगवान् एकलिंग शिव के दीवान द्वारा विशिष्ट अवसरों पर पूजा की जाती है। नाथसम्प्रदाय के योगी ही मेवाड़ तथा अन्य राजवंशों में कुलगुरुपद पर प्रतिष्ठित होते रहते हैं। बचपन में नागदा नाम की पहाड़ी की तलहटी में बापा रावल एक ब्राह्मण परिवार की गायें चराया करते थे। नागदा ग्राम के पहाड़ों में ही गोरखनाथजी तपस्या कर रहे थे। उन्होंने स्फटिक शिवलिंग की प्रतिष्ठा की थी। जिन

गायों को बापा चराया करते थे, शाम को उनमें से नित्य एक गा टोली से निकल कर उस शिवलिंग का अपने दूध से स्वतः अभिषे करती, दूध बिना किसी के दुहे शिवलिंग पर गिरता था और साथ ही-साथ गोरखनाथजी का कमण्डलु भी दूध से भर जाता था। ए दिन छिप कर बापा ने यह घटना जान ली। गोरखनाथजी ने क कि तुम प्रातः हमारे आश्रम पर आ जाओ। बापा को आने में थो विलम्ब हुआ। वह देखता है कि योगेश्वर गोरखनाथजी स आकाश में गमन कर रहे हैं, गोरखनाथजी ने बापा को दुधा खाँडा प्रदान कर मेवाड़ राज्य की स्थापना का वरदान दिया। उन आशीर्वाद से बापा ने मेवाड़ राज्य की स्थापना की और वे इतिहा में बापा रावल के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जोधपुर के महाराज मानसिंह श्रीनाथ-सम्प्रदाय के बहुत ब अनुयायी थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध संग्रह-ग्रंथ "श्रीनाथ तीर्थावली में तथा अन्यान्य प्रकीर्ण रचनाओं में महायोगी गोरखनाथ की यौगि शक्ति, तपस्या और उनके चरणयुगल की उपासना पर प्रका डाला है। उनकी प्रेरणा से भीष्म भट्ट ने गोरखनाथजी के प्रसि योग ग्रन्थ "विवेकमार्तण्ड" की बड़ी मौलिक टीका संस्कृत भा में प्रस्तुत की है, भीष्म भट्ट ने उन्हें सिद्धसिद्धान्ततत्वज्ञ औ श्रीनाथपादाम्भोजमधुपायित मानस कह कर सम्मानित किया है महाराज मानसिंह ने जोधपुर में महामंदिर का निर्माण क नाथसम्प्रदाय की श्रीवृद्धि की।

महायोगी गोरखनाथजी द्वारा दीक्षित राजस्थान के विशिष्ट नाथयोगी जम्भनाथ, जसनाथ और हरिदास निरञ्जनी अत्य लब्धप्रतिष्ठ है। जम्भोनाथ-जंभानाथजी का जन्म सं. १५०८ वि. पीपासर (नागौर-राजस्थान) में एक सम्पन्न राजपूत परिवार में हु था। उन्होंने अपनी सारी सम्पति का त्याग कर "संभराथल" नाम

स्थान में अपना निवास बनाकर वहाँ विश्नोई सम्प्रदाय की स्थापना की थी। उनका देहावसान १५६३ वि. में संभराथल में ही हुआ। जाम्भोनाथ जी कहा करते थे-''गोरख गुरु अपाण।'' उन्होंने अपनी वाणियों में ॐकार-जप, निरंजन की उपासना और योगाभ्यास द्वारा अमृतपान में जरामरण में मुक्ति प्रदान करने पर बल दिया है। गोरखनाथजी ने स्वप्न में उन्हें दीक्षा प्रदान की।

संतयोगी जसनाथ सोलहवीं-सत्रहवीं विक्रमीथ शताब्दी में विद्यमान थे। जसनाथ को अमरकाय देहसिद्ध गोरखनाथजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर धन्य किया था। वे बाल्यावस्था में ऊँटनियों को चराया करते थे। एक दिन प्रातःकाल गोरखनाथजी ने उन्हें दर्शन देकर दीक्षित किया। जसनाथ ने गोरखनाथजी की आज्ञा से अपनी छड़ी जमीन में गाड़ दी और वहीं साधना करने लगे। यह स्थान नाथतीर्थों में अमित महत्वपूर्ण हैं, इसे गोरखमालिया कहा जाता है। सिद्ध जसनाथ का उपदेश है कि सत्यमय संयमित जीवन अपनाना चाहिये। असत्य नहीं बोलना चाहिये। अपनी शरीररूपी पुस्तक में मनरूपी लेखनी से परमात्मा का चरित अंकित करना चाहिये।

जसनाथ ने अपने आपको निरंजन जोगी कहा है। उनका जन्म बीकानेर में कतरियासर स्थान में सम्वत् १५३९ वि. में हुआ था और तिरोभाव सम्वत् १५६३ वि. में हुआ। उन्होंने प्रायः अनेक पदों के अन्त में गोरखनाथजी की प्रसन्नता का स्मरण करते हुए-''गुरु परसादे गोरख बचने सिध जसनाथ उचारे'' कहा है।

संतयोगी हरिदास निरञ्जनी गोरखनाथजी की साधना और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। सोलहवीं विक्रमीय शती के अन्त में या विक्रमीय सत्रहवीं शती के आरम्भ में उनका जन्म मारवाड़ के डीडवाना स्थान के कापड़ोद ग्राम में हुआ था। उनके द्वारा स्थापित

निरंजनी पंथ में अंतःसाधना पर विशेष बल दिया जाता है। हरिदास निरंजनी ने स्वीकार किया है कि गोरखनाथजी मेरे गुरु हैं, मैं उनका बालक हूँ, मेरे उपास्य अलख निरंजन परमात्मा हैं।

जगनिक के आल्हखण्ड में चन्देल राजा परमर्दि-परमाल को मत्सयेन्द्रनाथ का शिष्य कहा गया है। महोबा के वीर आल्हा गोरखनाथ की आज्ञा से कदलीवन में तपस्या करने गये। उन्हें अमर कहा जाता है। महोबा का गोरखगिरि पर्वत भी इसका साक्षी है।

महायोगी गोरखनाथजी ने उड़ीसा के योगी मल्लिकानाथ को अपने व्यक्तित्व और प्रत्यक्ष दर्शन से कृतार्थ किया था। योगिराज मल्लिकानाथ उड़ीसा के निवासी थे, उनका पूर्व नाम विबुधेन्द्रमल्ल था। वे क्षत्रिय योधा थे। एक बार आखेट के समय कृपामूर्ति गोरखनाथजी का उन्हें दर्शन हुआ। उन्होंने योगेश्वर के चरणदेश में प्रणाम किया। आशीर्वाद न पाकर उन्होंने गोरखनाथजी के मस्तक पर खड्ग से प्रहार किया। जटाजूट से टकराकर खड्ग के टूट जाने पर राजा को पश्चाताप हुआ। उन्होंने योगबल से प्रभावित होकर गोखनाथजी से योगदीक्षा ली। शिष्ट बन गये। उन्होंने चक्रार्चन में उत्तरसाधिका के रूप में एक कन्या का वरण कर सिद्धिलाभ किया था। उसका नाम मल्लिका था। इसलिये वे मल्लिकानाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। गोरखनाथजी ने उन्हें पिण्ड में आत्मा की स्थिरता, जन्म-मृत्यु से परे होने की अवस्था, शरीर की अमृतपान द्वारा अमरता-देहसिद्धि और मन-पावन की साधना का उपदेश दिया। मल्लिकानाथ यद्यपि तांत्रिक थे पर गोरखनाथ के प्रभाव से वे महान् नाथयोगी के रूप में प्रसिद्ध हुए।

महामति ब्रिग्स ने अपनी पुस्तक "गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज" में गोरखनाथ के व्यक्तित्व तथा विलक्षण और यौगिक

सिद्धियों पर प्रकाश डाला है। गोरखनाथजी का प्रकृति की शक्तियों और पंचभूतों पर अद्‌भुत नियंत्रण था। उन्होंने गोपीचंद की माता और योगिराज भर्तृहरि की बहन मयनावती को वरदान दिया था कि तुम पानी में नहीं डूब सकती। ब्रिग्स ने लिखा है- कहा जाता है धर्मराज युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के समय हिमाचल के भयानक हिमपात से भीमसेन आगे बढ़ने में असमर्थ और संज्ञाशून्य हो गये। गोरखनाथजी ने उन्हें दर्शन दिया और गंगोत्तरी से भूटान तक विस्तृत भूमिभाग का राजा बना दिया। ''गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज'' ग्रंथ में ही उनकी सिद्धियों की झोली का वर्णन है। वह अद्‌भुत शक्तिमयी थी। गोरखनाथजी उसमें से सेव, अंगूर, पुष्प, फल, रत्न तथा अनेक दुर्लभ पदार्थ प्रकट कर लोगों को देते थे। उनकी झोली की विभूति से असंख्य स्त्रियों ने पुत्रप्राप्ति की, गरीब धनी हो गये, असहाय और विपन्न सम्पन्न हो गये। कहा जाता है कि गोरखनाथजी ने अपनी झोली से कीमती साड़ियाँ, बहुमूल्य आभूषण आदि प्रकट कर अपने शिष्य गूँगा का विवाह कराया था। चौरंगीनाथजी ने योगदीक्षा के समय उसी झोली से कुण्डल प्रकट कर उनके कान में पहनाये गये थे। इसी झोली से चावल और अंगूर निकाल कर गोरखनाथजी ने चौरंगीनाथ की विमाता लूना को संतानप्राप्ति के लिए खाने को दिया था। इसी झोली की विभूति से उन्होंने एक उजड़े बगीचे को हराभरा कर दिया था। गोरखनाथजी योगसिद्धियों के स्वामी थे। ब्रिग्स ने ''गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज'' में उल्लेख किया है कि ''गोरखनाथजी के शिष्यों ने चौरंगीनाथजी से निवेदन किया था कि गोरखनाथजी शिव के परम प्रिय हैं, उनकी कृपा से सारे मनोरथ पूरे होते हैं, वे बड़े सुंदर है, भारतभूमि में उनसे सुंदर कोई नहीं है, वे मानसरोवर के राजहंस

हैं।'' गोरखनाथजी मूर्तिमान् योग हैं, महायोगज्ञान के परम तत्वज्ञ योगिराजेश्वर हैं। उन्होंने अपने योगसिद्धान्त-हठयोग की साधना और सिद्धि के माध्यम से सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा शिव का आत्मा से एकात्मबोध सिद्ध किया। उन्होंने शास्त्रसम्मत योगज्ञान से जनचेतना को जागृत कर सत्य और शिव के तत्व से उसे समृद्ध किया, यही उनकी अमरता की आधारशिला है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, भर्तृहरि (भरथरी) और गोपीचंद आदि की योगसिद्धि और योगपरक व्यक्तित्व के प्रति अपनी रचना ''पद्मावत'' में सुदृढ़ धारणायें व्यक्त कर नाथयोग में अपनी प्रगाढ़ रुचि अभिव्यक्त की है। जायसी नाथसम्प्रदाय-नाथपंथ की योगसाधना-पद्धति से प्रभावित थे, इस निष्पक्ष विचारधारा-नाथयोगपरक साधनपद्धति का सूफी दृष्टिकोण से सहज समन्वय ''पद्मावत'' की सफलता का प्राण हैं। पद्मावत में गोरखनाथजी का प्रभाव रत्नसेन एवं पद्मावति के व्यक्तित्व को समझने का महत्वपूर्ण अंग है। ''पद्मावत'' में वर्णन है कि राजा रत्नसेन ने पद्मावति का सौन्दर्य-वृत्तान्त सुनकर राजपाट छोड़कर योगी का रूप धारण कर सिद्ध होने के लिये ''गोरख'' नाम का उच्चारण किया। इससे स्पष्ट है कि नाथयोग से मध्यकालीन साहित्य अमिट प्रभावित था।

अपने प्रबन्ध काव्य ''पदमावत'' में जायसी ने कहा है कि योगी तब सिद्ध होता है, जब उसकी भेंट साक्षात्कार गुरु गोरखनाथजी से होती है। जायसी बादशाह शेरशाह के समसामयिक थे, वे सोहलवीं शती में विद्यमान थे, तो गोरख से भेंट होने का तात्पर्य यह नही समझना चाहिये कि गोरखनाथ सोलहवीं शती में अवतरित हुए। वास्तविकता तो यह है कि वे समय-समय पर

आदिकाल से ही प्रकट होकर इसी परिपक्व योगसिद्ध शरीर से अमर होकर लोगों को अपने दर्शन से कृतार्थ करते रहते हैं। गुरुरूप हीरामन तोता ने राजा रत्नसेन से कहा कि तुम सत्यवादी हो, तुमने योग को साधने में राजा गोपीचन्द को जीत लिया, वियोग की संवेदनात्मक अनुभूति में योगिराज भर्तृहरि भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकते। गुरु गोरखनाथ ने तुम्हे अपने हाथ से सिद्धि प्रदान की है और गुरु मत्स्येन्द्रनाथजी ने ज्ञान की कुंजी दी है।

महामति मलिक मुहम्मद जायसी ने रत्नसेन की वाणी में यह चरितार्थ किया है कि योगी तभी सिद्धि प्राप्त कर सकता है, जब वह (अमरकाय) गोरख का दर्शन पाता है, गोरखनाथजी से उसकी भेंट होती है। ''पदमावत '' की ही तरह कुतुबनकृत ''मृगावति'' पर भी नाथयोग और गोरखनाथ के व्यक्तित्व की अमिट छाप स्पष्टरूप से दर्शनीय और मननीय है। ''मृगावति'' में कुतुबन ने गोररवनाथजी के उल्लेरव में सिद्धयोगपीठ गोररवपुर का भी वर्णन किया है।

महायोगी गोरखनाथजी ने हठयोग के स्वारस्य का सम्पादन करते हुए (सूर्य) और (चन्द्रमा) के सहज सायुज्य पर बल दिया जाता है

इस सन्दर्भ में ''मगृावति'' में कुतुबन ने गोरखनाथ द्वारा निर्दिष्ट हठयोग प्रक्रिया का प्रबल पक्ष ग्रहण करते हुए अपना मत व्यक्त किया है।

जायसी ने भी कहा है कि सूर्य और चाँद का सामरस्य ही प्रेम की पूर्णतम अभिव्यक्ति है। गोरखनाथजी के द्वारा उपदिष्ट हठयोग के सिद्धान्थ की जीवात्मा के लिए चरम परिणति सूर्य -चन्द्र -प्राण और अपान का मिलन मध्यकालीन प्रेमाख्यानो में निरूपित है।

उस्मान ने चित्रावली के परेवा खण्ड में गोरखनाथजी की तपःस्थली गौरखपुर में योगसाधना का भव्य चित्र उरेहा है, गोरखपुर के यह बाह्य नही, अन्तःस्वरूप का परिचायक है।

संत कबीर ने अपने पदों मे तथा अन्यान्य साखी ,सबद आदि अनेक बार गोरखनाथजी और उनके योग का बखान किया है। मन के सम्बन्ध में विचार करते हुए कबीर ने गोविन्द के समान महत्व देकर उनके योग का महत्व ज्ञापन किया है।

संत कबीर ने गोरखनाथ के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि रामगुणलता का स्वारस्य गोरखनाथजी ने ही अच्छी तरह आस्वादित किया। सहज सनातन शाश्वत तत्व का ज्ञाता तो कोई बिरला योगी ही होता है।

सच्चिदानन्दघन ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्य की अनन्त निधि परमात्मा में जीवात्मा की परानुरक्ति की योगसिद्धि है। योग स्वतः रस है। मृगावती के समापन में उनके रचयिता कुतुबन ने श्रृंगार और वीर के साथ योग का उल्लेख करते हुए तीनों को रस कहा है।

अष्टांगयोग अथवा हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग और राजयोग के अन्तर्गत समस्त साधन-आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ॐ मन्त्र-जाप, अजपा गायत्री, कुण्डलिनी-जागरण, चक्रभेदन, नादानुसन्धान, अमृतपान आदि योगरस के उपांग हैं। योग की सम्पूर्ण रसरूपता के महासागर में आत्मा का लयीकरण, मन का उन्मनीकरण, निर्विकार, निष्कल सच्चिदानन्दस्वरूप निरंजन में सम्पूर्ण सामरस्य का कारण है। यह यौगिक सायुज्य-सामरस्य परम उन्मादकारी, अद्भुत, गुह्यतम रहस्य से अभिभूत है। गोरखनाथजी इसी महायोग-रस के रसिक थे। संत कबीर ने अपने बीजक के एक दोहे में उन्हें योगरसिक कहा है। यह बीजक पूना से प्रकाशित है और डॉ. कल्याणी

मल्लिक ने अपने ग्रन्थ - ''नाथसम्प्रदायेर इतिहास, दर्शन ओ साधना-प्रणाली'' में सन्दर्भगत दोहे को उद्‌धृत किया है।

गोरखनाथजी कबीर की दृष्टि में योग के रसिया-रसिक थे। संत कबीर ने यौगिक और विशेषतया नाथयोग-साधना के अनुरूप इडा, पिंगला और ब्रह्माग्नि के सहारे जिस रामरस के निर्माण की एक पद में विधि कही है, वह (रामरस) योगरस ही है।

गोरखनाथजी ने इस योगरसामृत का पान कर आत्मानन्द पद अमृततत्व प्राप्त किया। योगरसिक ब्रह्म-अग्नि में काया की आहुति देकर कार्यसिद्धि की विधि से शरीर को पक्व-पुष्ट अथवा अमृतायित करता है। योगरसिद्ध योगी अजपा गायत्री के द्वारा मन को उन्मनी अवस्था-अमनस्कता में सहज समाधि में लीन हो जाता है। इडा, पिंगला और सुषुम्ना की त्रिवेणी में कायिक मानसिक और आध्यात्मिक स्नान कर अलख निरञ्जन का अनुभव करता है।

योगरसिक महायोगी गोरखनाथ आत्मानन्दी योगी थे। आत्मा का आनन्द स्वरूप-सच्चिदानन्दत्व ही योगरस के आस्वादन का अमोघ माध्यम है।

महामति बलभद्र ने ''सिद्धसिद्धान्तसंग्रह'' में करुणासुधासागरस्वरूप योगी गुरु के चरण-सान्निध्य में अपने मन को मग्न करने का प्रस्ताव किया है, वह अमर योगसिद्ध महायोगी गोरखनाथ की कृपारसनिधि से ही कृतार्थ होने की एक मांगलिक प्रस्तावना है। ''सिद्धसिद्धान्तसंग्रह'' श्रीगोरखनाथकृत ''सिद्धसिद्धान्त पद्धति'' का अन्यतम सार है। ''सिद्धसिद्धान्तपद्धति'' बलभद्र के लिए गुरुवाणी है और उसके कर्ता गोरखनाथजी ही गुरुस्वरूप योगरससिद्ध अमरकाय परमाश्रय हैं। गोरखनाथजी का योगरस करुणारससुधानिधि है। योगरसिक

गोरखनाथ मूर्तिमान् करुणारस हैं, कृपामृतस्वरूप हैं। वे योगानन्दी महायोगी हैं।

गोरखनाथजी ने योगशास्त्रविहित ''ईश्वरप्रणिधान''- भगवद्भक्ति का योग की साधना के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त श्रेयस्कर प्रतिपादन किया। गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली रामायण (उत्तराकाण्ड ८४) में गोरखनाथजी के योग का महत्व प्रकाशित करते हुए कहा है-

गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु।
निगम नियोग तें सो कलि ही छरो-सो है॥

बड़े-बड़े विद्वानों ने अनेक कल्पनायें प्रस्तुत कर उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ में मान लिया है कि गोरखनाथजी ने योग क्या जगा दिया, भक्ति ही लोगों के हृदय से निकल गयी। यह मान्यता नितान्त असंगत है। गोरखनाथजी के साहित्य और योगसाधनप्रक्रिया के निगूढ़ और सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि गोरखनाथ उच्चकोटि के भक्तियोगी थे, उन्होंने भगवद्भक्ति को अपनी योगसिद्धि का परमाश्रय मानकर जनसामान्य को प्रेरणा दी है कि योग वेदरूपी कल्पतरु का सरस सिद्धप्रद फल है। इसका सेवन करने से भवताप का शमन हो जाता है। भवतापशमन ही योग है।

इस भवतापशमनरूप योग को गोरखनाथजी ने विवेकमार्तण्ड में परमात्मा में जीवात्मा का सायुज्य-सामरस्य बताया है, जिसकी अनुभूति निर्बीज अथवा निर्विकल्प समाधि में होती है।

'गोरखबानी' में गोरखनाथजी की अनेक उक्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें हरि की भक्ति पर ही विशेष बल दिया गया है। उन्होंने कहा है कि 'नारायण परांति इष्ट नाहीं' (सिष्टपुराण), ''सकल बिधि ध्यावो जगदीश'' (नरवै बोध), ''मोष मुक्ति चेतहु हरि पासा''

(प्राणसंकली) और ''क्यों भजिवो जगदीश''--''जगदीश का भजन ही जीवन है'' (गोरखबानी सबदी)। अतएव यह निर्विवाद है कि गोरखनाथ द्वारा निर्दिष्ट महायोगज्ञान भक्ति का पर्याय है।

गोरखबानी ने उस योग की साधना पर बल दिया, जो शिव द्वारा उपदिष्ट है; नाथयोगसाधना में शिवोपदिष्ट महायोग-ज्ञान का ही महत्व स्वीकृत है। ''गोरक्षपद्धति'' में गोरखनाथजी का कथन है कि योगशास्त्र आदि नाथ (भगवान् शिव) के मुखकमल से निःसृत है। उसी का नित्य मनन और चिन्तन (अभ्यास तथा साधना) करना चाहिये।

गोरखनाथजी ने नाथयोग-साधना के परिप्रेक्ष्य में कहा है कि श्रुति और स्मृति में योगमार्ग (शैवयोग-शिवयोग) से श्रेष्ठ कोई दूसरा मार्ग नहीं है। साक्षात् शिव ने प्राचीन समय में (क्षीरसागर के परिसर में भगवती पार्वती के प्रति) इसका प्रवचन किया है। अन्यशास्त्रों में भी यह दुर्लभ है।

गोरखनाथजी ने ''योगबीज'' रचना में पार्वती-शंकर के सम्वाद के रूप में नाथयोगमार्ग की विशेषता अथवा श्रेष्ठता का वर्णन किया है। भगवती पार्वती ने शंकर से (योगबीज ५) मोक्षप्रद मार्ग पूछा तो शिवजी ने कहा कि जिसका आश्रय ग्रहण करने पर संसार-बंधन में ग्रस्त जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं, उसका मैं तुम से वर्णन करता हूँ। यह नाथयोगमार्ग अत्यन्त श्रेयस्कर है, अन्य मार्गों के अनुसरण से कैवल्यपद दुष्प्राप्य है, इसकी प्राप्ति सिद्धमार्ग पर चलने से ही होती है।

सत्स्वरूप के अभिज्ञान, विज्ञान के लिये योगमार्ग ही गोरखनाथ की दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। यह शिवकथित सिद्धसिद्धान्त है। श्रीगोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित तथा शासित-ज्ञापित योगमार्ग में

मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग से भी परे महायोग है। इसी महायोग का गोरखनाथजी ने मत्स्येन्द्रनाथ को स्मरण दिला कर कदली वन के विहार से मुक्त कर उन्हें स्वरूपबोध से जगाया था। इस महायोगज्ञानामृत का वर्णन फैजुल्ला ने अपने "गोरखविजय" काव्य में किया है।

इसी महाज्ञान को मत्स्येन्द्रनाथ ने क्षीरसागर में शिव के मुख से सुनकर गोरखनाथजी को प्रदान किया था। गोरखनाथजी द्वारा गुरु से प्राप्त, स्वीपदिष्ट तथा प्रतिपादित नाथयोग का तात्विक दर्शन द्वैताद्वैतविलक्षण अपरोक्ष महायोगज्ञान है। नाथयोग के सम्बन्ध में शोध और परिशीलन करनेवाले बड़े-बड़े मनीषियों ने जिज्ञासा की वेदी पर यह स्वीकार कर कि नाथयोगज्ञान शांकर अद्वैतवाद की प्रतिच्छाया अथवा देन या अनुकृति है, बड़ी भूल की है। यह अत्यन्त भ्रामक और मिथ्या विचार है। शांकर वेदान्तदर्शन तत्व तो नाथयोग ज्ञान की स्वतः प्रतिच्छाया तक नहीं पा सकता। समस्त ब्रह्मसूत्र के परिशीलन में तो केवल मात्र जीवात्मा के ब्रह्मस्वरूप का दार्शनिक प्रतिपादन है। यह ब्रह्मस्वरूप द्वैत, अद्वैत, दोनों में ग्राह्य है। नाथयोग द्वारा प्रतिपादित स्वसंवेद्य सत्स्वरूप ॐकार पदातीत, निरंजनव्यतिरिक्त साक्षात् शिव अपनी निजा शक्ति को तिरोहित कर देने पर द्वैताद्वैतविलक्षण स्वरूप में अभिव्यक्त होते हैं। संत कबीर ने गोरख, महादेव, सिद्ध और नाथ के प्रस्थानचतुष्टय में नाथयोगज्ञान की द्वैताद्वैतविलक्षणता व्यक्त की है।

गोरखनाथ, महादेव, सिध और नाथ चारों-के-चारों अभिन्नस्वरूप, एक तत्व हैं। सब-के-सब पर्याय हैं। सिद्धसिद्धान्तप्रतिपादित पिण्डप दसामरस्य नाथयोगसाधना में महत्तम आधार है अपरोक्षस्वरूपानुभूति का। शक्ति, जीव और शिव

का उन्मन धरातल पर ऐक्यबोध ही नाथयोग की साधना की सिद्धि है। यह सद्‌गुरु के सन्निधान और सिद्ध पुरुष के साक्षात्कार से सम्भव है। यही नाथयोगपंथ अथवा सिद्धामृत मार्ग है, जिसकी उपेक्षा महती विनष्टि और अपेक्षा स्वरूपसिद्धि है। गोरखनाथजी के परवर्ती योगसाधनाक्षेत्र में नाथयोग के सिद्धों और साधकों में यही साधन-प्रक्रिया स्वीकृत होती आयी है तथा निर्गुण मार्गीय संतों की चिन्तनधारा, वैष्णवों और शैवों की उपासना तथा प्रेमाख्यान काव्यों की रचना और अन्यान्य चिन्तन-क्षेत्र में इसी की अनुकृति प्रचलित रही है। गोरखनाथजी ने योगसाधना द्वारा पक्व देह-सिद्धदेह की प्राप्ति पर बल दिया। योगाग्नि में शरीर को अमृतायित करना ही योग-साधना की सिद्धि है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने भी पदमावत में योग-साधनागत इसी शारीरिक परिपक्वता को परिलक्षित किया है।

नाथसिद्ध योगिराज भृर्तहरि ने अपने गुरु गोरखनाथ के सदुपदेश से योग साधना में सिद्धिप्राप्ति की बात की पुष्टि की है।

गोरखनाथजी ने संस्कृत और लोकभाषा, दोनों में योगपरक साहित्य का अमित मौलिक सृजन किया, इन ग्रंथों और रचनाओं में द्वैताद्वैतविवर्जित स्वसंवेद्यतत्व का यथाक्रम अभिव्यञ्जन करते हुए उन्होंने हठयोग, षडंगयोग और अष्टांगयोग का नाथयोगसाधना के परिप्रेक्ष्य में उत्तमोत्तम वर्णन किया है। उनकी रचनायें गोरक्षकल्प, गोरक्षसंहिता, गोरक्षतक, गोरक्षगीता, विवेकमार्तण्ड, गोरक्षशास्त्र, ज्ञानप्रकाशशतक, ज्ञानामृत, महार्थमञ्जरी, योगचिन्तामणि, योगमार्तण्ड, योगसिद्धान्तपद्धति, श्रीनाथ-सूत्र, सिद्धसिद्धान्तपद्धति, हठ संहिता, अमनस्कयोग, योगबीज, शिवयोगसार, शिवयोगदर्पण, गोरक्षपद्धति आदि संस्कृत भाषा में

उपलब्ध होती हैं, प्रायः सभी की हिन्दी टीकायें भी उन में संयुक्त हैं। उन्होंने लोकभाषा हिन्दी में भी अपने उपदेशों में बड़ी सारगर्भित योगसाधना का वर्णन किया है, जिनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधिपर सांगोपांग प्रकाश डाला गया है। लोकभाषा में व्यक्त पद्यात्मक उपदेशादि और साधन-प्रक्रिया आदि का संकलन ''गोरखबानी'' में किया गया है। ''गोरखबानी'' में सवदी, पद, सिष्यादर्शन, प्राणसंकली, नरवैबोध, आत्मबोध, ग्यानचौंतीसा, अष्टचक्र, ग्यानतिलक, अभैमात्राजोग, सिष्टपुराण, दयाबोध, रहरासि, मछींद्र-गोरखबोध, रोमावली, गोरख-गणेसगुष्टि, पंचमात्रा, महादेव-गोरक्षगुष्टि, ज्ञानदीपबोध, पंचअग्नि, पन्द्रहतिथि, सप्तवार, अष्टमुद्रा, सप्तवार नवग्रह, चौबीस सिद्धि आदि संग्रहीत है। उनकी सभी रचनाओं में नाथयोग की साधना और दर्शन का वर्णन किया गया है।

नाथयोगदर्शन के स्तर पर गोरखनाथजी का कथन है कि मैंने जिस ज्ञान का विचार किया है, उसमें झिलमिल ज्योति की चन्द्रिका प्रकाशित है। इस दीपक (घट) ज्योति की बत्ती अखण्डित है, नाथनिरंजन की आरती दिन-रात होती रहती है।

गोरखनाथजी हठयोग-विद्या के आचार्य स्वीकार किये गये हैं। उन्होंने प्राण, अपान के ऐक्य द्वारा मन और बिन्दु-वीर्य की तल्लीनता को हठयोग का प्राण कहा है। श्रीआदिनाथ द्वारा उपदिष्ट हठयोग-विद्या ही गोरक्षनाथ के योगामृत की परिचायिका है।

महायोगी गोरखनाथ की योगसिद्धि की यह अपूर्व और महनीय विशिष्टता है कि उन्होंने जन-जीवन में योगदर्शन का वास्तविक मर्म और महत्व समझाया। श्रीगोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित नाथयोग में यह परिलक्षित है कि योगसाधना में शरीर की शोधन-प्रक्रिया

पर विशिष्ट ध्यान देना चाहिए।

इसका आशय यह है कि शरीररूपी मढ़ी में मनयोगी निवास करता है। मनरूपी योगी ने अपने लिये पाँच तत्व की कथा बनायी है। वह क्षमा का षडासन, ज्ञान की अधारी, सद्बुद्धि की खड़ाऊँ और विचाररूपी दंड-डंडा अपनी योगसाधना के उपयोग में लाता है। मन का योग ही वास्तविक योग है, इस योग की साधना में शरीर सहायक है। बाह्य योगसाधनों और यौगिक उपकरणों की अपेक्षा आभ्यन्तर युक्तियों के आश्रय-ग्रहण से योग की सिद्धि होती है। योगी गूदड़ी धारण करता है, इस गूदड़ी में परमात्मा अथवा आत्मा का निवास होता है। गूदड़ी योगसिद्धि का परम उपाय है। श्रीगोरखनाथजी ने परमार्थचिन्तन के संबंध में कहा कि योगी को साधना में तत्पर होकर धैर्यपूर्वक अल्पाहार का सेवन करते हुए एकान्त का आश्रय लेकर परमार्थ का चिन्तन करना चाहिये, जो संसाररोग को हरनेवाला प्राणोपम अद्वितीय अमृत है।

योगरसिक गोरखनाथजी ने जीव के स्वरूप का परिज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने प्राण-पुरुष जीवात्मा का अन्वेषण कर जगत् में जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का उपाय निकाला। उनकी वाणी है कि ज्ञान ही सबसे बड़ा गुरु है, चित्त ही सबसे बड़ा चेला है। ज्ञान और चित्त का योग सिद्ध कर जीव को जगत् में अकेला रहकर अपने परमात्म स्वरूप-परम शिव में प्रतिष्ठित रहना चाहिये। यही श्रेय अथवा आत्मकल्याण का पथ है।

उन्होंने परमात्म साक्षात्कार के स्तर पर कहा कि मैंने पिण्ड में समस्त ब्रह्माण्ड का अनुसन्धान कर महायोगसिद्धि का रहस्य जान लिया है। देव, देवालय, तीर्थ आदि इसी शरीर में है। मैने शरीर के भीतर अविनाशी परमात्मा, अलख निरञ्जन की अनुभूति प्राप्त कर ली। उन्होंने कहा कि जहाँ अच्छी तरह झरने वाले झरने पर अमृतरस

पीने को मिलता है, वहाँ जाकर चन्द्रमा के बिना प्रकाश, कारणरहित स्वतः प्रकाश परब्रह्म का मैंने दर्शन किया।

गोरखनाथजी के योगसिद्धान्तानुसार इडा और पिंगला-चन्द्रमा और सूर्य को रोक कर सुषुम्ना से प्राणवायु संचारित करना ही हठयोग की साधना है। हठयोग से अविद्या का नाश होता है। कुण्ठलिनी शक्ति का शिव से सामरस्य ही परमसिद्धि है। वायु, मन और बिन्दु में से किसी एक को वश में करने पर सिद्धि मिलने लगती है। गोरखनाथजी के हठयोग ने ज्ञान, कर्म और भक्ति, यज्ञ, तप और जप के समन्वय से जनजीवन-लोकमानस को सम्पन्न किया। उनका कथन है कि मैं अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से इडा-पिंगला, गंगा-यमुना के मध्य सुषुम्ना में समाधिस्थ होकर ब्रह्मज्ञान में रमण करता हूँ।

गोरखनाथजी ने हठयोगसाधन की दिशा में धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभांति-हठयोग में शरीरशोधन के छः अंगों पर जोर दिया। समस्त श्रेयों का मूल उन्होंने गुरु को ही स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि नाथ स्वरूप की प्राप्ति ही मोक्ष है। अद्वैत अवस्था सदानन्द देती है। शक्ति सृष्टि करती, शिव पालन करते हैं, काल संहार करता है, नाथ मुक्ति देते हैं। नाथ ही एकमात्र शुद्ध आत्मा हैं, शेष बद्ध जीव हैं, नाथ सगुण-निर्गुण से अतीत और परात्पर हैं। वे ज्योतिस्वरूप सच्चिदानन्द-मूर्ति हैं। उन्होंने आचरण और अनुभवपूर्ण शब्द को ही योगशास्त्र कहा।

गोरखनाथजी का योगसिद्धान्त अनुभव-वाङ्मय का अक्षर ज्ञापन है। उन्होंने कारणरहित अमृतमय स्वप्रकाश ब्रह्म का साक्षात्कार किया। गोरखनाथ ने बताया कि आत्मा ही परम पूज्य है, शिव है। शरीर के नवों द्वारों में नवनाथ हैं, त्रिवेणी में जगन्नाथ सोपाधिक ईश्वर हैं, दसवें द्वार ब्रह्मरन्ध्र में केदारनाथ शिव स्वयं परब्रह्म हैं

योग की सारमयी युक्ति ही संसार से मुक्ति है, शून्य का साक्षात्कार होते ही बिरल कैवल्य पद में समाकर मेरा द्वैत भाव नष्ट हो गया। मुझे शून्य अथवा ब्रह्म के साथ तादात्म्य का अनुभव हो गया। गोरखनाथजी ने मन को समझाया कि तुम परब्रह्मस्वरूप होकर निर्द्वन्द्व हो जाओ, मूलाधार के सूर्य को सहस्त्रार में चन्द्रमा से युक्त कर लो। त्रिकुटी में अनाहत भौंरा गूँज रहा है। ब्रह्मरन्ध्र का कपाट खोलकर महारस-अमृत का पान कर लो। जीवात्मा का मैल छुड़ा कर तथा सदोष नाड़ियों को वायु से शुद्ध कर वंकनाल सुषुम्ना में वायु भर कर मुक्त हो जाओ। गोरखनाथजी ने कहा कि जब सहज समाधि के द्वारा मन से ही मन को देखा जाता है, तब जो अवस्था होती है, वास्तव में वही मोक्ष है।

गोरखनाथजी के योग का अत्यन्त प्रासादिक अंग है, आत्मविचार, आत्मविचार अन्तर्साधना की आधार-शिला है। गोरखनाथजी स्वसवेद्य तत्व के साक्षात्कार के अन्तर्दृष्टा थे, यह साक्षात्कार उनकी अन्तरंग साधना का प्राण है।

यही सिद्ध का मार्ग है, कोई साधु पुरुष ही इस सिद्धमार्ग की महत्ता को जान पाता है।

गोरखनाथजी सिद्धसिद्धान्त पद्धति के तत्वज्ञ थे।

गोरखनाथजी ने साधना के स्तरपर अपने आप को निरंजन योगी कहा है।

द्वैताद्वैतविवर्जित परब्रह्म ही अलख निरंजन है। उन्होंने निरंजन तत्व को अपनी ''महार्थमंजरी'' रचना में कहा है कि अद्वय और द्वैताद्वैत के उत्तर (परे) है, यह निर्विकार और अत्यन्त संशुद्ध है, भगवदनुग्रहैकसाध्य, भवभय का हरण करने वाला, प्राणियों के लिये मुक्ति-मार्ग का सोपान है। इस निरञ्जन, सूक्ष्म, स्वसंवेद्यतत्व को गोरखनाथजी ने प्रकाशित कर जीवमात्र के लिए श्रेयस्कर

पथ-प्रदर्शन, सन्मार्ग-दर्शन किया।

गोरखनाथजी ने अपनी रचनाओं में सूक्ष्मातिसूक्ष्म तात्विक विश्लेषण के माध्यम से हठयोग, षडंगयोग और अष्टांगयोगपर योगबीज, विवेकमार्तण्ड और सिद्धसिद्धान्तपद्धति में प्रकाश डाला है।

योगबीज १४८-१५२ में उनका कथन है- हकार से सूर्य तथा ठकार से चन्द्र कहा जाता है। सूर्य और चन्द्र के सहयोग से यही हठयोग कहलाता है। समस्त दोषों से उत्पन्न जड़त्व हठयोग से ग्रसित-नष्ट होता है। इस तरह जीवात्मा और परमात्मा की एकता होने पर चित्त (प्राण में) लय को प्राप्त होता है। लययोग का उदय होने पर प्राणवायु स्थिर होती है, लय से स्वात्मानन्द, परम सुख मिलता है। अणिमादि पद प्राप्त होने से योगी राजयोग में स्थिर होता है। प्राण और अपान के सामरस्य में ये चारों मन्त्र, लय, हठ और राजयोग चरितार्थ होते हैं।

''विवेकमार्तण्ड'' रचना में षडंगयोग पर समन्वयात्मक दृष्टिकोण के स्तर पर गोरखनाथजी ने कहा है कि योगी योगासन से रोग का, प्राणायाम से पातक का, प्रत्याहार से मानसविकार का शमन-संहार करता है। योगी शुभाशुभ कर्म का त्याग कर धारणा से मन का धैर्य, ध्यान से अद्‌भुत चैतन्य तथा समाधि से मोक्ष प्राप्त करता है। प्राणायाम में ही योगियों का मोक्ष धर्म सन्निहित है।

यम का आशय है उपशम (इन्द्रियादि को वश में रखकर शान्ति) प्राप्त करना। साधक को धीरे-धीरे यथाक्रम समस्त इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों की ओर से मोड़कर आत्मचिन्तन में लगाकर उन्हें वश में रखकर आहार, निद्रा, शीत, वात और आतप आदि द्वन्द्वों को नियन्त्रित कर (युक्ताहारविहारपूर्वक) योग-साधना में तत्पर होना चाहिये। मन के व्यापार का नियमन-नियन्त्रण ही नियम

है, एकान्तवास, असंगता, उदासीनता, जो कुछ भी (जीविका के निर्वाह के लिये) प्राप्त हो जाय, उसमें संतोष धारण करना, रागद्वेषरूपी द्वन्द्वों में उपरामता और गुरुचरण के आश्रय में ही निर्भरता नियम के लक्षण हैं। गोरखनाथजी ने आसन को स्वस्वरूप में समासन्नता कहा है। स्वसंवेद्य द्वैताद्वैत विवर्जित (परमात्म) स्वस्वरूप में चेतना की संस्थित अथवा स्थापन ही आसन है- ''आसनमिति स्वस्वरूपे समासन्नता'' (सिद्धसिद्धान्तपद्धति २। ३४), ध्येय तत्व में स्थिरता ही आसन है। योगासन के अभ्यास के साथ-ही-साथ योग साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए दस प्रधान मुद्रायें महावेध, जालन्धरबन्ध, उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध, विपरीतकरणी, खेचरी, शाम्भवी आदि भी सापेक्ष है। इनके अभ्यास से पक्व शरीर की प्राप्ति होती है।

देहधारी मनुष्य दो प्रकार के कहे जाते हैं, एक तो वे हैं, जो योगहीन होने के नाते अपक्व (कच्चे) देहवाले हैं और दूसरे योगाभ्यास से युक्त होकर पक्व (पक्के) देहवाले हैं। जो मनुष्य योगाग्नि के द्वारा पक्व देहवाले अपने चैतन्यस्वरूप में स्थित होते हैं, वे शोकरहित होते हैं, जो मनुष्य (योगाभ्यास से हीन होकर) कच्चे देहवाले हाते हैं, वे आत्मज्ञान से रहित अविवेकी होते हैं, उनका अपरिपक्व शरीर दुःख देता रहता है।

प्राणायाम के संबंध में गोरखनाथजी ने कहा है कि शरीर की नाड़ियों में प्राण के प्रवाह के प्रयासपूर्वक उसे स्थिर रखने की क्रिया ही प्राणायाम है।

गोरखनाथजी का मत है कि जब तक प्राण (वायु) देह में स्थित है; तब तक उसका जीव परित्याग नहीं करता है।

योगसाधना का एक प्रमुख अंग पवन का संयम-प्राणायाम है। प्राणायाम से नाड़ियों का मलशोधन होता है, शरीर की शक्ति

बनी रहती है, मन संयमित और स्थिर रहता है। जो साधक प्राण को आ ने शरीर में स्थिर रखता और इसका रहस्य समझ लेता है, वह सिद्ध हो जाता है। वह सारी सिद्धियों को वश में कर लेता है।

गोरखनाथ ने कहा कि चैतन्य आत्मा के इन्द्रियरूपी घोड़ों के (उनके शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि में) प्रत्याहरण से उनके विकारग्रस्त होने से उत्पन्न विकारों की समाप्ति हो जाती है- यही प्रत्याहार है। शरीर से बाहर-भीतर एक ही निजतत्वस्वरूप (आत्मा) व्याप्त है, अन्तःकरण से इस तरह की भावना ही धारणा है। जो-जो भौतिक प्रपंच उत्पन्न होता है, उसकी निराकार आत्मारूप में धारणा करनी चाहिये और वायुरहित दीपक के निश्चल प्रकाश के समान (प्रपंचातीत) आत्मचैतन्य का ही चिन्तन करना चाहिए; यही धारणा का लक्षण है।

गोरखनाथजी न शरीर में ध्यान के नव स्थान-नव चक्रों की स्थिति स्वीकार की है। उनका कथन है कि इन चक्रों पर ध्यान स्थिर करने से इष्ट की प्रापि में सहायता मिलती है। ''पिण्डे नवचक्राणि'' (सिद्धसिद्धान्त पद्धति २। १) उन्होंने ध्यान की परिभाषा की- नामरूप से परे अद्वैतस्वरूप परमात्मा है, यही आत्मा है। जो-जो वस्तु प्रतीत हो, उसमें आत्मस्वरूप की ही भावना करनी चाहिये। समस्त भूत मात्र में समदृष्टि-आत्मदृष्टि अथवा आत्मस्वरूप की (सभी प्राणियों में एक मात्र परमात्मा की प्राप्ति की) भावना ही ध्यान है। एक मात्र ध्यान का विषय निरंजन परमात्मा है। निरंजन के उपरान्त ध्यान के लिए रह ही क्या जाता है।

कुण्डलिनी-जागरण का, महामाया पराशक्ति का सहस्त्रार में शिव का ऐक्यबोध ही ध्यान का परम फल है। गोरखनाथजी ने कहा है कि नारायण ही इष्ट है। नारायण से तात्पर्य है परमात्मा अलख निरञ्जन।

इस इष्ट में अभिन्नता निर्विकल्प समाधि का ही पर्याय है। समस्त तत्वों की समावस्थागत अनायास, स्वाभाविक (सहज) स्थिति ही समाधि है, समाधि में ही परमपद की प्राप्ति गुरु की प्रसन्नता से होती है।

गोरखनाथजी ने योगसाधना में सत्य के आचरण अथवा सत्य को सर्वोपरि ठहराया। गोरखबानी में संग्रहीत सिष्टपुराण में उनका कथन है कि सत्य ही सबसे बड़ा जीवन शास्त्र है। गोरखनाथजी ने प्राणीमात्र को निर्मल उपदेश के रूप में लक्षित किया है कि निरन्तर आत्माराम में रमण करना ही महान ज्ञान हैं।

इटली के एल.पी. टैसिटरी का कथन है कि -गोरखनाथ कनफटा योगी सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता थे। उनके नाम से इस सम्प्रदाय के योगी दर्शनी और गोरखपंथी कहलाते हैं। उन्होंने कनफटा योगी सम्प्रदाय को बौद्ध धर्म के प्रभाव से मुक्त किया। गोरखनाथ के धर्म की प्रधान विशेषता है, इसकी सार्वजनिकता, इस धर्म का द्वार सबके लिए खुला है।

गोरखनाथ चिरंजीवी हैं। उनका नाथ योग सनातन है। उनके वचन साक्षात् वेद है। मैथिलकोकिल विद्यापतिकृत "गोरक्षविजय" नाटक के भरत वाक्य की शुभांशा ही हमारी गोरखनाथजी के चरण देश में विनम्र वन्दना है-

"श्री गोरक्ष चिरेण जीव जगतित्वत्कीर्तिरूजृम्भाताम्॥"

हे गोरखनाथ! आप जगत में सदा जीवित रहे, आपकी कीर्ति का विस्तार हो।

3. कविनारायण

मत्स्येन्द्रनाथ

अभिनव शिव योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ की महिमा अचिन्त्य, अविनश्वर, परमयोगसिद्धि की सम्पूर्ण प्रतीक है, उनकी योगविभूति शिवमयी परमात्म ज्योति-साक्षात्कार की प्राणामृत-संजीवनी है। महामति मत्स्येन्द्रनाथ ने आत्मा के योग के माध्यम से परमात्म बोध अथवा शिवैक्य अथवा स्वरूपानुभव की प्राणप्रतिष्ठा संस्कारित की। वे शैव योग के परमाचार्य-महत्तम गुरु थे। वे आदिनाथ के सिद्ध यौगिक संस्करण थे। उन्होंने निगमागमसम्मत योगदर्शन का जगत् को निगूढ़ातिगूढ़ तात्पर्य समझा कर श्रुतिप्रतिपादित आस्तिकता-ईश्वर की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन किया। करुणामय महायोगिराजेन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से योगविज्ञान अनन्त कालतक अक्षय रहेगा।

परम योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने तान्त्रिक साधना-पद्धति का यौगिककरण कर शक्ति-उपासनापरक योगिनी कौल मत का प्रवर्तन कर योग-साधना में शिव (अकुल) और शक्ति (कुल) के सामरस्य का सिद्धान्त समझाया और इसके फलस्वरूप उन्होंने योग-दर्शन के प्रकाश में सिद्धमत का पोषण किया, योगाचार सिखाया। उनके अनुवर्ती गोरखनाथ ने षडंगयोग, किंवा हठयोग-आसन, (मुद्राबन्ध), प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि को नाथ-सम्प्रदाय की साधना की आधारशिला स्वीकार की। मत्स्येन्द्रनाथ ने बौद्ध अनात्मवाद के विवर्त में ग्रस्त वैदिक विचार और आध्यात्मिक चिन्तन का अपने सिद्धमत-सिद्धामृतमार्ग से

समुद्धार कर आत्मा से परमात्मा का, जीव से शिव का शाश्वत योग सिद्ध किया।

योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ अकाल योगपुरुष हैं, उनका महाज्ञान-सिद्धाचार अव्यय है। वे महासिद्ध हैं, कालदण्ड का खंडन कर वे सिद्धदेह में स्थित होकर निरन्तर ब्रह्माण्ड में विचरण करते रहते हैं। हठयोग के अप्रतिम प्रभाव से उन्होंने स्वशरीर का आत्मीकरण-चिन्मय परमात्म तत्व से रसायनीकरण कर लिया है।

महायोगी गोरखनाथ ने अपने गुरुदेव मत्स्येन्द्रनाथ के पादपद्म में प्रशस्ति समर्पित की है कि उन्होंने मूलाधार बन्ध, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध आदि योगाभ्यास के हृदय-कमल में निश्चल दीप की ज्योति सरीखी परमात्मा की कला का साक्षात्कार करके युग-कल्प आदि के रूप में चक्कर काटने वाले काल के रहस्यों तथा समस्त तत्वों को (योगाभ्यास से) जीत लिया था, अपने वश में कर लिया था और स्वयं ज्ञानान्द के महासागर आदिनाथ (शिव के स्वरूप) हो गये थे, उन श्रीमीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) का हम ध्यान करते हैं, प्रणाम करते हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से गोरखनाथजी ने आत्मब्रह्म-स्वसंवेद्य परमतत्व का साक्षात्कार किया। सद्‌गुरु के शब्द-श्रवण से ज्ञानस्वरूप मणिदीप की प्राप्ति होती है, ज्ञानदीप के प्रकाश में तीनों लोकों का ज्ञान होने लगता है।

गोरखनाथजी ने कहा है कि मैं गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसाद से गंगा (इडा) और यमुना (पिंगला) के बीच (सुषुम्ना) में विहार कर रहा हूँ। समाधिस्थ होकर आत्मसाक्षात्कार कर रहा हूँ।

एक प्रशस्ति में गोरखनाथजी ने बड़ी श्रद्धा और भक्तिभावना से मत्स्येन्द्रनाथजी की महिमा का वर्णन किया है।

"श्रीगुरु परमानन्द तिनको दंडवत् है। है कैसे परमानंद आनन्दस्वरूप है सरीर जिन्हि को। जिन्हिकै नित्यगायै ते सरीर चेतन्नि और आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरिष सो मच्छन्दरनाथ को दंडवत् करत हौं हैं कैसे वै मच्छन्दरनाथ। आत्मा जोति निस्चल है, अन्तःकरण जिनि कौ अरु मूल द्वार तैं छह चक्र जिनि नीको तरह जानै अरु जुग काल कल्प इनि की रचना तत्व जिनि गायो। सुगन्ध को समुद्र तिनि को मेरी दंडवत। स्वामी तुमे तो सतगुरु अम्है तो सिष सवद एक पुछिबा दया करि कहिबा मनि न करिबा रोष।" (मिश्रबंधुविनोद, पृ. २११-२१२)

गोरखनाथजी ने मत्स्येन्द्रनाथ से अपने सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए बताया है कि मैं आदिनाथ (शिव) का नाती-शिष्य और मच्छेन्द्रनाथ का पुत्र-शिष्य हूँ और इस तरह केवल निज तत्व (आत्मा) का दर्शन करता हूँ।

मत्स्येन्द्रनाथ आदि सिद्धों को ऐतिहासिक समय-बन्धन में रखना कदापि उचित नहीं है। यह कहना अथवा निश्चित करना कि उन्होंने किस शताब्दी को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया, कठिन है; वे काल की सीमा से परे अमरपद में संस्थित सिद्ध योगात्मापुरुष हैं। नाथयोगमत अत्यन्त प्राचीन है, इस दृष्टि से नाथमत अथवा शैव योगमत-सिद्धमत के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ और उसके पोषक महायोगी गोरखनाथ निस्सन्देह नाथसिद्धपरम्परा में अत्यन्त पूर्ववर्ती ठहरते हैं। तन्त्रालोक के प्रथम आह्निक में माहेश्वर अभिनवगुप्त ने मत्स्येन्द्रनाथ को "मच्छन्दविभु" कह कर उनके प्रति श्रद्धा समर्पित की है। इससे मत्स्येन्द्रनाथ की पूर्ववर्तिता और प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। माहेश्वर अभिनव गुप्त ईसा की दसवीं शती में विद्यमान थे। मच्छन्द का अर्थ है आतान-वितान-

वृत्यात्मक जाल को छिन्न करने वाले। अभिनवगुप्त का कथन है- जिन्होंने राग-गैरिकादि द्रव्य अथवा रागतत्व के अरुण-लाल अथवा भेददशा के प्रसार से युक्त गाँठों और सलिल के निर्गम-स्थान बिलों से अथवा ग्रन्थिमाया एवं बिल-भोगभूमियों से व्याप्त लम्बाई और चौड़ाई के मान से युक्त अथवा सर्वत्र फैले हुए तथा कला से अथवा शान्त प्रतिष्ठा, विद्या और निवृत्ति-कला से निर्मित जाल, मत्स्यबन्धन अथवा इन्द्रजालमयी माया को दूर कर दिया, चपल चित्तवृत्तिरूप पाशों का खण्डन करने वाले वे मच्छन्दविभु (गुरु) मुझपर प्रसन्न हों। अभिनव गुप्त ने इस तरह शैव नाथ योग की गुरु-परम्परा में मीननाथ-मत्स्येन्द्रनाथ का स्तवन किया। उपर्युक्त श्लोक पर जयरथ की टीका से स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा मच्छन्द ही मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) थे और भुवनेश्वरी स्तोत्र (३७) में उसके रचयिता पृथ्वीधराचार्य ने इन्हीं को सिद्धनाथ कहा है-सकलागम-चक्रवर्ती बताया है। यह नितान्त असंदिग्ध है कि मत्स्येन्द्रनाथ अभिनवगुप्त से कहीं पहले नाथयोग के तथा महायोगी गोरखनाथ के गुरुरूप में प्रतिष्ठित थे।

मत्स्येन्द्रनाथजी की विशिष्टता यह है कि नाथ-परम्परा में आदिनाथ शिव के उत्तराधिकारी के रूप में वे नाथ-सम्प्रदाय के प्रथमआचार्य हैं। नाथ-सम्प्रदाय के वे इस तरह आदिगुरु हैं और कौलाचार के सिद्ध पुरुष हैं। नेपाल की जनश्रुति में वे अवलोकितेश्वर के अवतार स्वीकार किए गये हैं। नवनाथपरम्परा में मत्स्येन्द्रनाथजी को मायास्वरूप करुणामय कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ सिद्धमार्ग अथवा सिद्धामृत मार्ग के अनुयायी थे। श्रीगोरखनाथजी ने उन्हें भवसागर से पार उतारने वाले नाविक विशेषण से सम्मानित किया है। उनकी उक्ति है- प्राण (पूर्व)

हमारा देश है और सुषुम्णा (पछाहीं घाटी) आने-जाने का मार्ग है। जन्म से ही हमारे भाग्य में योग लिखा है। हमारे गुरु (हमारे भवसागर से तारने वाले) नाविक के समान हैं, वे हमारे भ्रमादि रोगों को मिटाते हैं।

योगपुरुष मत्स्येन्द्रनाथ के जीवन और चरित्र पर उनके सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियों, किंवदन्तियों तथा नाथसम्प्रदाय में समय-समय पर प्रणीत यौगिक साहित्य और दशवीं शती से पूर्व के रचित अनेकानेक तन्त्रग्रन्थों और दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक रचनाओं से निर्विवाद है कि उन्होंने हिमालय की उपत्यका तथा कामरूप में योगाभ्यास और कौल योगिनी मत के अनुसार साधना की थी। कौलाचार से प्रभावित कामरूप के तान्त्रिक वातावरण में उन्होंने तपस्या कर श्रीगोरखनाथ की सहायता से सिद्धामृत मार्ग के सिद्धान्तों से जनचेतना को सम्पन्न किया था। ऐसा कहा जाता है और प्रायः इस कथन में सत्यता का यथेष्ट आभास भी मिलता है कि उन्होंने बंदेश के वारणा स्थान के एक ब्राह्मणपरिवार में जन्म लिया था। ''नित्याह्निक तिलकम्'' पुस्तक में उल्लेख है कि ''मत्स्येन्द्रनाथ का पूर्वनाम विष्णु शर्मा था, वे ब्राह्मण थे और वारणा उनकी जन्मभूमि थी। उनका चर्यानाम गौड़ीशदेव, पूजानाम पिप्पलीश देव, गुप्तनाम भैरवानन्दनाथ था। उनके कीर्तिमान तीन थे- वीरानन्दनाथ, इन्द्रानन्द देव और मत्स्येन्द्रनाथ। इनकी शक्ति का नाम ललिता भैरवी अम्बा पापू था।'' यह उल्लेख योगीन्द्र मत्स्येन्द्र के कौलाचारपरक जीवन की ओर संकेत करता है। महत्व की बात तो यह है कि वे कौल नहीं, सिद्धमत के योगी थे, उनका कुलाचार शक्ति (कुल) से शिव (अकुल) के सामरस्य-सिद्धान्त का पोषक था। उनके जन्मस्थान के संबंध में कहा जाता है कि उसका नाम

चन्द्रगिरि था, जो द्वीपाकार था और बंगाल-आसाम का सन्धिवर्ती था अथवा कामरूप के सन्निकट था। चन्द्रद्वीप को सुन्दर बन कहा जाता है। उसे आसाम का पहाड़ी प्रदेश भी कहा गया है। यह नदी के बहाव से घिर कर द्वीप-जैसा हो गया है। ''कौलज्ञान निर्णय'' से पता चलता है कि चन्द्रद्वीप समुद्र के आसपास था। मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप में साधना की थी, इसलिये उनके जन्मस्थान चन्द्रद्वीप या चन्द्रगिरि का कामरूप के सन्निकट होना युक्तिसंगत लगता है। ऐसा लगता है कि ''नित्याह्निक तिलकम्'' में उल्लिखित वारणा ही चन्द्रद्वीप अथवा चन्द्रगिरि है:स्पष्ट है कि यह चन्द्रगिरि या चन्द्रद्वीप ब्रह्मपुत्र नदी से घिरे किसी द्वीपाकार भूमि पर कामरूप के सन्निकट अवस्थित था। इस बात को स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ ने चन्द्रद्वीप या चन्द्रगिरि नामक स्थान में जन्म लिया था। यह बात तो नितान्त असंदिग्ध ही है कि शक्तिपीठ कामरूप के वातावरण में प्राणान्वित तांत्रिक आचार-विचार और परम्परा से मत्स्येन्द्रनाथ की योगसाधना अछूती नहीं रह सकी। यही कारण है कि मत्स्येन्द्रनाथ का योगाचार कुल (शक्ति)-साधना-परक है। शक्ति से ही शिव प्राणवान् है, मत्स्येन्द्रनाथ के सिद्धमत में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है।

तपस्या में तत्पर होने के पहले श्रीमत्स्येन्द्रनाथ ने भगवान् शिव से महाज्ञान प्राप्त किया। कुलागमशास्त्र के समुद्धार में उनका योगदान अमित महत्वपूर्ण है। इसके बाद तपस्या से महेश्वर को प्रसन्न कर उन्होंने शिवस्वरूप की प्राप्ति की और सिद्धामृत मार्ग का प्रवर्तन और पोषण किया। उनके पवित्र चरित्र-चिन्तन की यही ऐतिहासिक गरिमा है।

श्रीमत्स्येन्द्रनाथ के चरित्र-चिन्तन का एक विशिष्ट अंग है उनके

द्वारा कुलागम शास्त्र का उद्धार। इस विषय के प्रतिपादन में अनेक उपाख्यान मिलते हैं, जिनके घटनाक्रम-वर्णन में थोड़ा-बहुत अन्तर उपलब्ध होता है। ऐसा कहा जाता है कि कार्तिकेय ने कुलागम शास्त्र समुद्र में फेंक दिया था। साक्षात् भैरव अर्थात् शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में अवतरित होकर उस शास्त्र का भक्षण करने वाले मत्स्य का उदर विदीर्ण कर उद्धार किया था। इसका आशय यह है कि उन्होंने वामाचारी अमर्यादित साधकों द्वारा कुलागम शास्त्र को लांछित अथवा कलंकित होने से बचालिया। यह घटना चन्द्रद्वीप में घटित बतायी जाती है। उपर्युक्त आख्यान का रूपान्तर है कि भगवती पार्वती को भगवान् शिव के गले में मुण्डमाला देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। देवर्षि नारद ने देवी को बताया कि वे (मुण्ड) उन्हीं (देवी) के पूर्व जन्मों के हैं। भगवती गौरी ने महादेव से कारण पूछा तो उन्होंने एकान्त में इस रहस्य-महाज्ञान को बताने के लिये निर्जन स्थान चुना। वे गौरी के साथ समुद्र में गये और एक डोंगी पर बैठकर अपनी अमरता और देवी के अनेक बार शरीर धारण करने की कथा का बखान करने लगे। महाज्ञान का श्रवण करते-करते देवी को नींद आ गयी। उनके बदले डोंगी मत्स्येन्द्रनाथ हुंकारी भरने लगे नींद भंग होने पर देवी ने कहा कि मैंने तो महाज्ञान पूर्णरूप से सुना ही नहीं। भगवन् शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ को शाप दिया कि तुम कुछ समय के लिये योगज्ञान (महाज्ञान) भूल जाओगे। इस सम्बन्ध में यह भी जनश्रुति है कि कविनारायण ने मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में एक ब्राह्मण के घर गंडन्त योग में जन्म लिया था। ब्राह्मण ने उनको समुद्र में फेंक दिया था। एक मछली बारह साल तक उन्हें अपने उदर में लिये रही। मत्स्येन्द्रनाथ ने मत्स्य के उदर में रहकर महाज्ञान-श्रवण किया था। (श्रीमद्भागवत के ऋषभदेव के पुत्र कविनारायण को ही

योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ के मत से मत्स्येन्द्रनाथ कहा गया है।) उपर्युक्त आख्यान का तात्पर्य यह है कि भगवान् शिव के अनुग्रह से वे महासिद्ध हुए। उन्होंने महाज्ञान अवश्य सुना, शाप के कारण उन्हें उसकी विस्मृति हुई और वे कौलाचार को अपना कर कदलीवन में विहार करने लगे। शिव के ही अनुग्रह से महाज्ञान की स्मृति कराये जाने पर वे सिद्धामृत मार्ग के योगाचार-विचार से सम्पन्न हो उठे। उन्होंने कौलज्ञान से योगमहाज्ञान का समन्वय किया, योग-साधना के अकुल (शिव) और कुल (शक्ति) का सामरस्य स्थापित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा महाज्ञान के श्रवण का उपर्युक्त वृतान्त नारद पुराण के उत्तर भाग के ६९वें अध्याय के छठेसे २५वें श्लोक तक में वर्णित है। भगवान् महेश्वर ने मणिप्रदीप्त सप्तश्रृंग पर भगवती उमा के प्रति तत्वज्ञान का उपदेश दिया। भगवती के निद्राभिभूत होने पर मत्स्य की गोद से निकलकर मत्स्येन्द्रनाथ ने यह तत्वोपदेश सुना। महेश्वर शिव ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी गोद में बैठा कर उनका मुख चूमा और अपना पुत्र कहा। उनका नाम सिद्धनाथ बताया। उन सिद्धनाथ मत्स्येन्द्रनाथ का ध्यान कर मनुष्य सफल मनोरथ होता है। नारद पुराण के ही उत्तर भाग के ६९वें अध्याय में कहा गया है कि कामाक्षा में पार्वतीजी के पुत्र सिद्धनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) रहते हैं। वे तपस्या में स्थित हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में लोग उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं, पर कलियुग में वे अन्तर्धान रहते हैं और कामाक्षा में उग्र तपस्या करने से लोग उनका दर्शन कर पाते हैं। वे विज्ञान में पारंगत योगी हैं।

संत योगी ज्ञानेश्वर ने गीता के ज्ञानेश्वरी भाष्य में १८वें अध्याय में १७२१ ओबी से १७६५ ओबियों में नारदपुराण के आध्यान का समर्थन करते हुए लिखा है कि क्षीरसमुद्र के तट पर भगवान् शंकर

ने भगवती पार्वती के कानों में जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्र की लहरों में किसी मत्स्य के पेट में गुप्त मत्स्येन्द्रनाथ के हाथ लगा। अचल समाधि का उपभोग करने की इच्छा से उसका उपदेश मत्स्येन्द्रनाथजी ने गोरखनाथ को दिया।

महाज्ञानश्रवण के उपरान्त श्रीमत्स्येन्द्रनाथ ने योगाभ्यास और साधना में प्रवेश किया। उन्होंने तपस्या का जीवन अपनाया। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें साक्षात् स्वरूप प्रदान किया और उसकी यौगिक-तात्विक महत्ता समझायी। मत्स्येन्द्रनाथ ने शिव के कान में कुण्डल देखकर उन्हें प्राप्त करने के लिये कठोर तप किया। इस तपश्चर्या से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कान फाड़कर कुण्डल पहनने की प्रथा का प्रवर्तन नाथ-सम्प्रदाय अथवा योगसम्प्रदाय में परमाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ ने किया। मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप-सिद्ध शक्तिपीठ में विकट तपस्या की। तन्त्रालोक की टीका में टीकाकार जयरथ ने दो प्राचीन श्लोक उद्धृत किये हैं, जिनसे पता चलता है कि सकलशास्त्रावतारक मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप महापीठ में, जो मच्छन्दनाम से प्रसिद्ध थे, शिव से योग पाया था।

उपर्युक्त उद्धरण से यह भी पता चलता है कि मीननाथ, मच्छन्द दो नहीं, एक ही व्यक्ति थे। जयरथ (जयद्रथ) की स्वीकृति है कि "सच (मच्छन्द) सकलकुलशास्त्रावतारकतया प्रसिद्धः।" कौलज्ञाननिर्णय की पुष्पिका में मच्छन्द या मत्स्येन्द्रनाथ को "योगिनी कौलनाथ" का अवतारक कहा गया है।

यह बात निश्चित है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप महाशक्ति पीठ में तप कर शिव से योगज्ञान प्राप्त किया। महादेव ने उनको निजस्वरूप का महत्व समझाया। योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ में वर्णन है कि महादेवजी बालतपस्वी (मत्स्येन्द्रनाथ) के साथ

(कामरूप से) कैलास आये, प्रसन्न होकर कहा कि वरदान माँगो। मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा निजस्वरूप की याचना करने पर पहले महादेवजी ने उनके सिरपर विभूति डाल कर भस्म-स्नान कराया। कहा कि यह भस्म अर्थात् मृत्तिका है, इसके धारण का अभिप्राय यह है कि योगी अपने को मानापमान से परे, धरती के समान जड़ समझे, अग्नि के संयोग से भस्मरूप में परिणत हुए काठ की तरह ज्ञानाग्नि से दग्ध होकर अपनी कठोरता छोड़ दे। इसके बाद शिव ने मत्स्येन्द्रनाथ को जलस्नान कराया, बताया कि जिस प्रकार मेघ समानरूप से निष्पक्ष होकर सबके लिये जल बरसाता है, उसी प्रकार तुम्हें समस्त प्राणियों से समान व्यवहार करना चाहिये और जिस प्रकार पानी तप्त होनेपर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, उसी प्रकार तुम्हे भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिये। महादेवजी ने नादजनेऊ पहनाया। उन्होंने समझाया कि काष्ठादि से बना यह नाद है, नाद का तात्पर्य शब्द है। आशय है कि तुम्हें अपनी उत्पत्ति नाद से समझनी चाहिये। यह ऊर्णादि से निर्मित जनेऊ संसार के लोगों द्वारा धारण किये जाने वाले जनेऊ से भिन्न है। इस नाद को धारण कर तुम्हें अपने आप को संसार के लोगों से भिन्न समझना चाहिये अन्यथा पतन की आशंका है। इसके बाद महादेवजी ने मत्स्येन्द्रनाथ को कुण्डलादि यौगिक चिह्न प्रदान किये।

शिव द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ को निज स्वरूपप्रदान का अभिप्राय यह है कि वे शैव योगी थे, उनका योगसम्प्रदाय अथवा सिद्धामृत मार्ग या सिद्धमत योगज्ञान प्रधान है। तपस्या के परिणामस्वरूप शैव योग के वरण के बाद भी वे अपने आप को कामरूप शक्तिपीठ के तान्त्रिक साधनागत प्रभाव से अलग नहीं कर सके। उन्होंने अकुल योग में सकुल मार्ग का-शक्ति-उपासना तथा कुल

कुण्डलिनी को जगाने की साधना का आश्रय ग्रहण कर योगिनी कौल मत का पक्ष लिया तथा अपने अकुल-कुल-सामरस्य के सिद्धान्त के प्रतिपादन में ''कौल ज्ञान निर्णय'' ग्रन्थ की रचना की। वे सिद्धयोगी-योगाचार्य के रूप में प्रख्यात हो गये। उन्होंने समस्त भरतखण्ड, भारत वर्ष में शैव योग ज्ञान का शंख निनादित कर सिद्धामृत मार्ग का प्रवर्तन किया, जो नितान्त निगमागमसम्मत है योगाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ सिद्ध पुरुष थे, उनका मत सिद्ध मत था। वे योगगुरु थे। उन्होंने हठयोग विद्या से जनमानस को सम्पन्न किया। उन्हें सद्शिष्य के रूप में हठयोग में पारंगत गोरखनाथ की प्राप्ति हुई। मत्स्येन्द्रनाथ और उनकी योगपरम्परा के गोरखनाथ आदि ही हठयोग के वास्तविक जानकार कहे गये हैं।

श्री मत्स्येन्द्रनाथ नित्य एकरस, एकरूप और चिन्मय योगज्ञान से चिर सम्पन्न महासिद्ध हैं।

शिव की कृपा से योगज्ञान से सम्पन्न होनेपर मत्स्येन्द्रनाथ की योगसिद्धि और प्रसिद्धि तथा यौगिक चमत्कारों से जन-मानस में आध्यात्मिक विचार क्रान्ति की तरंगे उच्छलित हो उठीं। वे शिव के पूर्व वर्णित शाप के फल स्वरूप महाज्ञान-योगज्ञान को भूल कर भोगमय जीवन की ओर उन्मुख हो चले। उनके त्रियाराज्य में प्रवेश तथा कदलीवन में रमणीराज्य में विहार करने के सम्बन्ध में थोड़े-बहुत-अन्तर से अनेक उपाख्यान उपलब्ध होते हैं, पर उनका मूल उद्देश्य है मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा महाज्ञान का विस्मरण और उनके शिष्य तथा अनुवर्ती महायोगी गोरखनाथ द्वारा उन्हें योगमार्ग पर पुनः संस्थित करना। योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ ने भोग में योग का संरक्षण कर योगिनी कौलमत का पोषण किया। रमणी-राज्य में विहार के सन्दर्भ में उन्हें कौल नहीं, कौलयोगी कहना संगत है। दन्त कथाओं

से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मत्स्येन्द्रनाथ सिद्धमत का त्याग कर कदलीवन अथवा रमणी-राज्य की योगिनियों की माया में कुछ समय के लिये आसक्त हो गये थे। उनके ''कौलज्ञान निर्णय'' में जिस साधनापरक शास्त्र की चर्चा है, वह कामरूप की योगिनियों के घर में विद्यमान थी। मत्स्येन्द्रनाथ ने कामरूप में कौलज्ञान अवतरित किया था।

मत्स्येन्द्रनाथ और उनके शिष्य गोरखनाथ की प्राचीनता, मत्स्येन्द्र द्वारा परकायप्रवेश कर रमणीराज्य के भोगों में आसक्ति तथा गोरखनाथजी द्वारा नर्तकी वेष अपना कर उनके समुद्धार पर शंकर दिग्विजय के एक श्लोक से अमित प्रकाश पड़ता है। ''शंकर दिग्विजय'' महामति विद्यारण्य (सायणाचार्य) जो विक्रमीय १४वीं शती में विद्यमान थे, की रचना हैं। शंकराचार्य उनसे कहीं पहले थे और उन शंकराचार्य के श्रीमुख से अपने शिष्य के प्रति शंकर दिग्विजय में रचयिता ने कहलवाया है कि प्राचीनकाल में जिस प्रकार मत्स्येन्द्र नाम के महात्मा योगी ने परकाय-प्रवेश कर अपने शरीर की रक्षा का भार अपने शिष्य गोरखनाथ को सौंपा था, उसी तरह मैं तुम्हें परकाय-प्रवेश के पहले अपनी शरीररक्षा का भार सौंपता हूँ।

कहा जाता है कि प्रयागराज के राजा के शरीरान्त होने पर श्रीगोरखनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ से राजा के मृत शरीर में प्रवेश कर लोगों को सुख और अभय देने की प्रार्थना की। मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने प्राणशून्य शरीररक्षा का भार गोरखनाथजी को सौंप कर राजा के मृत शरीर में बारह साल के लिये प्रवेश किया। जब रानियों को पता चला तो उन्होंने शरीर को नष्ट कर देना चाहा पर श्रीगोरखनाथ ने उसे नष्ट होने से बचा लिया। नाथचरित्र की कथा में भी परकायप्रवेश का संदर्भ मिलता है, राजा के मृत

शरीर में प्रवेश कर महारानी परिमला के साथ उनके विहार करने का विवरण उपलब्ध होता है। गोरखनाथजी ने मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था।

कहा जाता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कदलीवन में महारानी मंगला और कमला के राज्य में प्रवेश कर महाज्ञान को भूल कर विहार किया था, श्रीगोरखनाथ एक वकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। आकाश मार्ग से सिद्ध कृष्णपाद कहीं जा रहे थे। श्रीगोरखनाथ ने खड़ाऊँ आकाश-मार्ग में प्रेषित कर अपने योगबल से उन्हें पृथ्वीपर उतारा। कृष्णपाद ने कहा कि तुम्हारे गुरु कदलीवन में सोलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी कमला और मंगला के साथ महाज्ञान भूल कर कामभोग में व्यस्त हैं। आयु के केवल तीन दिन शेष हैं। गोरखनाथजी ने कहा कि तुम्हारे गुरु जालन्धरपाद को गौड़ बंगाल के अधीश्वर गोपीचंद ने मिट्टी में गड़वा दिया। दोनों अपने-अपने गुरु को मुक्त करने चल पड़े। गोरखनाथ ने लंग और महालंग, दो शिष्यों को लेकर ब्राह्मणवेष में कदली वन में प्रवेश किया। उन्होंने कार्यसिद्धि के लिये योगी का वेश धारण किया। एक रमणी ने उन्हें मत्स्येन्द्रनाथ का पता बता कर कहा कि मंगला और कमला के राज्य में योगी का प्रवेश निषिद्ध है। केवल नर्तकी ही जा सकती है। कलिंगा नाम की नर्तकी अन्तःपुर में नाचने जा रही थी। गोरखनाथ ने नर्तकी वेष धारण कर उसके साथ प्रवेश कर राजद्वार पर मर्दलध्वनि की उन्होंने सिद्ध मतमूलक महाज्ञान का स्मरण दिलाया। ''जाग मछीन्द्र गोरख आया'' नाद मर्दल में ध्वनित हो उठा। गोरखनाथजी ने कहा कि हे गुरुदेव! आत्मा के ज्ञान का विस्मरण न कीजिये। ऐसा करने से कमनीय काया स्वस्थ और सुरक्षित रहेगी। विद्यानगर से आये हुए कान्हापाव (कृष्णपाद) से भेंट हुई थी। उन्हीं से आप की इस दशा

का पता लगा कि आप कामिनियों के जाल में पड़े हुए हैं। आप का यह पतन भ्रम के कारण हुआ है। आपने अमृतरस को वाघनी (माया) की गोद में खो दिया है। माया के घुँघरू के बजने से स्वर के साथ तालयुक्त नृत्यमग्न माया के व्यामोह से आपने आध्यात्मिक पूँजी खो दी है।

गोरखनाथजी ने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के चरण-वेश में निवेदन किया कि हे गुरुदेव, ऐसा कर्म न कीजिये, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी-तट के वृक्ष के समान है। जीवन की कम आशा रहती है। मायानगरी मन मोहती है, शुक्रस्खलन से अमृत का सरोवर सूख जाता है। मन में काम-विकार होते ही सुषुम्ना के ऊर्ध्वमुख ब्रह्मरन्ध्र से अमृत नीचे गिर पड़ता है, शरीर क्षीण हो जाता है। मन का घोर मन्थन करनेवाली माया वाघिनी जब महारस को सोख लेती है, तब पैर डगमगाने लगते हैं, पेट ढीला हो जाता है और सिर के बाल बगुले के पंख के समान श्वेत हो जाते हैं। आप मुक्त होकर-योगमुक्त होकर बन्धन में पड़ गये। हे मत्स्येन्द्रनाथ! आप आदिनाथ शिव के ही रूप हैं, उनके शिष्य हैं, कामनिद्रा से जागिये। बिन्दु की रक्षा करने वाला ही सच्चा अवधूत होता है।

मैथिल कोकिल विद्यापति ने राजा शिवसिंह की आज्ञा से १४१०-१४१४ ई. के बीच में ''गोरक्षविजय'' नाटक की रचना की। इस नाटक में गोरखनाथजी से विद्यापति ने मत्स्येन्द्रनाथ के प्रति कहलवाया है कि आप गुरुमुख की वाणी भूल गये, जिससे बढ़कर और कुछ नहीं। त्रिया की नयन-ज्योति के सामने (ज्ञान के) माणिक और मोती भूल गये। ऐ मीननाथ! अब मोह सम्भव नहीं। जाग जाइये। लौकिक प्रेम और आध्यात्मिक ज्ञान में परम

विरोध है-परिणामतः मत्स्येन्द्रनाथ का भ्रमजाल टूट जाता है। वे गोरखनाथजी को गले लगा कर उन्हें अपना प्राण कहते हैं।

गोरखनाथजी के साथ महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ त्रिया-राज्य से बाहर निकल पड़े। जोधपुराधीश्वर मानसिंहकृत ''नाथ चरित्र'' में वर्णन है कि यद्यपि मत्स्येन्द्रनाथजी कामिनी के रूपजाल से मुक्त हो चुके थे, तथापि उनके मन में आसक्ति शेष रह गयी थी। योगसिद्ध गोरखनाथजी ने अपने जलपात्र से जल छिड़क कर एक पर्वत को स्वर्णमय बना दिया, मत्स्येन्द्रनाथ के मन में इस घटना से स्वर्ण के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न हुआ, उन्होंने सुनहले आभूषण शरीर से उतार कर फेंक दिये। ज्ञानसिद्ध महायोगी गोरखनाथजी ने स्वर्ण को कलह का कारण समझ कर स्वर्ण के पर्वत को स्फटिक पर्वत बना दिया, जब इससे भी उनको संतोष न हुआ, तो उन्होंने उस पर्वत को गेरू का बना दिया।

नेपाल में योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ को अमित महत्व और समादर प्राप्त है। मत्स्येन्द्र-यात्रा-उत्सव नेपाली जनजीवन-परम्परा का एक विशिष्ट पर्व है। योगेन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ ने नेपाल को शैव योगामृत प्रदान किया। नेपाल का गोरखा राज्य योगाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ और उनके अनुवर्ती महायोगी गोरखनाथ के प्रति प्रगाढ़ भक्ति और श्रद्धा का प्रतीक है। कहा जाता है कि नेपाल-नरेश ने मत्स्येन्द्रनाथ के अनुयायियों पर अत्याचार किया था, इससे अप्रसन्न होकर श्रीगोरखनाथ नवनागों को समेट कर बैठ गये और बारह साल का अकाल उत्पन्न किया। नेपाल-नरेश ने श्रीमत्स्येन्द्रनाथ के सम्मान में यात्रा-उत्सव किया, उनकी कृपा से श्रीगोरखनाथ ने नेपाल को अकालमुक्त कर दिया। उपर्युक्त यात्रा-उत्सव के सन्दर्भ में नेपाल में अनेक जन-श्रुतियाँ और किंवदन्तियां प्रचलित हैं, पर उनका

मुख्य तात्पर्य है नेपाली जीवन में श्रीमत्स्येन्द्रनाथ के योगज्ञान का महत्व और प्रभाव प्रकट करना। नेपाल में वे अवलोकितेश्वर के रूप में पूज्य हैं।

नेपाली बौद्ध कथा में मत्स्येन्द्रनाथ को अवलोकितेश्वर कहा गया है। मत्स्येन्द्रनाथ एक पर्वत पर रहते थे। गोरखनाथ उनके दर्शन के लिए गये, पर्वत पर चढ़ना दुष्कर समझ कर नवनागों को बाँध कर वे बैठ गये, इससे नेपाल में बारह साल तक वर्षा नहीं हुई। राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बुद्धदत्त (बन्धुदत्त) अकाल का कारण समझ गये और अवलोकितेश्वर को ले आने का संकल्प कर वे कपोतक पर्वत पर गए। अवलोकितेश्वर ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर एक मंत्र दिया और कहा कि इसके जप से आकृष्ट होकर मैं जपकर्ता के पास उपस्थित हो जाऊँगा। लौट कर बुद्धदत्त (बन्धुदत्त) ने मंत्र-जप का अनुष्ठान किया, मंत्र शक्ति के प्रभाव से अवलोकितेश्वर ने भृंग के रूप में कमण्डलु में प्रवेश किया। उस समय राजा नरेन्द्रदेव सो रहे थे। बुद्धदत्त (बन्धुदत्त) ने उन्हें जगा कर कमण्डलु का मुख बन्द कर देने का संकेत किया। ऐसा करने से अवलोकितेश्वर कमण्डलु में बँधे रह गए और नेपाल में प्रचुर वर्षा होने से अकाल समाप्त हो गया। तभी से बुगम नामक स्थान में आज भी मत्स्येन्द्रनाथ का यात्रा-उत्सव सम्पन्न होता है।

उपर्युक्त आख्यान का ऐसा भी वर्णन मिलता है कि गोरखनाथजी ने एक पर्वत पर वर्षा के देवता कर्कोटक नाग को दबाया, नेपाल में वर्षा न होने से अकाल पड़ गया। राजा ने आचार्य बुद्धदत्त (बन्धुदत्त) को मत्स्येन्द्रनाथ को लाने के लिए भेजा, वे आए, गुरु के सम्मान में गोरखनाथ उठ खड़े हुए, उठते ही बादल छूट गए, वर्षा हुई। मत्स्येन्द्रनाथजी द्वारा किए गए इस उपकार की

स्मृति में उत्सव-यात्रा प्रवर्तित हुई। नेपाल का मृगस्थली स्थान नाथ-परम्परा में एक पवित्र तीर्थ-स्थल माना गया है, कहा जाता है कि मृगस्थली में गोरखनाथजी किसी कारण से छानबे करोड़ मेघमालाओं को अपने आसन में दबा कर बैठ गए थे। वर्षा बन्द हो गयी। राजा ने शास्त्रज्ञान के विचार से उपाय स्थिर किया कि जब सिंघल से मत्स्येन्द्रनाथजी मृग-स्थली में गोरखनाथजी के समक्ष लाए गये। श्रीगोरखनाथ उठे नहीं, केवल मानसिक प्रणाम किया। मानसिक प्रणाम की क्रिया से उनका बायाँ घुटना कुछ हिल गया, जिसके परिणामस्वरूप एक मेघमाला मुक्त हो गयी और वर्षा हुई। उसी समय से यह स्थान नाथसम्प्रदाय और गोरखा राज्य नेपाल के लिए पूज्य पीठ हो गया। काठमाण्डू से तीन मील की दूरी पर वागमती गंगा के किनारे मत्स्येन्द्रनाथ का मन्दिर है। भोग पत्तन में मत्स्येन्द्रनाथजी की मंजूषा की पूजा होती है। नेपाल नरेश के कमण्डलु में भृङ्गरूप से प्रवेश करने के कारण मत्स्येन्द्रनाथ को भृङ्गपाद कहा गया है।

मत्स्येन्द्रनाथ की प्रशस्ति में श्रीमद्आचार्य नीलकण्ठाचार्य ने मत्स्येन्द्रपद्य शतक की संस्कृत भाषा में सम्वत् १७३३ वि. में रचना की, जिसमें उन्होंने श्रीमत्स्येन्द्र के चरणदेश में महती श्रद्धा व्यक्त करते हुए नेपाल-नरेश के लिये उनसे आशीर्वाद की याचना की है, इसमें नेपाल के अनेक शासकों के सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं और इसे ऐतिहासिक काव्यात्मक प्रशस्ति कहने में कोई आपत्ति नहीं है। इसके रचयिता नीलकण्ठ भट्ट ललितपत्तन के महाराजा श्रीनिवास मल्ल के आश्रित थे। वे महान् विद्वान् थे। उन्होंने इस शतक में नेपालसम्बन्धी मत्स्येन्द्रचरित का बड़ी पटुता से समावेश कर दिया है। इसमें मत्स्येन्द्रनाथ को नेपाल लाने वाले और उनके यात्रा-

उत्सव का आयोजन करने वाले महाराज नरेन्द्रदेव का ऐतिहासिक विवरण भी उपलब्ध होता है। आचार्य नीलकण्ठ की मार्मिक उक्ति है।

हे मत्स्येन्द्र! आपको नमस्कार करते हुए देवताओं के मस्तक पर विराजमान उज्जवल मुकुट में जड़े रत्नों की प्रभा से युक्त आपके चरण-कमल के नरवचन्द्र की कान्तियों से उत्पन्न शोभा का हम क्या, शेष भी वर्णन करने में असमर्थ हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ अकारण करुण हैं, उनकी कृपा सभी धर्मवालों और विभिन्न अध्यात्ममार्ग पर चलने वालों पर एक समान है।

हे मत्स्येन्द्रनाथ! कुछ लोग बौद्धमार्ग (धर्म), कुछ लोग वैदिक, कुछ लोग शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य मार्ग आदि का आश्रय लेकर आपका भजन करते हैं। हे देव! आप उन सभी पर प्रसन्न रहते हैं।

समस्त नेपाल देश में मत्स्येन्द्रनाथ को अप्रतिम सम्मान प्राप्त है। बारह साल के भयंकर अकाल और अनावृष्टि से उत्पीड़ित नेपाल को जलवृष्टि से प्राणान्ति करने का जो श्रेय उन्हें प्राप्त है, वह नेपाल के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में चिरकाल तक अंकित रहेगा। योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ का चरित्र परमपवित्र और महाप्रासादिक है।

नेपाल-नरेश नरेन्द्रदेव ने मत्स्येन्द्रनाथ के कामरूप पीठ से आकार नेपाल को अकालमुक्त करने की स्मृति में उनकी यात्रा का संयोजन किया था। उन्होंने रथयात्रा, महास्नानयात्रा -उत्सव से मत्स्येन्द्रनाथ की पवित्र स्मृति को नेपाली जनजीवन की सांस्कृतिक सम्पत्ति बना लिया। नेपाल में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि मत्स्येन्द्रनाथ की यात्रा के समान ब्रह्माण्ड-मण्डल में दूसरी कोई यात्रा नहीं है।

नेपाल-नरेश नरेन्द्रदेव ने मत्स्येन्द्रनाथ का राष्ट्र-अधिष्ठाता के रूप में राजकीय मुद्रा पर नामांकन करवाया। श्रीमत्स्येन्द्रनाथ की नामांकित मुद्रा कहीं-कहीं नेपाल में देखने को मिल जाती है। मत्स्येन्द्रनाथ की मुद्राओं पर ''श्रीश्रीलोकनाथाय'', ''श्रीश्रीलोकनाथः'' तथा ''श्रीश्रीकरुणामयः'' शब्द अंकित हैं।

योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ नेपाल तथा भारत के लिये ही नहीं, समस्त विश्व के लिये परम पूज्य हैं। उनका योगज्ञान महाज्ञान विश्वमंगलकारी है। उनका योगदर्शन-सिद्धामृतमार्ग का सिद्धान्त सार्वभौम और सार्वजनिक है।

श्रीमत्स्येन्द्रनाथ अपनी रहनी और करनी में समान थे। उनके दार्शनिक सिद्धान्त अथवा योगसाधना और योगज्ञान के सन्दर्भ में यह कहना युक्तिसंगत है कि उन्होंने शैव योगाचारपरक विचार को अपनी साधना की प्रारम्भिक अवस्था में कौल चिन्तन से प्राणित कर योग और तन्त्रगत शाक्ताचार का समन्वय कर ''योगिनी कौलमत'' का पोषण किया। उनका ''कौलज्ञान-निर्णय'' ग्रन्थ योगिनी कौलमत का सिद्धान्तवाडमय है और तदुपरान्त श्रीगोरखनाथ के सत्प्रयास से उन्होंने महाज्ञान-शैवयोगचिन्तन अथवा योगज्ञान-षडंगयोग का वरण कर सिद्धमत-सिद्धामृतमार्ग अथवा नाथ-सम्प्रदाय को अनुप्राणित कर नाथयोग की परम्परा की संपुष्टि की। ''कौलज्ञान निर्णय'' ग्रन्थ के अनुसार श्रीमत्स्येन्द्रनाथ कौलज्ञान-सिद्धान्त के आदिप्रवर्तक हैं। उन्हें सकल कुलशास्त्र का अवतारक कहा गया है, कुलशास्त्र का तात्पर्य कौलज्ञान से है। ''कौलज्ञाननिर्णय'' के चौदहवें पटल से परिलक्षित होता है कि भैरव (शिव) ऐसे ध्यान की बात बता रहे हैं, जिसमें मन्त्र, प्राणायाम

और चक्र-ध्यान की आवश्यकता नहीं होती है। शिवप्रोक्त यह ध्यान इस स्थिति में भी परम सिद्धिदायक होता है।

उपर्युक्त उद्धरण में शिव के चारों युगों में चार अवतारों पर प्रकाश पड़ता है। कहा गया है कि सब लोग भक्तिपूर्वक श्रवण करें कि महाकौल के बाद सिद्ध कौल और सिद्ध कौल के बाद मसादर (मत्स्योदर-मत्स्येन्द्र) का अवतार हुआ। प्रथम सत्युग में शिवद्वारा निर्णीत ज्ञान का नाम कौल-ज्ञान था। दूसरे युग त्रेता में उसका सिद्धकौल और तीसरे द्वापर युग में सिद्धामृत और चौथे कलियुग में मत्स्योदर था। मत्स्योदरविनिर्गत ज्ञान ही योगिनी-कौल-ज्ञान कहा जाता है। योगिनी कौलमार्ग-अनुवर्तन के पहले मत्स्येन्द्रनाथ सिद्धकौलमत के पोषक थे। नाथ-परम्परा में सिद्धकौलमत ही मान्य है। यह निर्विवाद है कि गोरक्षसम्प्रदाय के योगमार्ग और मत्स्येन्द्र प्रवर्तित कौलमार्ग के चरम लक्ष्य में कोई भेद नहीं है, विशेष बात यह है कि योगी पहले से ही अन्तरंग उपासना करने लगता है पर कौल मतानुयायी (तांत्रिक) बहिरंग उपासना करने के बाद क्रमशः अन्तरंग साधना-कुण्डलिनीजागृति की दिशा में प्रवृत्त होता है।

कौलज्ञान के अनुसार ज्ञान स्वप्रकाश है, भिन्न-भिन्न द्रव्य को प्रकाशित करने के लिये दीप की आवश्यकता होती है पर दीप स्वप्रकाश है। ज्ञान अपने को आप ही प्रकाशित करता है। यह जगत् ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानरूप में त्रिपुटीकृत है। इस त्रिपुटीकृत जगत् के समस्त पदार्थ ज्ञानरूप धर्म के एक होने के कारण सजातीय है, इसलिये वे कुल-जाति कहे जाते हैं। कुल सम्बन्धी यह ज्ञान ही कौलज्ञान है। ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है, जगत् ब्रह्ममय है, ब्रह्म से अभिन्न है-यह अद्वैत ज्ञान ही मत्स्येन्द्र के कौलमत में कौल ज्ञान है। कुल

शब्द का एक योगपरक अर्थ बताया जाता है कि ''कु'' का अर्थ पृथ्वी है, ''ल'' का अर्थ लीन होना है, पृथ्वी-तत्व मूलाधार चक्र में अवस्थित है, मूलाधार चक्र ही वास्तव में कुल कहा जाता है, इस मूलाधार से सुषुम्ना नाड़ी मिली है, जिसके भीतर से उठकर कुण्डलिनी शक्ति सहस्त्रार चक्र में परम शिव से सामरस्य प्राप्त करती है। मत्स्येन्द्रनाथ के योगिनी कौलमत में उपर्युक्त अकुल-कुल सामरस्य का अभ्यास स्पष्ट रूप से मिलता है। कुल का अर्थ शक्ति है, अकुल शिव का वाचक है। कुल से अकुल की सम्बन्ध-स्थापना ही कौलमार्ग है। दोनों का सामरस्य ही कौल ज्ञान है। शिव नाम-गोत्र से परे होने के नाते अकुल है, शिव की सिसृक्षा-सृष्टि करने की इच्छा ही शक्ति है। शिव और शक्ति चन्द्रमा और चन्द्रिका की भाँति अभिन्न है। कहा जाता है कि जिस प्रकार वृक्ष के बिना छाया नहीं रह सकती, अग्नि के बिना धूम अस्तित्वहीन है, उसी प्रकार शक्ति और शिव अविच्छेद्य हैं।

''कौलज्ञाननिर्णय'' में योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ की उक्ति है कि वस्तुतः जगत् जीव से ही सृष्ट है। जीव ही समस्त तत्वों का नायक है, यही हंस है, यही शिव है, यही व्यापक परशिव है। यही मन भी है और यही जगत् में व्याप्त है। शिव-स्वरूप जीव ही अपने आप को मुक्ति और भुक्ति प्रदान करता है। आत्मा ही परमगुरु है, प्रभु है और मुक्तिदाता है। जिसने यह आत्मतत्व समझ लिया है, वही योगिराट् है। वह साक्षात् शिवस्वरूप है और दूसरे को मुक्त करने में समर्थ है।

मत्स्येन्द्रनाथ ने कौलमार्ग में अकुल (शिव) और कुल (शक्ति) का समरसीकरण कर नाथयोग में शिवमयी शक्ति का समावेश किया। गोरखनाथजी ने अपने ''सिद्ध सिद्धान्तपद्धति'' ग्रन्थ में

शक्तियुक्त जगद्गुरु आदिनाथ शिव को नमस्कार कर गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के योगिनी कौलमत की सिद्धमत में मान्यता समर्पित की है। उनकी उक्ति है-कौल साधना में सामरस्य का सिद्धान्त है। निंद्रित कुण्डलिनी को जगा कर शिव में उत्थापित करना। पीठ में स्थित मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है, वहाँ एक स्वयंभू लिंग है। यह त्रिकोण चक्र में स्थित है, यह अग्नि चक्र है। इस त्रिकोण में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों में या वृत्तों में लपेट कर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है, इसके ऊपर चार दलों का एक कमल है, जो मूलाधार चक्र कहलाता है, इसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र है, यह छः दलों के कमल के आकार का है; इसके ऊपर मणिपूर चक्र है, इसके ऊपर हृदय के पास अनाहत चक्र है, ये दोनों क्रमशः दस और बारह दलों के पद्मों के आकार के हैं। इनके भी ऊपर कंठ के पास विशुद्धाख्य चक्र है, यह सोलह दल के पद्म के आकार का है। ऊपर जाकर भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र है, इसके दो ही दल हैं। इन षट्चक्रों को पार करती हुई उद्‌बुद्ध कुण्डली शक्ति सबके ऊपर वाले सातवें चक्र (सहस्त्रार) में परमशिव से मिलती है, इस चक्र में सहस्त्र दल हैं, इसलिए यह सहस्त्रार कहलाता है। यह परमशिव का निवास होने के नाते कैलाश कहलाता है। इस तरह सहस्त्रार में परमशिव, हृदय-पद्म में जीवात्मा और मूलाधार में कुण्डलिनी की स्थिति है। जीवात्मा परमशिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। कुंडलिनी जीवशक्ति है। कौल साधक कुण्डलिनी को जगा कर मेरुदंड की मध्यस्थिता नाड़ी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्त्रार में स्थित परमशिव में उत्थापित करता है। शिव का शक्ति से यह सामरस्य ही परमानन्ददायक है। निर्विकार निष्कल शिव को

जान लेने पर जीवात्मा सर्वबन्धविनिर्मुक्त हो जाता है। नाथमत में श्रीमत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से यह षट्चक्रगत कुण्डलिनी-उद्बोधन षडंगयोग अथवा हठयोग का एक विशिष्ट अंग है। नाथयोग-साधना में मुक्ति नाथस्वरूप में अवस्थिति है। इससे सदानन्दावस्था की समुपलब्धि होती है। नाथतत्व मत्येन्द्रनाथ के योग ज्ञानप्रकाश मे अनादि (शिव) तत्व है, भुवनतन्त्र की स्थिति का कारण है। नाथयोगी अपने स्वरूप में परमेश्वर शिव को अभिन्न देखता है।

नाथसंप्रदाय मे मत्स्येन्द्रनाथ के पथप्रदर्शन मे महायोगी गोरखनाथ द्वारा योगसिद्धान्त का विवेचन महत्वपूर्ण है। मत्सेयन्द्रनाथ का नाम महाप्रकाश भी कहा जाता है। काश्मीरी अपभ्रंश में एक ''महार्थमंजरी '' नाम की रचना है उसके रचियता गोरखनाथ (महेश्वरानन्द) है। उन्होने उपर्युक्त रचना के प्रारंभ में अपने गुरू महाप्रकाश का स्मरण किया है। गाख्रखनाथ के यह पूछने पर कि अविगत का सुरव किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, मत्स्येन्द्रनाथ ने बताया कि गुरू मुख से ही इसकी प्राप्ति होती है।

गोरखनाथजी अपने अविगत आत्मस्वरूप का प्रतिपादन करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ को अपना पथ-प्रदर्शक चुनने के सम्बन्ध में विलक्षण बात कहते हैं, जिससे गुरुतत्व पर विशिष्ट प्रकाश पड़ता है। उनका कथन है कि शिव हमारे शिष्य और मत्स्येन्द्रनाथ प्रशिष्य हैं, हमें गुरु की आवश्यकता नहीं थी, हम साक्षात् शिवस्वरूप अलखनिरञ्जन परमेश्वर हैं पर इस भय से कि हमारा अनुकरण कर अज्ञानी लोग बिना गुरु के ही योगी बनने का दम न भरें, हमें मत्स्येन्द्रनाथ को अपना गुरु बनाना पड़ा। यह उलटी स्थापना का दम न भरें, हमें मत्स्येन्द्रनाथ को अपना गुरु बनाना पड़ा। यह उलटी स्थापना अथवा क्रम हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते तो गुरुहीन

पृथ्वी प्रलय में समा जाती।

यही कारण है कि उन्होंने सद्गुरु की खोज की बात पर जोर दिया है कि अहंकार को तोड़ना चाहिए, सद्गुरु की खोज करनी चाहिए, योगपंथ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। नाथयोग में गुरु की प्राप्ति योगसाधना का प्राण है।

''गोरखबानी'' में संकलित ''मछीन्द्र-गोरखबोध'' रचना में महायोगी गोरखनाथ की अनेक यौगिक समस्याओं के समाधान में मत्स्येन्द्रनाथ ने योगज्ञान का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। मत्स्येन्द्रनाथजी का कथन है कि योगी को हाट-बाट में और वृक्ष आदि के तले अल्प समय तक रह कर भ्रमण करते रहना चाहिये, एक ही स्थान पर घर बना कर नहीं रहना चाहिए। काम, क्रोध, तृष्णा और सांसारिक माया का परित्याग कर देना चाहिये, आत्मज्ञान में स्थित रह कर अनन्त परमात्मतत्व का चिन्तन करना चाहिए। थोड़े ही समय तक सोना और अल्प-सूक्ष्म आहार ग्रहण करना चाहिए।

मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरखबानी को परमतत्व का ज्ञान समझाया के साधक की सहज शून्य में उत्पत्ति होती है, वह समशून्य में सद्गुरु परमतत्व का ज्ञान प्राप्त करता है और अतीत शून्य में समाहित रहता है।

मत्स्येन्द्रनाथजी ने बताया कि मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी की जागृति सुषुम्ना में स्थित पवन तथा हृत्कमल में स्थित जीव और सहस्त्रार में विराजमान शिव का ही सदा साधक को चिन्तन करते रहना चाहिये। यही महाज्ञान-प्राप्ति का सहजमार्ग है।

मत्स्येन्द्रनाथ की जनसाधारण के प्रति लोकभाषा में वाणियों का संकलन नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित ''नाथसिद्धों

की बानियाँ'' में अल्प मात्रा में ही उपलब्ध है।

पक्षी (एक दिन) उड़ जायेगा। जन्म-मृत्यु का चक्कर लगाने श्रान्त होकर विश्राम करने के लिये उसने शरीर धारण कर लिय मनुष्य ज्यों-ज्यों स्वार्थ में उलझता है, त्यों-त्यों उसका कार्य बि जाता है। जिस तरह जल को मछली चाहती है, मोर घन को चाहत और चकोर चन्द्रमा को देखता है, उसी तरह सेवक-प्रेमी भक्त को चाहता है। जीवात्मा का परम उद्देश्य परमार्थ-साधन है, पर स्वार्थ का त्याग नहीं कर पाता, गुप्त योग-साधना से मन को तत्व पता चल जाता है। जो जगत् से अनासक्त-उदास रहता है, व वास्तविक योगी है। मत्स्येन्द्रनाथ का कथन है कि ऐसा योगी निरंजन परमशिव का साक्षात्कार करता है।

योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ की योगपरम्परा अक्षुण्ण है। गोरखना चौरंगीनाथ, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ, संतयोगी ज्ञानेश (ज्ञाननाथ), सिद्धपुरुष बाबा गम्भीरनाथ, आदि ने उनके यौगि महाज्ञान से असंख्य जीवात्माओं को आत्मामृत प्रदान किया।

''प्राणसंकली'' में मत्स्येन्द्रनाथजी ने चरणकमल में योगि चौरंगीनाथजी ने महती श्रद्धा प्रकट कर उनकी महत्ता का द कराया है।

महायोगी गोरखनाथजी ने अपनी ''रोमावली'' रचना समन्वयवादी दृष्टिकोण से कहा है कि घट के भीतर चार (देव) हैं, मन मत्स्येन्द्रनाथ, पवन ईश्वरनाथ, चेतना चौरंगी और ज्ञान गोरखनाथ हैं।

योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ का योगज्ञान अध्यात्मसागर का अ निर्मल प्रकाशस्तम्भ है। श्रीमत्स्येन्द्रनाथजी की रचनाओं ''कौलज्ञान निर्णय'' एक श्रेष्ठ कृति है। उन्होंने अनेक ग्रन्थ लि

जिनमें कुलवीतंत्र, कुलानन्द और ज्ञानकारिका विशिष्ट हैं।

योगेश्वर परमगुरु मत्स्येन्द्रनाथजी ने योगियों के सर्वश्रेष्ठ मत-सिद्धमत के प्रवर्तक के रूप में जगत के असंख्य प्राणियों को गुरुज्ञान-योगबोध अथवा महाज्ञान का तत्वोपदेश कर उन्हें मुक्ति प्रदान की, संसार-सागर से पार उतरने के लिये योगामृत ज्ञान की नौका दी। यदि वे महाकारुणिक योगेश्वर परम गुरु परमात्म योग का विधान न प्रस्तुत करते तो असंख्य जीव योगाभ्यास में तत्पर होकर किस तरह आत्मकल्याण करते। श्रीमत्स्येन्द्रनाथ योगदर्शन के महनीय आचार्य थे, वे अमर हैं।

4. अन्तरिक्ष नारायण

जालन्धरनाथ

योगेश्वर जालन्धरनाथ ब्रह्मज्ञान में रमण करनेवाले अप्रतिम नाथसिद्ध थे। प्रेमदास ने ''अथ सिध वंदनां लिष्यते'' में उन्हें ''ब्रह्मबुधि संचरी'' योगी के रूप में नमन किया है।

''नमो सिद्ध जलंधरी ब्रह्म बुधि संचरी।''

(नाथसिद्धों की बानियाँ-६)

महायोगी जालन्धरनाथ सिद्धामृतमार्ग अथवा नाथयोग-सम्प्रदाय के महामहिम आदियोगसिद्धों में परिगणित सिद्ध पुरुष हैं। नवनाथों की प्रत्येक सूची में उनका नाम आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के साथ बड़ी श्रद्धा से अंकित उपलब्ध है। नाथयोग-समप्रदाय की अनेक परम्पराओं में उन्हें आदि नाथ के रूप में भी सम्मानित किया गया है। वे ऐतिहासिक काल-गणना के परे हैं, अत्यन्त दीर्घ प्राचीन काल से ही उनका यौगिक व्यक्तित्व नाथ-सम्प्रदाय को ही नहीं, अनेक योगसम्प्रदायों और सार्वजनिक आध्यात्मिक प्रतिष्ठानों को प्रभावित करता चला आ रहा है। यह क्रम भविष्य में भी चिरकाल तक अक्षुण्ण रहेगा, यह भी पूर्णतया स्पष्ट और प्रमाणित है। जोधपुराधीश्वर महाराजा मानसिंह नाथसम्प्रदाय में और विशेष रूप से योगेश्वर जालन्धरनाथ के व्यक्तित्व में अत्यन्त श्रद्धालु और निष्ठावान् थे। महाराज ने अपनी प्रसिद्ध रचना ''श्रीनाथतीर्थावली'' में जालन्धरनाथ और उनकी परम्परा में अत्यन्त हार्दिक श्रद्धा और भक्ति प्रकाशित की है। ''श्रीनाथतीर्थावली'' में आरम्भ में ही मरुदेश (मारवाड़) के अन्तर्गत

जालन्धर नामक तीर्थस्थान पर वर्णन है, जहाँ कलशाचल नामक पर्वत विराजमान है। वहाँ साक्षात् श्रीजालन्धरनाथजी विराजमान हैं और वहीं श्री गुरुकुल भी अतिशय शोभायमान है। (कलशाचल की) चोटी पर चढ़ने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। यहाँ कणेरीपाद, हरीतालीपाद, हालीपाद आदि महासिद्धों ने इस पर्वत के तीर्थश्रेष्ठ में सतत् आसन जमाया था। पादपथियों के प्रथमनाथ, योगिराज मेलनाथ योगसिद्धि प्राप्त कर जालन्धरनाथ के चरण कमलों का सेवन करते हुए, यहीं आकर सुखपूर्वक सुप्रतिष्ठित हुए।

जालन्धरनाथजी को अनेक नामों जालन्धरपाद, जालन्धरपा, जालन्धरनाथ, हाड़ीपा अथवा हाड़ीपाद, हल्लीपाद आदि में अभिहित किया जाता है। जिस तरह मत्स्येन्द्रनाथजी ने साक्षात् भगवान् शिव से गुरुरूप में महाज्ञान प्राप्त किया था, उसी तरह जालन्धरनाथ के गुरु भगवान् शिव ही थे। जिस तरह महाज्ञान भूलकर मत्स्येन्द्रनाथ के कुल (कौलाचार) साधना की और बाद में अकुल मार्ग - शैवमार्ग में सन्निष्ठ हो गये, ठीक उसी तरह जालन्धर पाद भी हेवज्र के साधनागत सिद्धकालिक मार्ग में थोड़े-बहुत प्रभावित थे पर बाद में नाथमत-सिद्धमत अथवा सिद्धामृत मार्ग का उन्होंने वरण कर लिया। निःसन्देह महायोगी जालन्धरनाथ के शिक्षागुरु भगवान् आदिनाथ शिव ही थे। नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धातों के प्रचार में उनका योगदान अमित महत्वपूर्ण है। ऐसे तो कहना आसान नहीं है कि जालन्धरनाथ ने किस शती को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया पर इतना तो स्पष्ट ही है कि उनके जीवन को एक विशाल अवधि का उपयोग विक्रमीय सातवीं शती से दसवीं-ग्यारहवीं शती तक एक नाथ सम्प्रदाय में हो सका। यह धारणा अत्यन्त परिपुष्ट है। यह निर्विवाद है कि इनके जीवन का अधिकांश गौड़बंगाल के

महान् शासक माणिकचन्द्र, उनकी पटरानी मयनावती और उनके पुत्र गोपीचन्द के जीवन-वृत्तान्त से सम्बद्ध है तथा इसी तरह उत्तर भारत के जालन्धर-पीठ और कुरुक्षेत्र के विशाल भूमिभाग तथा मध्य भारत और दक्षिण भारत को भी उन्होंने अपनी यौगिक शक्ति से प्रभावित और पोषित किया।

नवनाथों की दो अत्यधिक प्रामाणिक सूचियों में उन्हें नवनाथों में से एक कहा गया है। पहली सूची में नामानुक्रम है मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ (काणेरी, कानिफानाथ, कान्हपा), कृष्णपाद, चर्पटीनाथ, भर्तृहरिनाथ, कंथड़िनाथ और गहिनीनाथ तथा दूसरी सूची का यह नामानुक्रम है- मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ (गोरखनाथ), आदिनाथ, जालन्धरनाथ, चर्पटीनाथ, चौरंगीनाथ, कानिफानाथ, (कृष्णपाद, कान्हपा), भर्तृहरिनाथ, गोपीचन्दनाथ। तिब्बती परम्परा में जालन्धरनाथजी मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु माने जाते हैं और एक परम्परा में तो उन्हें गुरुभाई भी माना गया है। जालन्धरनाथ निस्संदेह नाथयोगी थे।

स्कन्दपुराण के काशी खंड के एक श्लोक-''जालन्धरी वसेन्नित्यमुत्तरा पथमाश्रितः'' के संदर्भ में यह बात पुष्ट होती है कि ज़ालन्धरनाथ उत्तरापथ-उत्तरभारत के पंजाब प्रदेश में निवास कर योगमार्ग का प्रचार करते थे। शिव के दो प्रधान शिष्य कहे गये हैं, मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ। दोनों ने ही उत्तरापथ को अपनी योगसिद्धि का प्रधान केन्द्र चुना। मत्स्येन्द्रनाथ ने नेपाल, कामरूप तो जालन्धरनाथ ने पंजाब और कुरुक्षेत्र तथा गौड़ बंगाल को महायोग ज्ञान से सम्पन्न किया। योगेश्वर गोरखनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ की योगविभूति सिद्धामृत के अनुसार प्रचारित की तो कृष्णपाद (कान्हपा) ने सिद्ध कापालिक मत के परिवेश में शैवयोग का

पोषण कर अपने गुरु के चरण-देश में श्रद्धा समर्पित की।

संत योगी ज्ञानेश्वर के ''योगिसम्प्रदायाविष्यकृतिग्रन्थ'' की वैष्णवी नवनाथ परम्परा में जालन्धरनाथ का उल्लेख किया गया है। श्रीमद्भागवत के आधार पर नवनारायणों की मान्यता को नवनाथों के रूप में महात्मा ज्ञानेश्वर ने समर्थन प्रदान किया। श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध के पहले से चौथे अध्याय में विवरण मिलता है कि स्वायम्भु मनु के पुत्र प्रियव्रत थे। प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र ने पूर्वचिति से विवाह किया। इन के नव पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें नाभि प्रथम थे। नाभि ने मेरुराज की कन्या मेरुदेवी से विवाह किया। दोनों ने हिमालय में तपस्या की, जिसके परिणाम-स्वरूप उनके पुत्र के रूप में भगवान् (आदिनाथ) ऋषभदेव ने जन्म लिया। ऋषभदेव के नव पुत्र महाभागवत योगेश्वर कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्लायन, आविर्होत्र,दुर्मिल, चमस और करभाजन हुए, जो नवनाथ के रूप में ''योगिसम्प्रदायाविष्कृति'' ग्रन्थ में गृहीत हैं। श्रीमद्भागवत के ग्याहरवें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में इन नव योगेश्वरों का विवरण उपलब्ध होता है। वे कविनारायण! (मत्स्येन्द्रनाथ), करभाजननारायण (गहिनीनाथ), अन्तरक्षि नारायण (ज्वालेन्द्र, जालन्धरनाथ), प्रबुद्धनारायण (करणिनाथ, कृष्णपाद अथवा कन्हापा या कान्हपा), आर्विर्होत्र नारायण (नागनाथ), पिप्लायन, नारायण (चर्पटीनाथ), चमस नारायण (रेवणनाथ), हरिनारायण (भर्तृहरिनाथ, भर्तृहरि) और दुर्मिल नारायण (गोपीचन्दनाथ) के रूप में ''योगिसम्प्रदायाविष्कृति'' ग्रन्थ में वर्णित है। इस तरह श्रीमद्भागवत की वैष्णवी-नाथपरम्परा में जालन्धरनाथ के अस्तित्व और व्यक्तित्व तथा उपदेश की ओर संकेत किया गया है। नवनाथ-

परम्परा के अध्ययन से यह स्पष्ट लाक्षित होता है कि महायो
जालन्धरनाथ शैवयोगी थे, नाथयोगी थे।

योगिराजेश्वर, जालन्धरनाथ के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध
अनेक वृत्तान्त उपलब्ध होते हैं और यह निर्णय करना कठिन
जाता है कि उन्होंने किस स्थान पर शरीर धारण किया था अ
किन-किन स्थानों को अपनी योगसिद्धि से विशेष प्रभावित कि
था। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में फैजुल्लारचित बंगला का
"गोरखविजय" ओर श्यामदासरचित "मीनचेतन" में उल्लेख है
दोनों उपर्युक्त ग्रन्थों का कथानक-कथावस्तु प्रायः एक ही है
इनमें सिद्धहाड़ीपाद-जालन्धरनाथ की उत्पत्ति पर प्रकाश डा
गया है। कथा है कि आद्य और आद्या ने पहले देवताओं की सृ
की। उसके बाद चार सिद्धों की उत्पत्ति हुई। धर्ममंगल शून्य पुरा
में धर्मनिरंजन की कथा वर्णित है कि जगत् सृष्टि से पहले वि
अव्यक्त था। शून्य से बुद्‌बुद्ध रूप में ब्राह्मण प्रकट हुआ। उस
बाद निरंजन आदिनाथ के रूप में अभिव्यक्त हुए। निरंजन देव
तप के ताप से केतका (मनसा) देवी की उत्पत्ति हुई। तपो
आदिनाथ मनसा का स्मरण कर कामप्रवण हो गये। केतका
मुख से ब्रह्मा, ललाट से विष्णु और योनि से शिव उत्पन्न हुए। ती
की परीक्षा हुई। उसमें शिव ने सफलता प्राप्त की। वल्लुका नदी
तट पर आदिनाथ तप कर रहे थे। तीनों पिता का दर्शन करने ग
तीनों-के-तीनों तप में रत हो गये थे। आदिनाथ परीक्षा के लि
गलित शव के रूप में नदी के प्रवाह में दीख पड़े। ब्रह्मा शव ग
से दूर स्थित हो गये, विष्णु ने जलनिक्षेप कर उसे और दूर किय
शिव ने दोनों को बुलाकर अपने जानु पर शव का दाह-संस्क
किया। ब्रह्मा अग्नि हुए, विष्णु काष्ठ हुए। दह्यमान शव की नाभि

मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) ललाट अथवा जटा से गोरखनाथ, हाड़ से हाड़िपा (जालन्धरनाथ), कान से कानपा और चरण से चौरंगीनाथ हुए।

आदिनाथ के संकेत से शिव ने केतका को पत्नी के रूप में ग्रहण किया, जन्मान्तरित केतका का नाम गौरी था।

उपर्युक्त प्रसंग में जालन्धरनाथ की दिव्य उत्पत्ति की एक विधि का पता चलता है। इस प्रसंग में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि एक दिन भगवती गौरी ने भगवान् शिव से निवेदन किया कि आप चारों सिद्धों को विवाह कर वंश चलाने की आज्ञा दीजिये। मानवीय शरीर में कामविकार होता है। आप आज्ञा दीजिए तो मैं उनकी परीक्षा लूँ। उस समय पूर्व दिशा में जालन्धरनाथ हाड़िपा, दक्षिण में कृष्णपाद कान्हपा, पश्चिम में गोरखनाथ और उत्तर दिशा में मीननाथ-मत्स्येन्द्रनाथ तप कर रहे थे। उन चारों को ध्यानबल से शिव ने अपने निकट बुलाया। देवी ने भुवनमोहिनी रूप धारण कर सिद्धों को (भोजन) परोसा। मत्स्येन्द्र के मन में काम-संकल्प उठा उसी तरह रमणी के साथ विहार का। आशय यह है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कुलाचारपरक तांत्रिक उपासना के अन्तर्गत स्त्री के सौन्दर्य और आकर्षण पर विजय प्राप्त करने की साधना अपनाने का संकल्प किया। जालन्धरपाद के मन में संकल्प उठा कि ऐसी लावण्यवती रमणी के घर झाड़ू लगाऊँगा इसके सौन्दर्य-उपभोग के लिये। इसका आशय यह है कि जालन्धरपाद ने निश्चय किया कि ऐसी सुन्दरी के घर झाडु देते हुए लघु-से-लघु कार्य का सम्पादन करते हुए मैं स्त्री के सौन्दर्य और आकर्षण से मन को विमुख कर (जीतकर) शिवपद में रमण करूँगा, यही कारण है कि गौड़ बंगाल के मेहरकुल के राजाधिराज माणिकचन्द्र और उनकी पटरानी

मयनावती से उनका सम्पर्क हुआ और योगिराज गोपीचन्द ने कृष्णपाद के अनुग्रह से जालन्धरनाथ को अपनी योगसाधना का पथप्रदर्शक बनाया। जगदीश्वरी भवानी के शाप के परिणामस्वरूप स्त्री-विजय के लिए जालन्धरपाद ने महारानी मयनावती के राजमहल में झाड़ू देने का कार्य अपनाया और हाड़ीपाद की उपाधि प्राप्त की। विश्वमोहिनी गौरी के रूप-सौन्दर्य से आकृष्ट होकर कान्हपा (कृष्णपाद) ने उनकी ऐसी रमणी को प्राण देकर पाने का निश्चय किया। देवी ने उन्हें तुरमान देश में डाहुका पक्षी होने का शाप दिया। गोरखनाथ ने भगवती के रूप को देखा, उनके मन में संकल्प उठा कि ऐसी देवी का मैं स्तन पान करूँ, ये मेरी माता है। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें स्त्रीरत्न पाने का वरदान दिया। शिव ने माया से एक कन्या उत्पन्न की। उसने गोरखनाथ को पति के रूप में वरण करना चाहा तो महायोगी गोरखनाथ उसके घर जाकर छः माह के शिशु हो गये। दूध पीना चाहा, कन्या से कहा कि मुझमें काम-विकार नहीं हो सकता पर तुम मेरी करपटी या कोपीन धोकर उसका जल पी लो, स्त्री ने ऐसा ही किया। इस क्रिया से उत्पन्न पुत्र ने नाथ-सम्प्रदाय में कर्पटीनाथ (चर्पटीनाथ) के रूप में सम्मान प्राप्त किया। उपर्युक्त कथा का आशय यह है कि चारों सिद्धों ने अपनी-अपनी यौगिक साधना-पद्धति के अनुसार रमणी के रूप-सौन्दर्य पर विजय प्राप्त कर मन को अपने वश में करना चाहा। सिद्ध योगेश्वर जालन्धरनाथ के मेहर कुल के माणिकचन्द्र के घराने से सम्बन्ध होने की यह भूमिका है, जो फैजुल्लाकृत "गोरखविजय" और श्यामदासकृत "मीनचेतन" में उपलब्ध होनी है।

एक परम्परा के अनुसार जालन्धरनाथजी का जन्मस्थान पंजाब

प्रदेश का एक प्रखण्ड बताया गया है। कहा जाता है कि वे पंजाब में जालंधरपीठ नामक तांत्रिक स्थान में उत्पन्न हुए थे। जिस समय सती के मृत शरीर को कंधे पर लेकर शिव ताण्डव नृत्य कर रहे थे, उस समय उनका स्तनभाग जालंधरपीठ में ही गिरा था। यह स्थान त्रिगर्त प्रदेश में है, यह पंजाब के ही अन्तर्गत ही एक प्रखण्ड का प्राचीन नाम है। शिवजी जालंधर दैत्य का वध करने के कारण शापग्रस्त हुए थे, इसी जालंधरपीठ में आकर तारा देवी की उपासना करने के फलस्वरूप वे पापमुक्त हुए। इस पीठ की देवी को त्रिशक्ति अथवा त्रिपुरा कहा जाता है। यहाँ की मुख्य शक्ति वज्रेश्वरी कहलाती है। इस बात की भी सम्भावना दीखती है कि जालन्धरनाथ की जन्मभूमि यदि जालंधरपीठ न सिद्ध हो, तो उनका साधनापीठ तो उसको कहा ही जा सकता है।

एक परम्परा यह भी संकेत करती है कि जालंधरनाथ हस्तिनापुर के पुरुवंशी राजा बृहद्रथ की यज्ञाग्नि से उत्पन्न हुए थे। इस लिए इनको ज्वालेन्द्रनाथ भी कहा जाता है। इस परम्परा का मूल उद्‌गम संत ज्ञानेश्वरकृत ''योगिसम्प्रदाया-विष्कृति'' ग्रन्थ है। वृहद्रथ धर्मराज युधिष्ठर की तेइसवीं पीढी में उत्पन्न थे। इस द्रष्टि से जालन्धरपाद को क्षत्रिय वर्ण का कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है।

जालंधरनाथ ने जालन्धर बन्ध में सिद्धि प्राप्त की थी यह सिद्धि उनके जालंधरनाथ नाम की सार्थकता प्रकट करती है। उड्डियानबन्ध का सम्बन्ध उड्डियानपीठ से है। उड्डियान में जालन्धर नामक राजा की उपस्थिति का पता चलता है । स्पष्ट है कि जालन्धर पीठ के निकट ही उड्डियान पीठ की स्थिति थी। उड्डियान पीठ के दो भाग कहे गये हैं, संभल और लंकापुरी। सम्भलपुरी के राजा इन्द्रभूति

और लंकापुरी के राजा ज्वालेन्द्र (जालन्धरनाथ) थे। दोनो में सम्बन्ध था। कहा जाता है कि इन्द्रभूति की ही बहन लक्ष्मीकरा से ज्वालेन्द्र के पुत्र का विवाह सम्पन्न हुआ था । परम्परा-गत आख्यान जो कुछ भी हो, इतना तो युक्तिसंगत लगता है कि जालन्धरनाथ का सम्बन्ध उड्डियान पीठ से भी था।

तिब्बती परम्परा के अन्तर्गत जालन्धरनाथ को नागरभोग (नगरदोत) गाँव के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न कहा गया है। वे बाल्यावस्था में जगत कि नश्वर प्रकृति पर विचार किया करते थे तो उदास हो जाते थे। एक समय की बात है, वे श्मशान के एक वृक्ष की छाया में बैठकर जीवन की क्षण-भंगुरता पर विचार कर रहे थे। उन्होने वहाँ एक डाकिनी को यह कहते सुना कि चित्त में शुद्ध विचार रखना चाहिये। उसने उन्हे हेवज्रतन्त्र मार्ग में दीक्षित किया। उसने प्रत्यक्ष साक्षात्कार की विधि बताते हुए कहा कि भावना करो कि तुम सभी इन्द्रियग्राह्य पदार्थों को अपने काय, वाक् और चित्त में आकर्षण कर रहे हो। इसी बात की धारणा तुम्हे इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियों में करनी चाहिये। इस तरह मस्तक के मुक्त आकाश में खुलने वाली सुषुम्ना नाडी के माध्यम से अपने विचार-प्रत्यय को निर्मल करना चाहिये। डाकिनी के निर्देश से जालन्धरनाथ कठोर साधना में तत्पर हो गये। सात वर्ष के पश्चात उन्हें (यौगिक) सिद्धि की प्राप्ति हुई। कहा जाता है कि उनकी गणना अच्छे पण्डित -भिक्षु के रूप मे जाती थी। उन्होंने घण्टापाद के शिष्य कूर्मपाद का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। धीरे- धीरे उनकी साधना आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट महायोगज्ञान से सम्पन्न हो उठी। उन्होंने शैव योगसाधना में सिद्धि प्राप्त कर गौड बंगाल के राजा माणिकचन्द्र की महारानी मयनावती और उनके पुत्र गोपीचन्द

को योगज्ञान से प्रबुद्ध किया। समस्त जालन्धरनाथ-सम्बन्धी प्रचलित परम्पराओं के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होने कहीं भी जन्म लिया हो, किसी भी गोत्र या कुल को पवित्र किया हो, किसी भी यौगिक या तान्त्रिक साधना में सिद्धि प्राप्त की हो यह निर्विवाद है कि उन्होंने पंजाब और बंगाल तथा राजस्थान को अपनी योगसिद्धि से प्रभावित किया। उन्होंने गौड़ बंगाल के मेहर कुल राजवंश के गोपीचंद को योगदीक्षा प्रदान कर नाथ सम्प्रदाय के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया।

योगिराज गोपीचन्द के जीवनवृतान्त का मूलाधार है महायोगी जालन्धरनाथ के सम्पर्क में उनका आना और योगदीक्षा लेकर योगसाधना में तत्पर होना। इतना ही नहीं, उनके पिता गौड़ बंगाल के महाराजा माणिकचन्द्र और उनकी पटरानी महारानी मयनावती पर भी सिद्ध जालन्धरनाथ का अमित प्रभाव था। गोपीचन्द के पिता माणिकचन्द्र बंगाल के पालवंश के राजघराने से सम्बन्धित थे। महारानी मयनावती की सत्प्रेरणा से महाराजा माणिकचन्द्र जालन्धरनाथ का बड़ा सम्मान करते थे। यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि जालन्धरनाथ ने राजा माणिकचन्द्र को योगदीक्षा दी थी, क्योंकि उन्हें उनके पुत्र गोपीचन्द का ही पथ प्रदर्शक स्वीकार किया गया है, पर यह असंदिग्ध है कि पटरानी मयनावती के प्रभाव और प्रेरणा से माणिकचन्द्र के मनपर सिद्ध जालन्धरनाथ के महायोगज्ञान का रंग चढ़ गया था। उन्हें-माणिकचन्द्र को लोक-गीतों में रावलयोगी के रूप में चित्रित किया गया है। निस्सन्देह रत्नाकर व्रत के अनुष्ठान के परिणामस्वरूप माणिक चन्द्र को गौड़ बंगाल के राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में गोपीचन्द ऐसे पुत्र की प्राप्ति हुई थी। उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया था कि

कहीं ऐसा न हो कि मयनावती और जालन्धरनाथ के प्रभाव से गोपीचन्द योगी-वेष धारण कर लें, इसलिए वे महारानी से खिंचे-खिंचे रहने लगे। जालन्धरनाथ के राजप्रासाद में प्रवेश पर उन्होंने रोक लगा दी। जालन्धरनाथ ने असंतुष्ट होकर राजा को शाप दे दिया कि छह माह में आपकी मृत्यु हो जायेगी। राजा ने जालन्धरनाथ से प्रभावित मयनावती को भी निर्वासन दे दिया। वह फेरुसा नगर चली गयी। मृत्युकाल उपस्थित होने पर रानी बुलाई गयी, पर राजा माणिकचन्द्र जालंधरनाथ के शाप से अभिग्रस्त होकर मृत्यु के हाथ से अपने आपको नहीं बचा सके।

रानी मयनावती की देख-रेख में गोपीचन्द ने राज्य का शासनभार सँभाला। धीरे-धीरे उनके जीवन को भोग-विलास में तथा पटरानी उदयिनी (उदुना), पद्मिनी (पुदुना) के रूपजाल में उलझते देख कर मयनावती ने गोपीचन्द से कहा कि तुम योगसिद्ध जालन्धरनाथ से योगदीक्षा ग्रहण करो, यह शरीर नश्वर है, विषयसुख नश्वर है। (सिद्ध हाड़िपा) जालन्धरनाथ ने गोपीचन्द से कहा कि योगी होना आसान काम नहीं है। कठिन-से-कठिन परीक्षा देनी होगी। अपनी राजधानी से आपको मेरे स्नान के लिये घड़े में पानी भर कर लाना होगा। मेरे भोजन के लिये आपको अपनी पटरानियों को माँ कह कर भिक्षा मांग कर लाना होगा। माँ से आज्ञा प्राप्त करने के बाद आप योगी-वेश धारण कर सकेंगे। गोपीचन्द सभी परीक्षाओं से खरे उतरे। योगज्ञान में पारंगत महारानी मयनावती ने कहा कि मेंने जालन्धरनाथ के पास तुम्हें अजर-अमर होने के लिये भेजा था। मेरा उद्देश्य यह कदापि न था कि गौड़ बंगाल का महाशासक विशाल राज्य का परित्याग कर गैरिक परिधान धारण कर योगी बन जाय। मयनावती के नेत्रों में अश्रु का प्रताप बड़े वेग से उमड़

कर आया। सारे रनिवास में हाहाकार मच गया। प्रजा अत्यन्त व्याकुल हो उठी। योगेश्वर जालन्धरनाथजी ने राजप्रासाद के प्रांगण में प्रवेश किया। जालन्धरनाथ ने महारानी से कहा कि राजभोग का सुख अस्थायी और क्षणिक है। आप गोपीचन्द के योगी होने के मार्ग में बाधा न उपस्थित कीजिए। गैरिक वेष धारण करनेवाले योगिराज गोपीचन्द को सिद्धपाद जालन्धरनाथ ने अक्षर, निरंजन, सच्चिदानन्द स्वरूप, अनिर्वचनीय शून्य पद में स्थित परम शिव की उपासना की विधि बतायी, गुरु शिष्य को साथ लेकर भ्रमण के लिये निकल पड़े। मेहर कुल के राजघराने में रमणी के सौन्दर्य और विषयभोग पर विजय प्राप्त करने के लिए झाड़ू देने का संकल्प करने वाले योगिराजेश्वर जालन्धरनाथ की योगसिद्ध साकार हो उठी, वे अपने व्रत में सफल हुए। गोपीचंन्द गुरु के पीछे-पीछे चल पड़े।

भ्रमण करते हुए योगेश्वर जालन्धरनाथ गोपीचन्द को साथ लिये हुए दक्षिण भारत पहुँच गये। दक्षिण भारत में एक नगर में हीरा नामक एक अत्यन्त रूपवती वारांगना रहती थी। गोपीचन्द की कड़ी परीक्षा होने के लिये जालन्धरनाथ ने उन्हें उसके हाथ बंधक रख कर प्रस्थान किया। वारांगना ने गोपीचन्द को अपने रूपजाल में फँसाने का यत्न किया। वे उसके वश में नहीं हो सके। उसने गोपीचन्द को एकान्त स्थान में रख दिया। जालन्धरनाथ ने भ्रमण से लौटने पर वारांगना से गोपीचन्द की माँग की। उसने कहा कि उनकी मृत्यु हो गयी। जालन्धरनाथ ने ध्यान की दृष्टि से सारी बात समझ ली। उन्होंने हुंकार किया और गोपीचन्द का बंधन टूट गया। इस तरह जालन्धरनाथ ने गोपीचन्द की कड़ी परीक्षा ली और सफल शिष्य को पाकर अमित प्रसन्न हुए; क्योंकि मयनावती ने केवल बारह साल के लिये गोपीचन्द को योगीवेश में रहने का

आदेश दिया था, इसलिये जालन्धरनाथ ने उनको माँ के हाथ में सुरक्षित सौंप दिया।

परम करुणामय योगीन्द्र जालन्धरनाथ ने गोपीचन्द को पूर्णरूप से महायोग प्रदान करने की दृष्टि से उनकी यौगिक शक्ति का हरण कर लिया। उदुना और पुदुना, दोनों रानियों ने उनको समझाया कि आपके गुरु योगसिद्ध नहीं हैं। वे जादूगर हैं। राजा ने अपने राज्य में एक जंगल के एक कुएँ में जालन्धरनाथ को डलवाकर उसमें ऊपर से मिट्टी भरवा दी। थोड़ा-सा छिद्र दीख पड़ता था। यह उस समय की बात है, जब मत्स्येन्द्रनाथजी महायोग-ज्ञान का विस्मरण कर कदली वन में महारानी कमला और मंगला के रमणी-राज्य में विहार कर रहे थे। महायोगी गोरखनाथ एक वकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे कि उन्हें आकाशमार्ग से योगबल से जाते जालन्धरनाथ के शिष्य कृष्णपाद (कान्हपा) दीख पड़े। कृष्णपाद से उन्हें अपने गुरु के विहार के सम्बन्ध में पता चला। गोरखनाथजी ने कृष्णपाद को जालन्धरनाथ का वृत्तान्त बताया। दोनों-के-दोनों अपने गुरु को मुक्त कराने चल पड़े। कृष्णपाद ने योगबल से महाराजा गोपीचन्द से भेंट की, क्योंकि उदुना-पुदुना का कड़ा आदेश था कि राजप्रसाद में योगी न आने पाये। कृष्णपाद ने गुरु के उद्धार की योजना बनायी। वे गोपीचन्द को साथ लेकर कुएँ पर गये और जालन्धरनाथ के शाप से भस्म होने से उनको बचा लिया। जालन्धरनाथ ने राजा गोपीचन्द को क्षमा कर दी। राजा का मन राजकार्य और विषयमुख से उपराम हो गया। उन्होंने श्रद्धानिष्ठ शिष्य के रूप में जालंधरनाथ की कृपा प्राप्त की। योगेश्वर जालंधरनाथ ने उन्हें महायोग ज्ञान प्रदान किया। उन्होंने गोपीचंद को सहजानन्द का बोध कराया।

राजा गोपीचंद गुरु की कृपा से योगिराज हो गये। जालन्धरपाद

के जीवन वृत्तान्त से सम्बद्ध योगिराज गोपीचन्द की कथा दुर्लभचन्द्रकृत बंगला ग्रन्थ ''गोविंदचंदेर गीत'' में भी वर्णित है। यह निश्चित-सी बात है कि ज़ादू-टोने और तंत्र-मंत्र की साधना से प्रभावित बंगाल में सिद्ध जालंधरनाथ ने सिद्धामृत मार्ग का प्रचार किया और जनमानस को शैवयोग की नाथसम्प्रदायसम्मत परम्परा से समृद्ध किया। जालंधरपाद के जन्म, कर्म, दोनों दिव्य थे, वे असाधारण योगी थे।

श्रीजालंधरनाथ की योगसाधना में सिद्धि और उनके शैवयोगसम्बन्धी सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में उनकी तांत्रिक साधना अथवा हेवज्र की उपासना की समन्वयात्मक भूमिका भी एक महत्वपूर्ण अध्याय है उनके यौगिक जीवन दर्शन का। योगेश्वर गोरखनाथजी की ही तरह उन्होंने अपने यौगिक सिद्धांत को अंतरंग साधना अथवा अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का प्रेरणास्त्रोत स्वीकार किया। उसकी चिन्तन-पद्धति आभ्यन्तरिक थी। उन्होंने बहिर्मुख, अभ्यासप्रधान आसन, प्राणायाम आदि अंगों को उतना महत्व नहीं दिया, जितनी आन्तरिक, आध्यात्मिक शक्ति के प्रबोधन पर उन्होंने बल दिया। उन्होंने भगवान् शिवद्वारा उपदिष्ट योगमार्ग का समर्थन कर और उसको जीवन में चरितार्थ कर सिद्धमत के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार में अमित सहयोग दिया। यह उनके योगपरक जीवन की सैद्धान्तिक और दार्शनिक महनीयता है। उन्होंने कहा कि योगसाधना की सिद्धि यह है कि शून्यमण्डल (गगन अथवा ब्रह्मरन्ध्र) में मन पहुँच कर अमन अथवा उन्मन हो जाय। यह रहस्य सद्गुरु की कृपा से ही अनुभूत होता है। वहाँ परम ज्योति प्रकाशित है।

उन्होंने नाथसम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुरूप एक अनिर्वचनीय

शून्य को अपना उपास्य माना है और उस अक्षय, निरंजन निरालम्ब शून्य को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया है, पर साथ-ही-साथ यह भी स्मरणीय है कि उन्होंने सरहपाद के महासुख नामक "सत्" आनन्द को ही चरम प्राप्तव्य स्वीकार किया। इस सुख में "इन्द्रियबोध" लुप्त हो जाता है, यह किसी शब्द के माध्यम से नहीं व्यक्त होता, यह नितान्त अनुभवगम्य और परम "केवल" रूप में ही, शून्य अथवा इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अतीत सिद्धावस्था है। इसी "केवल" स्वरूप में जालन्धरनाथ ने संस्थिति का अनुभव करते हुए परम लक्ष्य नाथतेज की भावपूर्ण वन्दना करते हुए अपना योगसत्य चरितार्थ किया है। जालन्धरपाद का सिद्धान्त वाक्य में कथन है- जो संसार के अन्धकार का नाश करने के लिये साक्षात् सूर्य के प्रकाश के समान है, जो समस्त सत्कर्मों में परिव्याप्त है, जो प्राणवायु का संचालक है, जो आकाश के समान निर्भर है, जो मुद्रा, नाद और त्रिशूल से परिशोभित है, जो भस्मयुक्त खप्पर धारण करता है, जो द्वैत (सकल) और अद्वैत (निष्कल) है अथवा द्वैत और अद्वैत, दोनों से परे महायोगी शंकरस्वरूप है, मैं उस श्रीनाथतेज (स्वरूप) की वन्दना करता हूँ। श्रीजालन्धर पाद ने इस अक्षय, निरंजन, अलख परब्रह्म परम शिव का तेजोमय अथवा ज्योतिर्मय साक्षात्कार किया।

यह बात संगत दीख पड़ती है कि उनके यौगिक सिद्धांतों और विचारोंपर बौद्ध दर्शन अथवा तांत्रिक बौद्ध दर्शन का थोड़ा-बहुत प्रभाव है, जालन्धर पाद की रचनाओं और वचनों से यह परिलक्षित होता है कि वे शैव कापालिक मत की ओर भी आकृष्ट थे। इस तथ्य को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं है कि बौद्ध धर्म के वज्रयान की विचारधारा की भी उनके योगपरक जीवन-पद्धति पर विशेष

...प है। जालन्धरपाद ने सरहपाद के हेवज्रसाधनसम्बन्धी ग्रंथ "...शुद्धिवज्रप्रदीप" पर टीका लिखी थी। उनके शिष्य कृष्णपाद ने ...ी हेवज्रतन्त्र पर एक टीका "योगरत्नमाला" अथवा "हेवज्रपंजिका" लिखी थी। इस तरह गुरु और शिष्य, जालन्धरनाथ ...और कृष्णपाद, दोनों की "हेवज्रसाधन" में निष्ठा का पता चलता ...। सरहपाद और कंबलांबर पाद ने संयुक्त रूप से "हेवज्रसाधन" ...का आरंभ किया था। यह निर्विवाद तथ्य है कि महायोगी ...जालन्धरपाद ने सरहपाद और कंबलांबर पाद द्वारा प्रवर्तित ...हेवज्रसाधन की दीक्षा ली थी। इस साधन-प्रक्रिया में प्राणायाम की ...मुख्य आधारवाली हठयोगसाधना का महत्व स्पष्ट है। यही कारण है ...कि हेवज्रसाधना में दीक्षित जालन्धरपाद को नाथ-सम्प्रदाय की ...हठयोगपरक साधना में सिद्धि-लाभ करने की सुगमता हो सकी ...और साथ-ही-साथ वे नाथमत अथवा सिद्धामृत मार्ग के कर्णधारों ...में प्रमुख स्थानीय परिगणित हो सके।

हेरुक अथवा हेवज्र की साधना और स्वरूप का साम्य बहुत ...कुछ शिव नटराज की उपासना में उपलब्ध होता है। सरहपाद के ...हेवज्रसाधन की परम्परा में हेवज्रतन्त्र और कृष्णपादरचित "योगरत्नमाला" का बड़ा महत्व है। हेवज्रतन्त्र में हेवज्र के स्वरूप, ...साधन, साधक, मुद्रा, साधनास्थल का समीचीन विवेचन है। इस ...तांत्रिक साधना में हेवज्र उपास्य है, वे कपाल-माला धारण करते ...हैं, वीर हैं, वे नैरात्म से सदा आलिंगित है, उनका वर्ण नीला है, वे ...अरुण आभा से शोभित हैं, उनके ऊपर उठे केश पिंगल वर्ण के ...हैं। उनके नेत्र बन्धूक पुष्प के समान लाल हैं, वे पंच मुद्रायुक्त हैं। ...वे चक्री-कुण्डल, कंठी धारण करते हैं। उनके हाथ में सोने के ...आभूषण हैं, वे मेखला पहने हुए हैं, उनकी दृष्टि क्रोधभरी है, वे

व्याघ्रचर्म धारण करते हैं, उनकी अवस्था सोलह वर्ष की है। उ
हाथ में वज्र, कपाल, खट्वांग और कृष्णवज्र है। अष्टयोगियों
संयुक्त वे श्मशान में क्रीड़ा करते हैं, वे चतुर्भुज हैं, उनकी पह
वाम भुजा में देवताओं और असुरों के रक्त से पूर्ण नरकपाल
पहली दाहिनी भुजा में वज्र है। शेष दोनों भुजाओं में प्रज्ञा भगवद्रूपि
वज्रवाही आलिंगत रूप में, इसी रूप में मुद्रा, महामुद्रा का व
मिलता है। यह प्रज्ञास्वभावा है। हेवज्रतंत्र में मुद्रा का भी हेवज्र
अनुरूप वर्णन है। वीरसाधक भी अस्थिमालादि धारण करता
साधक अथवा भावक को कानों में दिव्य कुण्डल, मस्तक में च
हाथों में दो रुचक, कटि में मेखला, पैर में नूपुर, बाहुमूल में क
ग्रीवा में हड्डियों की माला धारण करनी चाहिए। उसका परि
व्याघ्रचर्म है। उसे पंचामृत ग्रहण करना चाहिये। उसे पंचवर्ण
विहार करना चाहिए। वृक्ष के नीचे श्मशान में देवी मंदिर अ
निर्जन प्रान्त में, किसी स्थान में मुद्रा के साथ उक्त चर्या क
चाहिये। हेरुक अथवा हेवज्रकी यह तांत्रिक साधना-पद्धति है।
बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हेवज्र अथवा हेरुक के लिये वीर
नाथ के प्रयोग जालन्धरपाद की साधना-पद्धति को समझने
बहुत सहायक हैं। बौद्ध तांत्रिक समुदाय में हेरुक (हेवज्र)
सम्बन्ध नाथ शैवयोग परम्परा में स्थापित होता है। इस तरह हे
की उपासना बौद्ध तन्त्र और शैव साधनात्मक तन्त्र का समन्वयात्म
दृष्टिकोण परिलक्षित कर हेवज्रसाधना में तत्पर जालन्धरपाद
यौगिक उपासनागतसिद्धि नाथसम्प्रदाय अथवा सिद्धमत में प्रति
करती है।

हेवज्रसाधना की मूल प्रवृत्ति के विश्लेषणात्मक अध्ययन
यह बात स्पष्ट होती है कि प्राचीनकाल में उत्तराखण्ड में यक्ष

प्रचलित थी। इन्हीं यक्षों को वज्रधर समझा जाता था। वरुण, कुबेर और कामदेव यक्षदेवता हैं। कुछ यक्ष देवता बौद्ध सम्प्रदाय में भी मान्य हो गये हैं। एक मणिभद्र यक्ष को भगवान् बुद्ध का शिष्य कहा गया है। बोधिचर्यावृतार की टीका में यही वज्रपाणि बोधिसत्व है। वज्रयानी ग्रंथों में ये ही वज्रपाणि महान देवता के रूप में पूज्य हो गये हैं। चर्याचर्यविनिश्चय की टीका में दातड़ीपाद का एक श्लोक उद्धृत है, जिससे संकेत मिलता है कि प्राणी वज्रधर है, जगत् की स्त्री कपाल-वनिता है। साधक हेरुक भगवान् की मूर्ति है। उनसे अभिन्न है। श्लोक इस तरह है- हिन्दू शास्त्र में हेरुक भगवान् शिव के एक गण का नाम है। इस तरह हेरुक-उपासना में शैव परम्परा भी थोड़े बहुत अंश में अन्तर्निहित है, जिसका जालन्धरनाथ की योगपरक जीवन-पद्धति में आभास मिलता है। इस स्वीकृति में किसी भी तरह की अतिशयोक्ति नहीं है कि उपर्युक्त हेरुक-उपासना और साधना-पद्धति में अपने आपको तत्पर करने के बाद वे अपनी योगसिद्धि-अवस्था में नाथमत के महायोगी थे।

कृष्णपाद (कान्हपा) के रचित १२ पद हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्रकाशित बौद्धगान ओ दोहा के अन्तर्गत चर्याचर्यविनिश्चय में पाये जाते हैं। उसमें उन्होंने अपने गुरु का नाम जालन्धरि (जालन्धरपाद) कहा है। छत्तीसवाँ पद है उपर्युक्त ग्रन्थ में।

कृष्णपाद ने उपर्युक्त सन्दर्भ में अपने आपको कापालिक कहा है। कापालिक मार्ग शैव सम्प्रदायों में वाम मार्ग के रूप में ग्रहीत है। सिद्ध कृष्णपाद के शैव कापालिक मत को नाथयोग की कसौटी पर कस कर तथा उसके विशिष्ट अंग को स्वर्ण की तरह संशुद्ध मानकर महायोगी गोरखनाथजी ने उपसम्प्रदाय के रूप में मान्यता प्रदान की। कृष्णपादका शैव कापालिक मत अर्धस्वीकृत होने से

व.मारग कहा गया है। यह तांत्रिक बौद्धों और शैव नाथ योगि की साधना-पद्धतियों का संधिस्थल हैं। योगसिद्ध जालन्धर और कान्हपा की सिद्धमत को यह विशिष्ट देन है।

जालन्धरपाद का एक पद महापण्डित राहुल सांकृत्यायन नेपाल में उपलब्ध हुआ था, जिसके सन्दर्भ में यह बात स्पष्ट जाती है कि वे सरहपाद के महासुख नामक "सत्" आनन्द को परम प्राप्तव्य स्वीकार करते हैं। बौद्धों के अनिर्वचनीय शून्य उन्होंने नहीं मान्यता दी, पर नाथ-सम्प्रदाय के अलख निरंजन शून्य परम शिव में निष्ठा व्यक्त कर सरहपाद के "सत्" आनन्द के अनु माध्यम से उन्होंने योगसिद्धिका रसास्वादन किया। सरहपाद विवेचित आनन्द चार प्रकार का है। पहला प्रथमानन्द है, दू परमानन्द है, तीसरा विरमानंद है और चौथा सहजानंद है। सहज ही सुखराज अथवा महासुख है। इसमें इंद्रियबोध-आत्म अस्मिता का लोप होता है, "केवल" रूप में स्थिति होती है।

सुखराज की सारतत्व है, यह आदि, अन्त और मध्य से शून्यावस्था है। यह जन्म, मोक्ष, भव, निर्वाण से परे परम सुख स्थिति है।

इसमें अपने-पराये का बोध नहीं रह जाता है। जालन्धर पा सरहपाद द्वारा निरूपित महासुख का अनुभव किया था।

इस महासुख की प्राप्ति इस शरीर में ही हो जाती है। शरीर मेरुदंड ही कंकालदंड है, यह मेरु पर्वत है। इसी गिरिराज कन्दरकुहर में नैरात्मधातु जगत् की उत्पत्ति होती है। इसी गिरि में स्थित पद्म में यदि बोधिचित्त पतित होता है, तो कालाग्नि प्रवेश होता है और सिद्धि में बाधा पड़ती है।

मेरु गिरि के शिखर पर महासुख का आवास है यहाँ चाँ

दलों का कमल है। यह कमल चार मृणालों पर स्थित है, प्रत्येक क्रम के चार-चार दल हैं। यहाँ वज्रधर (योगी) इस पद्म का आनन्द उस प्रकार लेता है, जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का। इन चार मृणालों के दलों के नाम शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य है। जो सर्वशून्य का निवास है, उसी का नाम उष्णीस कमल है, यही जालंधरगिरि-नामक महामेरु गिरिका शिखर है, यही महासुख का आवास है, इस गिरिशिखर पर पहुँच कर योगी वज्र धर हो जाता है। यहीं वह सहजानंदस्वरूप महासुख का अनुभव करता है।

महायोगी जालन्धरनाथ की योगसाधना-प्रक्रिया का प्राण महासुख का सहज अनुभव है। उन्होंने सहजानन्द की अवस्था में स्थिति अथवा अनुभूति पर बड़ा बल दिया। जालन्धरनाथ ने कहा कि एक आश्चर्य यह है कि ब्रह्मरन्ध्ररूपी कूप से शरीररूपी घड़े में अमृत उलीचा जाता है पर रज्जु के छोटी होनेपर (कुण्डलिनी शक्ति के पूर्ण जागरत न होने पर) प्राणी प्यासे रह जाते हैं, उन्हें प्राणामृत की प्राप्ति नहीं होती है।

जालन्धरनाथ ने अनुभव किया कि सहज अवस्था को प्राप्त करना ही योगसिद्धि है अथवा साधना की पूर्णता है।

उन्होंने महासुख की व्याख्या की कि घोर अन्धकार को जिस प्रकार चंद्र कांतमणि दूर कर अपने निर्मल प्रकाश से सहज उद्भासित होता है, उसी प्रकार सहजावस्था में महासुख समस्त पापों का नाश कर स्वतः अभिव्यक्त अथवा प्रकाशित होता है। यह गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है।

ऐसे तो जालंधरनाथजी अपने शिष्य कान्हपा के ''वामरग'', शैव कापालिक मत के पोषक आचार्यरूप में स्वीकृत हैं, पर

नाथयोग-सम्प्रदाय में ''वामारग'' पूर्ण अंतर्भुक्त नहीं हो सका। इसकी अलग सत्ता है। जालंधर नाथद्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय, जिसे जालंधरिपा तथा पापंथ कहा जाता है, नाथयोगसम्प्रदाय के एक विशिष्ट अंग के रूप में अंतर्भुक्त और मान्य है। जयपुर की पावनाथी शाखा जालंधर पाद द्वारा प्रवर्तित कही जाती है।

जालंधरनाथ की अनेक यौगिक रचनायें उपलब्ध होती है, जिनमें उनके वचनामृत के अध्ययन से महायोगज्ञान के स्वरूप पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ता है। जालंधरपाद की जो रचनायें उपलब्ध हैं, उनमें विमुक्तमंजरी गीत, हुंकारचित्त विदुभावनाक्रम विशेषरूप से उल्लेख के योग्य हैं। उन्होंने सरहपाद के प्रसिद्ध तंत्रग्रंथ ''हेवज्रसाधन'' पर ''शुद्धिवज्रप्रदीप'' नामकी टिप्प्णी लिखी।

जालंधरपाद के शिष्यों और अनुयायियों में कृष्णपाद, गोपीचन्द, उनकी माता मयनावती, ततिपा के नाम बड़े महत्व के हैं। कृष्णपाद को कर्णाट देश का ब्राह्मण कहा गया है। शरीर का रंग काला होने से इन्हें कृष्णपाद ही कहा गया है। पहले वे पंडित भिक्षु थे, बहुत समय तक बंगाल के राजशाही जनपद के पहाड़पुर स्थान, सोमपुरी विहार में निवास करने के बाद महायोगी जालंधर के शिष्य हो गये। उन्होंने अपने गुरु को मेहरकुल के राजघराने के प्रकोप से मुक्त कर राजा गोपीचन्द को जालंधरपाद के शरणागत होकर योगीवेश धारण करने की सत्प्रेरणा प्रदान की। कृष्णपाद उच्च कोटि के विद्वान् थे। कहा जाता है कि उन्होंने ५७ ग्रंथों की रचना की थी। उन्हें महाचार्य, महासिद्धाचार्य, उपाध्याय कहा गया है। मगही भाषा में भी उनके अनेक ग्रंथ मिलते हैं, उनके नाम हैं कान्हपादगीतिका, वसन्ततिलक, दोहाकोष और वज्रगीति। उन्हें करणिपानाथजी भी कहा जाता है। कान्हपा के लिये कहा जाता है

कि वे जन्म से ही मूक थे, पर जालन्धरपाद ऐसे महासिद्ध योगी गुरु की कृपा से उन्हें वाक्-शक्ति प्राप्त हो गयी। महारानी मयनावती, जो योगिराज भर्तृहरि की बहन और माणिकचन्द्र की रानी थीं, जालन्धरनाथ के चरणों में अप्रतिम अनुराग रखती थीं। गोपीचंद ने जालन्धरनाथ के शिष्यरूप में गोरखपंथ के माननाथी सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर अपने गुरु जालन्धरपाद, उनके शिष्य कान्हपा के विचारों को नाथ सम्प्रदाय अथवा सिद्धमत के सिद्धांतों से संतुलित समन्वय प्रदान किया। योगिराज गोपीचंद की सबदियों में जालंधरपाद के नाम का बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से उल्लेख मिलता है।

योगिराज गोपीचंद ने जालंधरनाथ से पूछा था कि हे स्वामी, जब मैं भोगसुखों के मध्य नगर में निवास करता हूँ, तो मुझे कामदेव संताप देता है, कामवासना जाग जाती है और नगर का परित्याग कर वन में जाने पर भूख सताती है। यदि एक जगह आसन लगाकर (कुटी बनाकर) विश्राम करता हूँ, तो मन पर माया का अधिकार हो जाता है और चलते रहने पर शरीर निर्बल होता है। मिष्ठान्न (पौष्टिक मधुर खाद्य) का सेवन करने पर शरीर रोगी होता है, आप ही बतलाइये कि किस तरह योग की साधना की जाय।

योगीन्द्र जालंधरनाथ ने कहा कि अल्प संयमित आहार के सेवन से काम नहीं सताता, प्राणायाम का अभ्यास करने से भूख नहीं लगती (सताती), सिद्ध आसन के अभ्यास से माया भाग जाती है और नाद का अनुसंधान करने से शरीर निर्बल नहीं होता। जिह्वा को स्वाद के वश में नहीं करना चाहिये, मन और पवन को अपने वश में कर योग की साधना करनी चाहिये।

महायोगी जालंधरनाथ ने अपने महायोगज्ञान से लोक-जीवन का आध्यात्मीकरण किया। उन्होंने कहा कि सत्यसिद्धामृत मार्ग से

ही जीवात्मा संसारसागर से पार उतर जाता है। योगी अमरकाय हो जाता है, वह जन्म और मृत्यु से प्रभावित नहीं होता। वह शून्यस्थ परम शिव का साक्षात्कार कर शिव-पद अथवा कैवल्य प्राप्त कर लेता है।

योगेश्वर जालंधरपाद ने सदुपदेश दिया कि यह संसार कर्मभूमि है। मनुष्य पहले जन्म में जो कर्म करता है,उन्हीं के फलस्वरूप उसे जीवन मिलता है। इस जन्म में वह जो कुछ कर्म करता है उन्हीं के अनुरूप उसे अगला जन्म मिलता है। जैसा किया जाता है, वैसा ही मिलता है, इसलिए मनुष्य-शरीर धारण करने का सबसे बड़ा श्रेय यह है कि यथाशक्ति पुण्यकर्म किया जाय। निरन्तर अजपा (मन्त्र) का जाप करना चाहिये, सहज तप में तत्पर रहना चाहिये, यही अद्‌भुत महायोगज्ञान है कि इसके प्रकाश में पाप का नाश हो जाय और पुण्य मिले।

महायोगी जालंधरनाथ का जीवन-वृत्तांत नाथ-सम्प्रदाय में ही नहीं, भारतीय इतिहास में भी स्वर्णाक्षरों में अमिट है। उन्होंने तिब्बत और उत्तराखंड के अनेक देशों को अपने महायोगज्ञान से समृद्ध किया। जालंधरपाद महायोगी थे, सिद्धपुरुष थे, वे योगदर्शन और सिद्धामृत मार्ग के महामहिम आचार्य थे।

5. करभाजन नारायण

गहिनीनाथ

नाथपंथ के महायोगी गहिनीनाथ ने भगवान पण्ढरीनाथ की कृपा से रससिक्त समग्र महाराष्ट्र प्रदेश को ही नही, नाथसम्प्रदाय के अनेक भूमिखण्डों को श्रीकृष्णमन्त्र से अभिषिक्त कर शैव सिद्धान्तपरक नाथयोग का वैष्णवीकरणकिया। श्रीमद्भागवत के नव नारायणों की प्राणमयी परम्परा के अत्यन्त सशक्त और प्राणवान् अंग महायोगी करभाजननारायणरूप गहिनीनाथ ने महाराष्ट्र की नाथयोगधारा का भागवत रस- भागवत जीवनामृत से श्रृंगार किया। महाराष्ट्र का वारकारी सम्प्रदाय- वैष्णवमार्ग महायोगी गहिनीनाथ की कृपा से कृतार्थ, उपकृत और चिरसमृद्ध है। यद्यपि गहिनीनाथजी की उत्पत्ति अयोनिज है और वे अपने योगसिद्ध सुपरिपक्व शरीर में काल दण्ड का खण्डन कर विद्यमान रहते है,तथापि शैवनाथयोग की धाराको भागवत-वैष्णवरूप प्रदानकरने के लिये उन तपोमूर्ति महायोगी ने करुणापूर्वक प्रत्यक्ष शरीर से दर्शन देकर लोगों को भगवान की भक्ति से समृद्ध किया। उनके शरीर का दर्शन विक्रमीय चौदहवीं शती के पहले और दूसरे चरण में ही सम्भव हुआ। उस समय उत्तर भारत की केन्द्रीय शासनसत्ता में अराजकता, अशान्ति और अनीति का ही बोलबाला था, विदेशियों के आक्रमण से और केन्द्रीयशासनसत्ता की शक्तिहीनता से जनता उत्पीडित थी। दक्षिण भारत में वैदिक आचार विचार और संस्कृति का उस समय के प्रशासकों के द्वारा सुदृढ संरक्षण प्रचलित था। महाराष्ट्र प्रदेश के हृदय देश देवगिरि में महाराजा रामदेव अथवा रामचन्द्र के शासन-

काल में प्रजा निश्चिन्त और अभय थी। ऐसे समय में तपोमूर्ति नाथयोगी गहिनीनाथ ने जन-जीवन को नारायणी शक्ति से आश्वस्त किया और पुण्यचरित योगी निवृतिनाथ को उन्होने भागवत धर्म के सत्प्रचार की प्रेरणा प्रदान की। यही गहिनीनाथ का मार्मिक व्यक्तितव -दर्शन है।

गहिनीनाथ की प्रशस्ति में योगिराज निवृतिनाथजी का एक अभंग में कथन है कि ध्यान, उन्मनी समाधि में सर्वत्र एकमात्र हरि ही विराजमान हैं। वेदों का वेदत्व और शास्त्रों का विवेक, श्रुति, परलोक, वैकुण्ठ आदि हमारे हरि ही है। उन्ही में सत्स्वरूप की उत्पत्ति और उसकी परिपक्वता है। गहिनीनाथ के प्रसाद से मुझे स्पष्ट रूप में श्रीरंग गोविन्द की प्राप्ति हो गयी।

संत योगी ज्ञानेश्वरकृत योगिसम्प्रदायाविष्कृति ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में वर्णित नवयोगीश्वरों -नव नारायणों में करभाजन नारायण का रूप गहिनीनाथ को स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवत के पचंम स्कन्ध में वर्णन है कि प्रियव्रत बडे भगवद्भक्त थे। प्रियव्रत के पुत्र आग्नीघ्र थे। आग्नीघ्र के पुत्र नाभि थे। नाभि के पुत्र के पुत्र के रूप मे शुद्ध सत्वमय विग्रह वाले ऋषभदेव प्रकट हुए। ऋषभदेव के पुत्रों मे कविनारायण, हरिनारायण, अन्तरिक्ष नारायण,प्रबुद्धनारायण, पिप्लायन नारायण,आविर्होत्र नारायण, द्रुमिलनारायण, चमस नारायण और करभाजन नारायण ने ही गहिनीनाथ के रूप में अवतार लेकर महाराष्ट्र में नाथपन्थ को भागवत धर्म से समृद्ध किया। करभाजन नारायण के उपदेश से ही पता चलता है कि वे कितने बड़े भागवत रस में निमग्न योगी थे।

इसका आशय यह है कि जो प्रेमी भक्त अपने प्रियतम भगवान

के चरण कमलों का अनन्य भाव से, दूसरी भावनाओं, अवस्थाओं, वृत्तियों और प्रवृत्तियों को छोड़कर भजन करता है, उससे पापकर्म होते ही नहीं है, यदि हो भी जायँ, तो भगवान् उसके हृदय में बैठकर सब धो-बहा देते हैं, उसके हृदय को शुद्ध कर देते हैं। अपने अभिनव गहिनीनाथ-रूप में करभाजन नारायण का इसी तरह भगवद्रसामृत का संचार करना स्वाभाविक है।

नाथपंथ में प्रसिद्ध नवनाथों की अनेकानेक उपलब्ध प्राचीन सूचियों में गहिनीनाथ को नवनाथों में परिगणित किया गया है। बंगलाग्रंथ राजगुरुयोगिवंश में उद्धृत एक सूची में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्ष, जालन्धर, कानपा, भर्तृहरि रेवण, नागनाथ, चर्पटनाथ के साथ गहिनीनाथ का नाम नवनाथों में सम्मिलित किया गया है। महाराष्ट्रीय नाथसम्प्रदाय की परम्परा में महायोगी गहिनीनाथ को शिवगोरक्ष गोरखनाथजी महाराज का अभिमंत्रित पुत्र कहा गया है। (''महाराष्ट्र के नाथपन्थीय कवियों का हिन्दी काव्यग्रंथ'' में उसके लेखक-डॉ. अशोक प्रभाकर कामत का मत है कि) गोरखनाथजी के दो मराठी शिष्य कहे गये हैं-ग्रहणनाथ और अमरनाथ। गहिनीनाथ का ही वास्तविक नाम ग्रहणनाथ कहा जाता है। यद्यपि गहिनीनाथ को सन्-सम्वत् की परिधि में रखकर उनके जीवन-वृत्तांत पर विचार नहीं किया जा सकता तथापि उनके प्राकट्य का समय विक्रमीय सम्वत् १२३२ के आसपास निर्धारित करने का प्रयास किया गया है, प्राकट्य का तात्पर्य उनके द्वारा लोगों को अपने शरीर का प्रत्यक्ष दर्शन कराना है। निवृत्तिनाथ महाराज ने गुरु गहिनीनाथ और अमरनाथ-दोनों के नाम सम्मानपूर्वक लिये हैं-

नाथसिद्धयोगी गहिनीनाथ ने ''गहिनीप्रताप'' नामकग्रंथ में

अपने आप को "गोरखसुत" कहा है, उनके इस "गुरुपुत्र" के रूपमें स्वीकृति का आशय "गोरखशिष्य" के रूप में आँका जा सकता है। गहिनीनाथजी का कथन है-

(डॉ. प्र.न. जोशी ने अपने ग्रंथ "नाथ-सम्प्रदाय-उदय व विस्तार" में लिखा है कि) अमरनाथ का समय शक सम्वत् ११३० से १२१० है और (उनका अनुमान है कि) नासिक के निकट सप्तश्रृंगी की पहाड़ी पर वे योगिराजेश्वर गहिनीनाथजी के साथ ही तपश्चर्या में रत थे। (जोशी महोदय ने अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है कि) अमरनाथकी कृति "गोरक्ष-अमर-संवाद" है। इस ग्रंथरचना की भाषा प्राचीन मराठी है। इसमें २१ प्रकरण है। यह रचना तेरहवीं शताब्दी की अनुमानित है अतएव यह स्पष्ट है कि महाराष्ट्रीय नाथपंथीय परम्परा में गहिनीनाथ और अमरनाथ, दोनों महायोगी गोरखनाथजी से दीक्षित थे, गुरुपुत्र थे।

महायोगी गहिनीनाथ अपने सिद्ध योगदेह में अमर हैं और समय-समय पर प्रकट होते हैं। उनकी उत्पत्ति दिव्य, अयोनिज और अभिमन्त्रित हैं। कहा जाता है कि एक बार योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथजी के साथ गोरखनाथजी भ्रमण कर रहे थे। (किसी) कनक ग्राम में पहुँचने पर उन्होंने बच्चों को एक मिट्टी की मूर्ति बना कर खेलते देखा। उस मूर्ति में मन्त्र के सहज उच्चारण से मत्स्येन्द्रनाथजी और गोरखनाथजी के द्वारा प्राण (चैतन्य) का संचार सम्पन्न हुआ। अतएव उस मूर्ति में साक्षात् गहिनीनाथजी प्रकट हो गये। उनका पालन-पोषण मधु और गंगानाथ नामक ब्राह्मण दम्पत्ति ने किया।

शिवदीनकेशरी के शिष्य चिन्तामणिनाथ के ग्रन्थ "ज्ञानकैवल्य" में उल्लेख है कि त्रियाराज्य की सम्राज्ञी महारानी

परिमला के मोहपाश में आबद्ध गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के प्रबोधन के लिये गोरखनाथजी को जाना पड़ा था। परिमला के मृतक पुत्र को गोरखनाथजी ने प्राणदान देकर उसे जीवित कर दिया। इस तरह गैनीनाथ की उत्पत्ति का यह भी एक रूप है। (यह उल्लेख डॉ. अशोक प्रभाकर कामत ने अपने ग्रन्थ में किया है।)

नाथसम्प्रदाय में यह बात प्रसिद्ध है कि क्षीरसागर के तट पर शिवजी ने पार्वती के पति योगज्ञान का निरूपण किया और मत्स्येन्द्रनाथजी ने डोंगी के नीचे छिप कर उसका श्रवण किया, उन्होंने गोरखनाथजी को योगोपदेश दिया और गोरखनाथजी ने उसे गहिनीनाथ को प्रदान किया। परम कारुणिक गहिनीनाथजी ने कलिकाग्रस्त जीवों के उद्धार के लिये उसे निवृत्तिनाथजी को प्रदान किया। महाराष्ट्र की नाथपंथीय परम्परा के इस तथ्य की पुष्टि संत योगी ज्ञानेश्वर ने अपने गीताभाष्य ''ज्ञानेश्वरी'' में की है। महाराज का कथन है कि क्षीरसमुद्र के तट पर श्रीशंकर ने भगवती पार्वती के कानों में न जाने, कब एक बार जो उपदेश दिया, वह क्षीरसमुद्र की लहरों में किसी मत्स्य के पेट में गुप्त मत्स्येन्द्रनाथजी के हाथ लगा। वे मत्स्येन्द्रनाथ सप्तश्रृंग पर्वत पर चौरंगीनाथ से मिले, जिनके हाथ-पैर कटे थे। मिलते ही चौरंगीनाथ पूर्णांग हो गये। उसके बाद अचल समाधि का उपभोग लेने की इच्छा से मत्स्येन्द्रनाथजी ने उसका उपदेश गोरखनाथजी को दिया। उसे उन्होंने योगरूपी कमलिनी के सरोवर विषयों को विध्वंस करने वाले एक ही वीर शंकर के पद पर अभिषिक्त किया। श्रीशंकर से प्राप्त यह अद्वैतानन्द सुख उनसे सम्पूर्ण रूप में श्री (गयनी) गहिनीनाथ ने सम्पादित किया। वे सब प्राणियों को कलिकाल से ग्रस्त देखकर दौड़ आये और गहिनीनाथ योगी ने श्रीनिवृत्तिनाथ को आज्ञा दी कि आदि

गुरु शंकर से शिष्यपरम्परानुप्राप्त उपदेश से तुम कलिकाल के जीवों की रक्षा करो। श्रीनिवृत्तिनाथ तो पहले से ही कृपाल थे। गुरुवचन उनके लिये ऐसे थे, मानो मेघ घिरे आये हों। उन्होंने संतप्त प्राणियों के हित में गीतार्थ-निरूपण कर शान्तरस की वृष्टि की। मेरे स्वामी सद्गुरुदेव निवृत्तिनाथ ने गुरु परम्परा से प्राप्त इस समाधिधन को मुझे प्रदान किया।

इस आदिपरम्परा का तुकारामजी के शिष्य निलोबा ने प्रतिपादित किया है कि जो गुह्य ज्ञान शंकर ने पार्वती के प्रति कहा उसे मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) ने प्राप्त किया। मीननाथ ने उसे गोरखनाथ को दिया। उनसे गहिनीनाथ ने ग्रहण किया। गहिनीनाथ ने दीनजनों के उद्धार के लिये उसे निवृत्तिनाथ को दिया। परम कारुणिक निवृत्तिनाथ ने उसे ज्ञानेश्वर को दिया। यही आदि परम्परा है।

शिवोपदिष्ट योगज्ञान मत्स्येन्द्र ने गोरखनाथ को प्रदान किया। गोरखनाथ से गहिनीनाथ ने पाया और गहिनी से निवृत्तिनाथ को मिला। गुरु के प्रसादरूप में ज्ञानेश्वर ने निवृत्तिनाथ से प्राप्त किया। तुकोबा-तुकाराम के चरण में श्रद्धा रखने वाली बहिणाबाई ने इसे प्रकाशित किया। यह निर्विवाद है कि नाथपंथीय योगपरम्परा की अविच्छिन्न धारा अद्यावधि वैष्णववारकरी जीवनपद्धति में अभिन्न रूप से प्रवाहित है।

गहिनीनाथजी ने योगी निवृत्तिनाथ पर गुरुरूप में अपनी कृपादृष्टि का प्रसार किया। गहिनीनाथजी की तपोभूमि गोदावरी नदी के उद्गम के निकट ब्रह्मगिरि स्थान पर कही जाती है। यह ब्रह्मगिरि नासिक के निकट त्र्यम्बकेश्वर से सट कर सह्याद्रि की पहाड़ियों पर स्थित है। निवृत्तिनाथ के पिता विट्ठल पँत पैठण से

चार कोस की दूरी पर, गोदावरी के तट पर आपे गाँव में रहते थे। उनके तीन पुत्र निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर सोपानदेव और पुत्री मुक्ताबाई थी। विट्ठलपंत ने चैतन्याश्रम नाम से सन्यास का वरण किया था, पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। तत्कालीन समाज ने सन्यासी के गृहस्थाश्रम में लौटने का विरोध किया। विट्ठल पंत समाज के विरोध से दुःखी होकर सपरिवार त्र्यम्बकेश्वर में निवास कर अनुष्ठान करने लगे। वे रात में कुशावती में स्नान कर ब्रह्मगिरि की सपरिवार परिक्रमा करते थे। एक दिन रात में परिक्रमा करते समय विट्ठल पन्त के ज्येष्ठ पुत्र निवृत्तिनाथजी रास्ता भूल गये और अपने पिता और भाइयों तथा बहन से अलग-थलग पड़ गये। माता-पिता और सभी लोग आगे बढ़ गये। दैवयोग से मार्ग में एक बाघ दहाड़ने लगा। साथ के लोग निवृत्तिनाथ की ओर ध्यान न दे सके। निवृत्तिनाथजी संयोग से अंजनी पर्वत की एक गुफा में पहुँच गए। उन्होंने गुफा में तप करते हुए एक योगी का दर्शन किया। वे योगी कोई और नहीं, साक्षात् महायोगी गहिनीनाथ थे, उनके साथ दो शिष्य भी उनकी सेवा में तत्पर थे। गहिनीनाथ के शीश पर जटा थी। कान में कुण्डल और कंठ में सेली, हाथ में सिंगी पुंगी थी। निवृत्तिनाथ की अवस्था उस समय १२-१३ वर्ष की रही होगी, क्योंकि १३३० वि. में उनका जन्म हुआ था। १३५४ वि. में उन्होंने ब्रह्मलीनता प्राप्त की। बालयोगी के रूप में निवृत्तिनाथ को देखकर गहिनीनाथजी प्रसन्न हो उठे और उन्होंने उन्हें महावाक्य-महायोगज्ञान का उपदेश दिया। निवृत्तिनाथजी उनके चरण पर साष्टांग लेट गये। महाराज ने उन्हें दीक्षित कर श्रीकृष्ण की उपासना करने का आदेश दिया। गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को ब्रह्मसुखरूप अमृत में निमग्न कर दिया। उन्हें श्रीकृष्ण मन्त्र प्रदान किया। गहिनीनाथ ने उन्हें

श्रीकृष्णभक्तिमयी नाथयोगसाधना के प्रचार का आदेश दिया। निवृत्तिनाथ ने स्वीकार किया है-आदिनाथ ने उमाबीज प्रकट किया। अपनी सहज स्थिति में उसे मत्स्येन्द्रनाथ ने प्राप्त किया। इस प्रेममुद्रा में गोरखनाथजी ने प्रवेश किया। गहिनीनाथजी ने पूर्ण कृपा की। वे वैराग्य में तप उठे और शान्ति और सुख में विभोर होकर पृथ्वी पर विचरण करने लगे। उनके हृदय में सुखानन्द स्थित हो गया। वे वैराग्यसम्पन्न हो उठे। निवृत्तिनाथ पर गहिनीनाथजी ने कृपा की। कृष्णनाम प्रदान किया। कुल पवित्र हो गया।

महायोगी गहिनीनाथ ने अपनी प्रसन्नता से पूर्ण अनुग्रहीत किया। शिवदीन नाथ का कथन है कि निवृत्तिनाथ ने गहिनीनाथ को गुरुरूप में वरण कर प्रसादयुक्त कलश का तत्वबोधामृत प्राप्त किया। ज्ञानेश्वर मोक्ष-पद में स्थित हो गये।

महायोगी गहिनीनाथ की कृपा से निवृत्तिनाथ और ज्ञानेश्वरने महाराष्ट्र में नाथयोग के माध्यम से भगवद्भक्ति के अमृत-समुद्र से लोकमानस को रससिक्त किया।

विक्रमीय १८वीं और १९वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध रणसेनानी और कुशल प्रशासक ग्वालियर के महादजी सिन्धिया के समकालीन नाथयोगी महात्मा सोहिरोबा नाथ का नाम महाराष्ट्र के संत योगियों में अग्रगण्य है। ऐसा कहा जाता है कि महायोगी गहिनीनाथ ने प्रकट होकर उन्हें भी नाथयोगज्ञान से कृतार्थ किया था और मन्त्र-दीक्षा देकर अपना शिष्य स्वीकार किया था। गोमन्त-गोवा प्रदेश में सिद्ध सोहिरोबा नाथ का बड़ा नाम है। उनका जन्म १७७१ वि. में हुआ था। एक बार वे वन के बीच से कहीं जा रहे थे, वन सायँ-सायँ कर रहा था। भूख लगी थी। पास में कटहर के फल थे। वे कटहर फोड़कर खाने ही जा रहे थे कि उन्हें एक

महात्मा का दर्शन हुआ। योगी ने उनसे कुछ खाने को माँगा। उन्होंने कटहर के चार फल-कोआ दे दिये। योगी का अंग भस्मोद्धूलित था, वे दिव्य पुरुष थे, साक्षात् महात्मा नाथयोगी गहिनीनाथ थे। गहिनीनाथ ने सोहिरोबानाथ को दीक्षा दी।

महायोगी गहिनीनाथ ने एक अभंग में उद्गार प्रकट किया है कि चाहे आकाश फट जाय, मेरु भयंकर चीत्कार करे, फिर भी मधुर आत्मसुखामृत का त्याग नहीं करना चाहिये। चाहे भयंकर वायु बहे, ब्रह्माण्ड सूख जाय पर आत्मनिष्ठ साधक को अपनी समाधि भंग नहीं करनी चाहिये।

नाथसिद्ध महायोगी गहिनीनाथ ने ब्रह्मसुख और आत्मज्ञानामृत के रसास्वादन पर बड़ा बल दिया। वे परम भागवत, नाथपंथीय विचार-धारा के महान् दार्शनिक और परम कारुणिक-तपोनिष्ठ महात्मा के रूप में अमर-सिद्धकाय सद्गुरु हैं।

6. हरिनारायण

भर्तृहरिनाथ

योगिराज भर्तृहरि को प्रेमदास ने "नाथसिद्धों की वन्दना" में ब्रह्मरस का भोगी कहा है।

नमो भरथरी जोगी ब्रह्मरस भोगी।

(नाथसिद्धों की बानियाँ-४)

योगिराज भर्तृहरि वैराग्य के मूर्तरूप थे। उनके नाम का स्मरण होते ही मन में संसार के प्रति अनासक्ति का भाव पैदा होता है। उन्होंने स्वर्गीय भोगों और विषय-विलासों पर लात मार कर महायोगेश्वर भगवान शिव के चरणदेश में अपने आपको समर्पित कर दिया। उन्होंने योग और वैराग्य के माध्यम से अमरपद प्राप्त किया। उन्हें राजप्रासाद के वैभव, पिंगला ऐसी परम रूपमयी पटरानी के सौन्दर्य और नित्य-नवीन यौवन, चक्रवर्ती सम्राट के अधिकारी अपनी ओर आकृष्ट न कर सके। उन्होंने आत्मसाक्षात्कार का पूर्ण परमानन्दपद प्राप्त कर लिया। उनकी वैराग्य-विज्ञप्ति है कि विषय-भोग में रोग, कुल में च्युति, धन में राजा, मौन में दैन्य, बल में शत्रु, रूप में जरा (बुढ़ापा), शास्त्र में वाद, गुण में खल और शरीर में मृत्यु का भय है। समस्त वस्तुएँ भय उत्पन्न करने वाली हैं, एकमात्र केवल वैराग्य ही अभय है।

योगिराज भर्तृहरि नवनाथों में से एक स्वीकार किये गये हैं। वे उच्चकोटि के नाथसिद्ध योगी थे। यह कहना बहुत ही कठिन है कि योगिराज भर्तृहरि किस शताब्दी में विद्यमान थे। उनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथा परम्परागत शोध के सन्दर्भ से पता चलता है कि

प्रत्येक स्थिति में विक्रमीय आठवीं-नवीं शती से पहले थे और यह भी सच है कि उन्हें महायोगी अभिनव शिव गोरखनाथ की, जो अमर स्वीकार किये जाते हैं, प्रत्यक्ष योग-दीक्षा प्राप्त थी, गोरखनाथजी कालातीत हैं, उन्होंने भर्तृहरि को योगोपदेश देकर उन्हें अपना शिष्य बनाया था। दूसरी संभावित बात यह है कि उन्होंने पिंगला ऐसी रूपवती नारी के असत् सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। तीसरी निश्चित-सी बात यह है कि वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड), शतकत्रय आदि की उन्होंने रचना की। ''भर्तृहरि निर्वेद'' नाटक के रचयिता हरिहर ने उन्हीं का चरित्र अपने नाटक में निरूपित किया है। गोपीचन्द नवोंनाथों में से एक कहे गये हैं। यह प्रचलित मान्यता प्रायः सत्य ही है कि उनकी माता मयनावती महाराजा (योगिराज) भर्तृहरि की बहन थीं। भर्तृहरि का ज्ञानयोगी के रूप में मध्यकालीन साहित्य में महत्वांकन ''पदमावत'' में मलिक मुहम्मद जायसी ने किया है।

चीनी यात्री इत्सिंग ने भर्तृहरि की विद्वत्ता के सम्बन्ध में अपने भ्रमण वृत्तान्त में जो प्रकाश डाला है, उससे ऐसा लगता है कि योगिराज भर्तृहरि विक्रमीय सातवीं शती से पहले विद्यमान थे। इत्सिंग विक्रमीय सातवीं शती के दूसरे चरण से विक्रमीय आठवीं शती के प्रायः तीसरे चरण की अवधि में बौद्ध धर्मावलम्बी देशों का भ्रमण करता रहा। उसने नालन्दा विश्वविद्यालय में भी कुछ समय तक निवास किया था। उसने लिखा है कि धर्मपाल नालन्दा के प्रकाण्ड पंडित थे। प्रसिद्ध कवि एवं दार्शनिक भर्तृहरिकृत भर्तृहरिशास्त्र, पातञ्जल भाष्य की टीका तथा वाक्यपदीय नालन्दा में पढ़ाये जाते थे। भर्तृहरि की ३००० श्लोकों वाली एक कृतिपर धर्मपाल ने १४००० श्लोकों में टीका लिखी है, इत्सिंग ने लिखा है

कि मेरे आगमनकाल से चालीस साल पहले ही भर्तृहरि का शरीर शान्त हो गया। शरीर के शान्त होने का अभिप्राय है अदृश्य होना, क्योंकि भर्तृहरि को इसी शरीर से अमरस्वीकार किया जाता है, उन्हें सन्-सम्वत् की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। वे समय-समय पर अपने अमर शरीर का दर्शन देते रहते हैं। वे सिद्धदेहप्राप्त जीवन्मुक्त महायोगी के रूप में सम्मानित हैं। यह नितान्त असंदिग्ध है कि वे व्याकरणशास्त्र के भी महान् तत्वज्ञ थे। गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह में भर्तृहरि और शेषावतार नागेश का संवाद वर्णित है। उससे भी इस तथ्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उसमें उल्लेख है कि एक समय की बात है, महाराज भर्तृहरि ने, जो महासिद्ध विचारनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं, व्याकरणशास्त्र पर एक लाख कारिकाओं की रचना की। नागेश ने उन्हें सुना, वे ब्रह्माण्ड में विचरण करते हुए वहाँ आये, जहाँ वे महान् अवधूत भर्तृहरि विराजमान थे। उन्होंने भर्तृहरि से वरदान माँगने को कहा। महासिद्ध भर्तृहरि ने कहा कि मुझे आप से मिलने से सुख मिला है। मुझे किसी वस्तु की अपेक्षा-चाह नहीं है। क्या माँगू? यदि ऐश्वर्य की इच्छा हो, महाराज्य का त्याग कर मैं अवधूत हो गया। यदि मोक्ष की प्राप्ति की कामना हो तो अवधूत-भाव में सिद्ध ही हो जायेगी। इसपर नागेश ने शाप दिया। भर्तृहरि ने भी शाप दिया कि तुम्हारे द्वारा रचित व्याकरणशास्त्र कलियुग में वृत्ति के लिये ही होगा। जहाँ कहीं संशय होगा, मेरी कारिकाओं के बिना निर्णय नहीं होगा।

भर्तृहरि की विशिष्टता के सम्बन्ध में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि उनके गुरु योगेश्वर गोरखनाथ थे। इस बात की पुष्टि हरिहरकृत "भर्तृहरि निर्वेद" नाटक से हो जाती है। रचयिता ने गोरखनाथजी को योगिराज भर्तृहरि का गुरु बताया है। योगी भर्तृहरि की सबदी

में भी साक्षात् भर्तृहरि ने स्वीकार किया है कि मैंने सद्गुरुदेव के शब्द से सिद्धयोगमार्ग में साधना कर सिद्धि प्राप्त की।

महायोगी गोरखनाथजी ने अपनी सबदी में उपर्युक्त सत्यता व्यक्त की है, उन्होंने राजा भर्तृहरि (भरथरी) और गोपीचन्द के सन्दर्भ में कहा है कि दानों गुरु के उपदेश — शब्द-प्रकाश में सुख-दुखरूप द्वन्द्वों में विमुख होकर योगज्ञान से परम पद में प्रतिष्ठित हो गये।

उपर्युक्त उद्धरण का आशय यह है कि भर्तृहरि ने निर्भय स्थिति— वैराग्यपद में परमात्मयोग प्राप्त किया। राजा गोपीचन्द ने ब्रह्म का साक्षात्कार किया।

योगिराज भर्तृहरि का पवित्रनाम वैराग्य का ज्वलन्त प्रतीक है। वे त्याग, वैराग्य और तप के प्रतिनिधि थे। हिमालय से कन्या अन्तरीप तक के भूमिभाग में उनकी पद्यबद्ध जीवनगाथा भिन्न-भिन्न भाषाओं में योगियों और वैरागियों द्वारा एक निश्चित काल से गायी जा रही है। भविष्य में भी यही क्रम बहुत दिनों तक चलता रहेगा। उन्होंने विषयसुख का पूर्ण भोग करने के बाद वैराग्य के असीम राज्य में प्रवेश किया था। उनकी कथनी-करनी समान थी। वे निस्सन्देह महात्मा थे, उन्होंने जीवन के अनुभव की बातें कही हैं। योगिराज भर्तृहरि ने योगेश्वर गोरखनाथजी द्वारा प्रवर्तित वैराग्य पंथ के सिद्धान्तों के विकास में बड़ा योग दिया। वे गोरखनाथी के योगसम्प्रदाय में उन्हीं के द्वारा दीक्षित थे। मालव प्रदेश में भगवती शिप्रा के अचल में कविता, कला और संगीत की दिव्य आनन्दमयी सरस भूमि उज्जयिनी में महाराजा भर्तृहरि ने जन्म ग्रहण किया था। उनके पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ, जनश्रुतियाँ और परम्परागत मान्यतायें प्रचलित हैं, जिनके

समन्वयात्मक अध्ययन से यह सिद्ध हो जाता है कि उनके पिता का नाम गन्धर्वसेन अथवा चन्द्रसेन था। चन्द्रसेन ने दो विवाह किये थे। उनकी पहली पत्नी से भर्तृहरि और दूसरी पत्नी से विक्रम थे, जिन्हें विक्रमादित्य कहा जाता है। महाराजा भर्तृहरि चक्रवर्ती नरेश थे। एक सौ आठ राजा और अधिराजा उनके चरणदेश में नतमस्तक थे।

भर्तृहरि के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित एक कथानक 'भर्तृहरि निर्वेद' नाटक के सन्दर्भगत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ से निरूपित यह है कि अवध में भगवती के तट पर सरयू के तट पर अरण्यस्थल में एक रूपवती स्त्री को देख कर मित्रा वरुण देवता का रेतपात हो गया। देवता ने एक खेत में मिट्टी कर पात्र —भर्थुवा देखकर उसमें रेत स्थापित किया और उसमें एक वृक्ष के कोटर में रख दिया योगेश्वर हरिनारायण के सूक्ष्म शरीर ने इस रेत में प्रवेश किया। इसने भर्तृहरि के रूप में जन्म लिया। ठीक इसी समय एक हरिणी को बच्चा हुआ। वह भरथरी (भर्तृहरि) को दूध पिला कर पालने लगी। एक व्यापारी जयसिंह भट्ट और उसकी पत्नी ने पड़े बच्चे को गोद में उठा लिया। धन के लार्भि से चोरों ने दम्पति को मार डाला। व्यापारी-दल के साथ भर्तृहरि उज्जयिनी-उज्जैन पहुंचे। संध्या हो गयी थी। नगरी के रक्षक विक्रम थे। बालक भर्तृहरि ने बतलाया कि आज रात नगर में प्रवेश करने वाले एक राक्षक को मार कर उसके खूने से अपना तिलक करने वाला इस नगरी का राजा होगा। विक्रम ने राक्षस का वध किया। राजा की पुत्री मयनावती ने विक्रम को राजा बनाया। विक्रम ने भर्तृहरि को अपना धर्मभाई बनाया। विक्रम भर्तृहरि को राजकार्य सौंपकर ईश्वर के भजन में लग गये। भर्तृहरि की रानी पिंगता थी। एक समय भर्तृहरि ने हरिण

का शिकार में वध किया। हरिणियाँ उनके पीछे लग गयीं। श्रीगोरखनाथजी तोरणमाल पर्वत से नीचे उतरे, कहा जाता है कि वह हरिण नहीं, गोरखनाथजी का शिष्य था। हरिण के वेश में रहता था। प्राणान्त होने के समय हरिण ने कहा कि मेरे पैर (की गति) चोर को प्राप्त हों, जिनकी सहायता से वे तेजी से भाग कर अपना प्राण बचा सकें। मेरी सींग योगी को दे दी जाय, जिससे वह अपने लिये नादयन्त्र का काम ले, मेरा चर्म तपस्वी को दें दिया जाय, जिस पर वह आसन लगा कर साधनों में तल्लीन रहे। मेरे नेत्र रमणियों को प्रदान किये जाये, जिनसे वे मृगनयनी कही जायें। गोरखनाथजी ने भर्तृहरि पर दोष लगाया कि तुमने मेरे शिष्य का वध कर दिया। उन्होंने भर्तृहरि की प्रार्थना पर थोड़ी-सी मिट्टी उस मृत हरिण पर छिड़क दी। उनके आशीर्वाद और योगशक्ति से उसमें प्राण का संचार हो गया। यह वृत्तान्त 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' में वर्णित है। अतएव यह निर्विवाद है कि अपनी योगसिद्धि से करुणावतार महायोगी गोरखनाथजी ने उसे जीवित कर दिया। भर्तृहरि ने शिष्य होने की इच्छा प्रकट की। श्रीगोरखनाथजी की प्रेरणा से भर्तृहरि ने रानी पिंगला से कहा कि तुम्हारे पातिव्रत का विश्वास होने पर मैं शिष्य बन सकता हूँ। पिंगला ने कहा कि पति की मृत्यु के साथ ही जिसकी मृत्यु हो जाय, वही पतिव्रता है। भर्तृहरि ने परीक्षा ली। शिकार में गये। खून से कपड़ा रंग कर महल में भिजवा दिया। रानी को विश्वास हो गया कि सिंह ने राजा के शरीर को अपना ग्रास बना लिया। उसके प्राण निकल गये। भर्तृहरि के लिए अपनी प्राणप्रियता का वियोग असह्य हो गया। वे रात-दिन श्मशान में निवास कर उसका स्मरण करने लगे। महायोगी गोरखनाथजी ने योगमाया प्रकट की। अपनी मिट्टी की डिबिया

पटक कर रोने लगे। भर्तृहरि ने समझाया कि मिट्टी का पात्र मिट्टी है। इसके लिये रोना कैसा। इच्छा हो तो सोने का पात्र बनावा दूँ। श्री गोरखनाथ ने कहा कि तुम ऐसा नहीं कर सकते, पर मैं तुम्हारी स्त्री को जीवित अवस्था में तुम्हारे समने प्रकट कर सकता हूँ। उन्होंने पिंगलायें प्रकट की भर्तृहरि ने कहा कि जिस योगविद्या से अनेक पिंगलायें प्रकट हो सकती हैं, उसे ही ग्रहण करना श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर उन्होंने गोरखनाथजी से योगदीक्षा ली। इस कथा का उद्देश्य पिंगला का निर्दोष जीवन-चरित्र ही प्रकट करना मात्र है, जिसकी अश्वशाला के दरोगा--निरीक्षक में आसक्ति से चक्रवर्ती सम्राट् भर्तृहरि को राज्य का परित्याग कर योग का वरण करना पड़ा था।

भर्तृहरि के पिता गन्धर्वसेन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनका विवाह ताम्रसेन की कन्या महेन्द्रलेखा से हुआ था, जिससे उत्पन्न पुत्र का नाम विक्रम था। मालिनी दासी से भर्तृहरि की उत्पत्ति कही जाती है। जैन साहित्य की परम्परा में मेरुतुंग के प्रबन्धचिन्तामणि (१३०४ ई०) में तथा विक्रमचरित में उल्लेख है : भानु विजय मुनि के विक्रमप्रबन्धरास के अनुसार कंचुनपुर के हेमरथ राजा तथा हेममाला रानी की पुत्री के पुत्र गन्धर्व सेन थे। वे बड़े सुन्दर थे, उन्हें देखकर स्त्रियाँ मतवाली हो जाती थी। राजा ने उन्हें निर्वासित कर दिया। गन्धर्वसेन ने वन में निवास कर योगसिद्धि प्राप्त की। वे हेमवर्धन नगर में पहुेच। वहाँ के राजा रत्नसेन और रत्नावती ने अपनी पुत्री का विवाह गन्धर्वसेन से कर दिया। गन्धर्वसेन की एक पहली रानी का नाम रूपसुन्दर था। उससे भर्तृहरि पैदा हुए, पद्मावती के गर्भवती होने पर रत्नसेन को ज्योतिषियों ने बताया कि तुम्हारा उत्तराधिकारी पद्मावती का पुत्र होगा। राजा ने उसको

बुलवाया और होने वाले पुत्र को मारना चाहा। पद्मावती की परिचारिका चंदा मालिन ने आश्वासन दिया कि मैं तुम्हारे पुत्र को पहले सही ले जाऊंगी और उसका पालन-पोषण करुंगी। वह उसे उज्जैन ले गयी। अब तक भर्तृहरि वहाँ के राजा था। पद्मावती का पुत्र विक्रम, जो भर्तृहरि का सौतेला भाई था, उज्जैन का राजा हुआ। एक दूसरा आख्यान यह भी उपलब्ध होता है कि गन्धर्वसेन की दो रानियाँ थी। उनके नाम थे धीमती और श्रीमती। धीमति के पुत्र का नाम भर्तृहरि था और श्रीमती के पुत्र परम शैव विक्रम थे। भर्तृहरि की पत्नी का नाम पिंगला था। पिंगला के पर पुरुष में आसक्त होने पर भर्तृहरि जो पहले से ही योगी के सम्पर्क में थे, राज्य का त्याग कर योगी हो गये।

महाराजा भर्तृहरि के योगवरण के सम्बन्ध में यह मत परम्परा से मान्य होता चला आ रहा है कि राजकार्य-संचालन में उन्हें छोटे भाई विक्रम से बड़ी सहायता मिलती थी। विक्रम के सबल कन्धों पर शासन का भार रख कर वे निश्चिंत होकर भोग विलास में मग्न थे। वे अपनी पटरानी सामदेवी अथवा पिंगला के सौन्दर्य पर रीझकर पूर्ण विलासी हो गये थे। राज्य पर शत्रुओं के आक्रमण का भय उत्पन्न होने पर भी अपनी विलास-प्रियता से क्षणमात्र के लिये भी विमुख न हो सके। वे पिंगला को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। उनके छोटे भाई विक्रम कभी नहीं चाहते थे कि पिंगला के वश में रहकर भर्तृहरि राज-कार्य से उदासीन रहें। उन्होंने मनाने का प्रयत्न किया, पर भर्तृहरि ने उनकी बात अनसुनी कर दी। विक्रम ने उनकी विलासी मनोवृत्ति के प्रति विद्रोह किया। इसी बीच में एक विचित्र घटना का उन्हें पता लगा कि पिंगला अश्वशाला के अध्यक्ष —निरीक्षक (दरोगा) में आसक्त है। उन्होंने भर्तृहरि को सचेत करना चाहा, पर पिंगला के

कहने पर उन्होंने विक्रम को राज्य से बाहर कर दिया।

नित्य प्रति भर्तृहरि की आसक्ति पिंगला में बढ़ती ही गयी। यौवन के वसन्त का विहार होता ही रहा। महाराजा भर्तृहरि की शृंगार-पिपासा में किसी प्रकार का अभाव नहीं था पर कभी-कभी उनका मन चिन्तित हो उठता था कि संसार नश्वर है, अनित्य है, दुःखालय है, इसके समस्त पदार्थ बन्धनकारी है। निस्सन्देह संसार और उसके पदार्थों से परे भी किसी की सत्ता है, जो शाश्वत शान्ति और परमानन्द की निधि है। यही जीव का परम ध्येय है।

भर्तृहरि के जीवन पर अमर फलवाली घटना का असाधारण प्रभाव पड़ा। एक बार घोर तप के परिणामस्वरूप एक योगी ने दैव कृपा से अमरफल की प्राप्ति की। उस को खाने पर शरीर में यौवन का कभी क्षय नहीं होता और शरीर अमर हो जाता है। योगी ने सोचा कि इस फल के एकमात्र अधिकारी महाराजा भर्तृहरि है। उनके अमर जीवन से प्रजा शाश्वत शान्तिपूर्ण राज्य-सुरक्षा का अनुभव करेगी। योगी ने राजप्रसाद में प्रवेश किया। उसके हाथ में अमरफल था। शृंगार तथा भोग, विलास और वैभव के वातावरण में वैराग्य, तप और त्याग में मूर्तरूपी योगी को देखकर राजा विस्मित हो उठे। उनका विवेक जाग उठा। योगी ने अमरफल दिया। योगी ने जाने पर राजा ने सोचा कि पिंगता तो मेरे लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय है, इसलिये इस फल का पात्र वही है। रानी ने अमरफल लेने पर मन में विचार किया कि अश्वशाला का अध्यक्ष मुझे बहुत चाहता है। उसके अमर होने पर विशेष सुख और शान्ति की प्राप्ति होगी। अश्वशाला के अध्यक्ष को पिंगला ने छिपे रूप में अमरफल दे दिया। अश्वशाला का अध्यक्ष एक वेश्या में आसक्त था। उसने वेश्या को अमरफल दे दिया। वेश्या ने विचार किया कि मेरा शरीर

वैशयिक सुख में आबद्ध है। मैंने आज तक पाप-ही-पाप किये हैं। दूसरों की कामवासना की शान्ति में मैं आज तक सहायक बनी रही। मेरे अमरफल खा लेने से असंख्य जीव पतित होंगे। अगणित जन पाप के भागी होंगे। महाराजा भर्तृहरि प्रजापालक हैं उनके राज्य में सुख और शान्ति है। अमरफल खाने का अधिकारी वे ही हैं। वह राजप्रासाद की ओर चल पड़ी। राजसभा में उसके उपस्थित होने से स्तब्धता छा गयी। वेश्या ने स्वाभाविक ढंग से निवेदन किया कि महाराज! यह अमरफल है। राजा ने अमरफल पहचान लिया। उन्होंने वस्तुस्थिति का ठीक तरह पला लगाया पिंगलारूपी नागिन का भीषण रूप उनके नयनों में नाच उठा। राजप्रसाद के वैभव उन्हें काटखाने लगे। शरीर के रोम-रोम में भयानक वेदना होने लगी। आंखों के सामने अन्धकार छा गया। वे कल्याण-मार्ग का चिन्तन करने लगे। उन्होंने विचार किया कि जीवहिंसा से निवृत्त रहना, परधन-हरण से दूर रहना, सत्य बोलना, समय पर यथाशक्ति दान देना, पर स्त्री की चर्चा में मौन रहना, तृष्णा के प्रवाह को रोक लेना, विनम्र रहना, प्राणीमात्र के प्रति दया करना, शास्त्रचिन्तन करना और नित्य नैमित्तिक श्रेयस्कर कर्म का आचरण करना ही वास्तविक कल्याण का पथ है -

उनके मन में पिंगला के प्रति पूर्ण अनासक्ति का उदय हुआ। उन्होंने अपने मन को समझाया कि भगवान् शिव ही प्रेमास्पद हैं। उन्होंने कहा कि हे चित्त! मोह को छोड़ दो। जिनके मस्तकपर अर्धचन्द्र शोभित है, उन भगवान् शिव से प्रेम करो। गंगातट के वृक्षों के तले विश्राम करो। तरंगे, पानी के बुलबुले, बिजली की चमक अग्नि की शिखा, सर्प और नदी के प्रवाह की तरह स्त्री भी क्षणस्थायी है। इन सभी वस्तुओं में आसक्त न होकर वैराग्य के पथ

पर योगी होकर रहना चाहिये।

उन्होंने अपने चित्त को स्थिर समाधि में प्रवेश करने की सत्प्रेरणा दी। उन्होंने समझा लिया कि वास्तविक शान्ति का पथ वैराग्य है, मैंने आज तक नश्वर सुखों और वस्तुओं में अपना जीवन खो दिया। मैंने वह कार्य नहीं किया, जिसके लिये संसार में जनम लिया। मैंने पिंगला को अपने प्राणों से भी प्रिय समझा, पर वह मुझ से अनासक्त होकर दूसरे के प्रेमपाश में आबाद्ध हो गयी। विचित्र तो यह है कि वह दूसरा किसी और में आसक्त था। पिंगला को धिक्कार है, मुझे धिक्कार है, उस दूसरे पुरुष को धिक्कार है ओर काम को धिक्कार है।

महाराजा भर्तृहरि ने विवेकपूर्णक आत्मसम्बोन्धन किया कि जिसकी विषयभोगइच्छा-निवृत्ति हो गयी, लोगों की दृष्टि में जिसका सम्मान भी न रह गया, जिसके समवयस्क मित्र स्वर्गवासी हो गये, जिसके मित्र भी नहीं रह गये, जो स्वयं छड़ी के सहारे उठता है, जिसके नेत्र में ज्योति भी नहीं रह गयी, उस (मनुष्य—) शरीर को धिक्कार है, जो अपने मरण से शंकित नहीं है। बहुत समय से सेवित विषय-भोग छूटेंगे, उनके वियोग में रञ्जमात्र भी संशय नहीं है। मनुष्य को चाहिये कि इन्हें पहले ही त्याग दे, क्योंकि स्वतः छोड़ने पर वे मन को बहुत संतापित करेंगे और जो इन्हें स्वयं त्याग देगा, वह परम शान्ति मय सुख प्राप्त करेगा।

भर्तृहरि ने मन में विचार किया कि जबतक अपना शरीर पुष्ट और स्वस्थ है, इन्द्रियों में शक्ति है, आयु भी जरा- (बुढ़ापा) ग्रस्त नहीं हैं, तबतक बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि अपने कल्याण का अच्छी तरह यत्न कर ले। घर में आग लगने पर कूप खोदना व्यर्थ होता है।

भर्तृहरि ने वैराग्य लेने का दृढ निश्चय कर लिया। राजप्रसाद में हाहाकार मच गया। बड़े-बड़े विद्वानों और राजनीतिज्ञों ने वैराग्य की ओर से उनका मन फेरने का प्रयत्न किया पर भर्तृहरि अपने संकल्प में अटल थे। महारानी पिंगला लज्जा और विषाद से काँप रही थी। उसने कहा कि 'प्राणनाथ। मैं आप के बिना जीवित नहीं रह सकती।' महाराज भर्तृहरि ने पिंगला को समझाया, माता! तू मेरी माता है। मेरे वैराग्य में सहायक होना तेरा धर्म है। पुनीत कर्तव्य है। शुभ कार्य में बाधा नहीं उपस्थित करनी चाहिये। भर्तृहरि इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि योगसाधना और वैराग्य के पथ में स्त्री सब से बड़ा बन्धन है। वे स्वर्णिम राजप्रसाद से बाहर निकल पड़े। राजा ने योगामार्ग की जीवनयात्रा की। वे योग के सर्वश्रेष्ठ पथपर—योगिराज के पद पर शोभित हो उठे।

योगिराज भर्तृहरि ने महाकाल परम शिव का स्तवन किया। भगवती शिप्रा के तटपर शिव-शिव कहते हुए वे अपने राज्य की सीमा से बाहर हो गये। महायोगी योगसिद्ध गोरखनाथ से दीक्षा ली, नाथयोग की साधना में प्रवृत्त हो गये।

स्वर्ण के अलंकारों से परिशोभित होने वाले शरीर में जटा, भस्म, मेखला, श्रृंगी, रुद्राक्ष, कन्था और कुण्डल से उन्होंने अपना योग-श्रृंगार किया। वे पवित्र क्षेत्रों, गिरिकन्दराओं और सघन वनों में रहने लगे। उनकी रसना शिव के पवित्र नाम-उच्चारण से धन्य हो गयी। उनके अधरों पर शिवनामामृततरगिणी का नृत्य होने लगा। उन्होंने आत्मा के अभिन्न स्वरूप परमशिव का साक्षात्कार किया। उन्होंने ब्रह्मानुभूति प्राप्त की। योगिराज भर्तृहरि ने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि आशा नाम की एक नदी है, उसमें मनोरथरूपी जल भरा है, वह तृष्णारूपी तरंगों से पूर्ण है। प्रीति ही उसमें ग्राह—मगर है।

अनेक तर्क ही उसमें पक्षी है। वह धर्मरूपी वृक्ष को ढाहने वाली है। उसमें मोहरूपी भौंरे हैं, इससे वह दुस्तर है, चिन्ता ही उसके तट हैं। उसके पार होकर मननशील योगी आनन्दित होते हैं। योगिराज भर्तृहरि ने अपने आपको धिक्कारा कि विषयों को हमने नहीं भोगा है, उन्होंने हमी को भोग ड़ाला है ; हमने तप नहीं किया, तपों ने ही हमें तप डाला है; कल का अन्त नहीं हुआ, उसी ने हमारा अन्त कर डाला है। हम जीर्ण हो चले पर तृष्णा का अभाव नहीं हुआ।

भर्तृहरि ने कहा कि मैंने योगसाधना में सिद्धि सद्‌गुरु के उपदेश को जीवन में उतारने पर ही प्राप्त की है, इस सम्बन्ध में गुरु गोरखनाथजी के वचन प्रमाण है। न तो मेरे मन में कामिनी के प्रति राग है और न मुझे राज्यसुख की अपेक्षा है। ज्ञान ही हमारा खजाना है और मन और पवन ही हमारे हाथी-घोड़ा है।

योगिराज भर्तृहरि ने शिवतत्वामृत का रसास्वादन किया। ज्ञानोदय ने उन्हें शिव के रूप में शान्ति का अधिकारी बनाया। संसार के आघात-प्रतिघात से दूर रहकर उन्होंने परमशिव की उपासना की। वैराग्य का अद्‌भुत सागर उड़ेल कर आध्यात्मिक चेतना को उन्होंने नया जीवन दिया। वे योगामृत पदमें प्रतिष्ठित हो गये।

योगिराज भर्तृहरि निरञ्जन-शून्य पद में संस्थित हो गये। उनके सिद्धान्त और साधना के परिशीलन से पता चलता है कि उन्होंने राज्य का परित्याग करने के बाद आजीवन वैराग्य की ही कठोरतम साधना की। उनके वैराग्यमय जीवन का एक उपाख्यान 'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह, में वर्णित है कि सिद्धस्वरूप भर्तृहरि अपनी इच्छा से कपोतीवत्तिका आश्रय लेकर बाजार की गलियों में दाने बीन कर चबा रहे थे, उसी समय राजा विक्रमादित्य ने उन्हें देख लिया। यद्यपि वे राजा के ज्येष्ठ भ्राता ही थे, तथापि सिद्ध रूप हो

जाने के कारण राजा ने उन्हें पहचाना नहीं, इसलिये यह कह दिया— अहो! इसकी भी कोई माता है, जिसने ऐसे पुरुष को जन्म दिया, जो अपना पेट पालने में भी असमर्थ ?' यह सुनकर सिद्ध ने कहा- 'अहो! उसकी भी जननी को धिक्कार है, जो समर्थ होते हुए भी परोपकार करने में असमर्थ है। महान् बुद्धिमान् राजा ने जब इस प्रकार का विवेकपूर्ण वचन सुना, तब वे उन परम पुरुष को अपना ज्येश्ठ भ्राता जानकार स्वतः शीघ्र ही सवारी से उतर पड़े और उसके चरणों में विनत हो गये। उस समय भर्तृहरि ने राजा को उपदेश दिया।'

योगिराज भर्तृहरि ने दसों दिशाओं और तीनों कालों में परिपूर्ण, अनन्त, चैतन्यस्वरूप, अनुभवगम्य, शान्त और तेजोमय ब्रह्मकी उपासना की। विरक्ति ही उनकी जीवन-संगिनी हो चली। महादेव ही उनके एकमात्र उपास्य देव थे। वे आशा की कर्मनासा से पार होकर भक्तियोग की भागीरथी में गोते लगाने लगे। वे शब्दविद्या के —नाद ब्रह्मकी उपासना के तत्वज्ञ महान् दार्शनिक थे। उन्होंने शब्द ब्रह्म की साधना की। उनका वैराग्यदर्शन परमात्मा के साक्षात्कार का पर्याय है। उन्होंने सप्त संष का वर्णन कहते हुए कहा कि जो योगी इसका मर्म जान लेता है, वह साक्षात् निरंजन परब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

योगिराज भर्तृहरि ने साधना के क्षेत्र में प्राणायाम पर विशेष जोर दिया। शून्य पद में रमण करने और निरंजन निराकार परमेश्वर के चिन्तन और ध्यान की सीख दी। उन्होनें योग-साधना के पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान कर लोगों को सावधान किया कि सूर्य के उदय और अस्त से जीवन क्षीण हो रहा है। विविध कार्यों के भार से गुरुतर प्रतीत होने वाले अनेक व्यापारों से समय जाता जान नहीं

पड़ता। जन्ममरणरूपी विपत्तियों को देखकर भी चित्त में भय नहीं होता। संसार मोहमयी मदिरा पीकर उन्मत्त हो गया है।

समस्त इन्द्रियजन्य विषयभोग के रसास्वादन में अनासक्त मनवाले प्राणी को ही भर्तृहरि ने योगी कहा है।

योगिराज भर्तृहरि ने महात्माओं और संतों के स्वभाव के सम्बन्ध में कहा कि जो मन, वचन और शरीर में पुण्यरूप अमृत से भरे रहते हैं, त्रिभुवन को उपकारों से तृप्त कर देते हैं और दूसरे के अल्पमात्र गुण को भी बढ़ाकर पहाड़ कर देते हैं, ऐसे हृदय में प्रसन्न रहने वाले संत विरले ही है।

जहाँ तक किसी योगमार्ग के प्रवर्तन का सम्बन्ध है, वहाँ तक यही मान्यता परम्परा से चली आ रही है कि गोरखनाथजी द्वारा स्वीकृत वैराग्य-पंथ का प्रवर्तन योगिराज भृर्तहरि ने ही किया था। वैराग्यशतक के रचियिता भर्तृहरि ही निर्विवाद रूप से इस पंथ के प्रवर्तक है। यह बात तो सर्वथा युक्तिसंगत ही है कि उनका सिद्धान्त था शैव योग का साधन-क्रम। वे महान् शिवयोगी थे, वैराग्य के मूर्तिमान् प्रतीक योगी भर्तृहरि की उक्ति है कि हे काम! तू अपने धनुष के टंकार से अपने हाथों को क्यों थकाता है। अरी कोयल! अपनी मधुमयी कोमल कलरवलहरी से वृथा बक-बक क्यों कर रही है। हे बाले! तेरे अति स्निग्ध भोले-भोले, मधुर चंचल कटाक्षों से भी अब कुछ भी नहीं हो सकता है। मेरा चित्त चन्द्रशेखर भगवान शिव के चरण-कमल के ध्यानरूप अमृत का आस्वादन कर चुका है।

योगिराज भर्तृहरि ने अपने आराध्य देव भगवान् शिव का स्तवन किया है कि जो अपनी जटा के भूषणस्वरूप चन्द्र की किरणों से समलंकृत हैं, जिन्होंने लीला-ही-लीला से चंचल

कामदेवरूप शलभ को भस्म कर दिया, जो लोक-कल्याण में निरन्तर तत्पर हैं, जो अभ्यान्तर में पहले से ही भरे हुए मोहरूपी तिमिर-अज्ञान को नष्ट करने वाले हैं, वे योगेश्वर भगवान् शिव योगियों के हृदय में ज्ञान-प्रदीपके रूप में पूर्ण प्रकाशित-अभिव्यक्त हैं।

योगिराज भर्तृहरि के वैराग्य पन्थ में ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान और वीर्य को अधोगामीन बनाकर ऊर्ध्वस्थ करने पर बड़ा बल दिया है।

भर्तृहरि का स्पष्ट निर्देश है कि योगी को भूख-क्षुधा पर विजय प्राप्त करनी चाहिये तथा निद्रा को वशीभूत करना चाहिये और स्वप्न में भी वीर्य—बिंदु का नाश नहीं होने देना चाहिये। इससे वह मृत्यु को वश में कर लेता है, बुढ़ापा उसे नहीं सताता है और वह नीरोग रहता है। यही योग है।

उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ से सम्बद्ध की है। उन्हें जालन्धरनाथ का भी शिष्य कहा गया है। महाराष्ट्रीय नवनाथ—नवयोगेश्वरों की परम्परा में उन्हें योगेश्वर हरिनारायण का रूप कहा गया है। एक स्थलपर भर्तृहरि ने अपने आप को गोरखनाथ का दास, उनके योगमार्ग का अनुगामी घोषित करते हुए योगतत्व का चित्रण किया है।

योगिराज भर्तृहरि ने नीतिशतक, श्रृंगारशतक और वैरागयशतक की रचना की। वे महायोगी होने के साथ-ही-साथ अप्रतिम साहित्य-मर्मज्ञ थे। ऐसा कहा जाता है कि 'भाट्टि का काव्य' भी महामति भर्तृहरि ही की रचना है। इस काव्य के रचयिता की स्वीकृति है कि मैंने इसको वलभनरेश श्रीधरसेन के आश्रय में लिखा।

योगिराज भर्तृहरि अमर कहे जाते हैं। उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में भित्तरी (भर्तृहरि का प्राकृत रूप) ग्राम को भर्तृहरि की

तपोभूमि कहा जाता है। उन्होंने उज्जयिनी से आकर यहाँ तप किया था। उनकी गुफा का भी इसी जनपद में निर्देश किया जाता है। उत्तरप्रदेश के ही (चरणाद्रि) चुनार के किले में उनका मन्दिर तपःस्थल के रूप में विद्यमान है। महाराज मानसिंह ने अपनी 'श्रीनाथतीर्थावली' में राजस्थान में चित्तौर दुर्गके अन्तर्गत गोरक्षनाथजी की चरणपादुका से शोभित गोमुख तीर्थ का वर्णन करते हुये लिखा है कि इससे ३६ किलोमीटर की दूरी पर पुरा नाम का ग्राम है। यहाँ भर्तृहरि ने प्राचीन काल में अत्यन्त दारुण तप किया था और विघ्न के लिये आकाश से गिरती शिला को कनिष्ठा अंगुली पर छाते के समान धारण किया था। यहाँ शिवरात्रि को मेला लगता है।

यह भी मत प्रचलित है कि पंजाब के सरगोधा जनपद के 'सिद्ध करना' पहाड़ी पर उन्होंने समाधि ली थी। 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' ग्रन्थ में उल्लेख है कि पुराने उज्जैन में भर्तृहरि की गुफा में गोरखनाथ की मूर्ति के साथ गोपीचन्द की मूर्ति प्रतिष्ठित है और नीचे की गुफा मत्स्येन्द्रनाथ की स्मृति के रूप में दर्शनीय है। कहा जाता है कि इस गुफा से एक गुप्त पथ—भीतरी रास्ता वाराणसी तक गया है। सर्वसम्मत मत यह है कि भर्तृहरि की समाधि राजस्थान के अलवर राज्य के एक सघनवन में अब भी विद्यमान है। उसके सातवें दरवाजे पर एक अखण्ड दीपक जलता रहता है। उसे भर्तृहरि की ज्योति कहा जाता है।

योगिराज भर्तृहरि ने महायोगी गुरु गोरखनाथ से दीक्षित होकर सिद्ध कहलाने का सौभाग्य प्राप्त किया। उनकी शिष्य-परम्परा में सिद्ध रतननाथ की गणना की जाती है। भर्तृहरि (भरथरी) की जीवन-कथा गाँव-गाँव में योगियों द्वारा गायी जाती है। सर्वसाधारण

को उससे योगसाधना और वैराग्य की प्रेरणा मिलती है। भर्तृहरि ने लोक-मानस को जागृत कर कहा था।

समस्त विषयसुख क्षणभंगुर, हैं, यह जान कर निरुपम सुख की प्राप्ति के लिये योगाभ्यास करना चाहिये। हे ज्ञानियो! शब्द-स्पर्श-रूपरस और गन्ध-जन्य इन्द्रियविषयक भोग उसी तरह चंचल और क्षणिक हैं, जिस तरह मेघसमूह में चंचल दामिनी चमकती और नष्ट हो जाती है। भोग विद्युत के समान चंचल है इसी तरह आयु—जीवन द्वारा विघट्टित बादल में स्थित जलकण के समान विनश्वर है। प्राणियों की यह लालसा कि यौवन सदा बना रहे, चंचल है। इन सब बातों की अच्छी तरह विचार कर यथाशीघ्र धैर्यसमाधियुक्त प्रयासपूर्वक योगसाधना में ही लग जाना चाहिये।

भगवान् सदाशिव की भक्ति हो, हृदय में जन्म-मरण का भय न हो, बन्धुओं के प्रति असत्-सम्बन्ध-स्नेह न हो, मन काम-विकार से रहित हो, जीवन असंग हो और एकान्त वन में निवास हो, मन में समस्त विनश्वर और असत् वस्तुओं तथा सम्बन्धों के प्रति अनासक्ति का भाव हो, तो इससे बढ़कर परमार्थ स्वरूप वैराग्य दूसरा हो ही क्या सकता है।

योगिराज भर्तृहरि की जीवन-कथा भारतीय ही नहीं, विश्व के अध्यात्म साहित्य के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। वे जीवन्मुक्त परमार्थयोगी थे। वैराग्यरस की विनिष्पन्न समाधि में स्थित योगिराज भर्तृहरि नवनाथों में नित्यमुक्त परमात्मयोगी है। वे योगसिद्ध अमर नाथयोगी है।

7. प्रबुद्ध नारायण

कानिपा नाथ

नाथयोग के महाचार्य, पण्डिताचार्य, उपाध्याय, योगसिद्धाचार्य, योगिराज कृष्णपाद (कान्हपा) आगमसम्मत तांत्रिक तथा कापालिक मतप्रतिपादित महायोगज्ञान के विशेषज्ञ होने के साथ-ही-साथ शिवगोरक्षप्रतिपादित सिद्धामृत मार्ग के महान् तत्वज्ञ थं, महासिद्ध थे, यद्यपि उनके द्वारा प्रवर्तित योगमत हेवज्रसाधना और शैवयोग-साधना का समन्वय है तथापि वह अपनी विशिष्टता के कारण नाथपंथ में 'वारमारग' के रूप में स्वीकृत है और नाथपथ के बारह वेष के अतिरिक्त वह अर्ध सम्प्रदाय के रूप में नाथयोगाचार्यों द्वारा सम्मानित हैं। उन्हें नाथमत में ही नहीं, समस्त योगिसम्प्रदाय में कानपा, कान्हपा, कान्हपाद, करणिपा काणेरीपाद आदि अनेक उपनामों से अभिहित किया गया है। संत कबीर ने कृष्णपाद का 'कनड़ापा' कह कर अपने एक पद में भर्तृहरि के सन्दर्भ मे स्मरण किया है कि जब उज्जैनी-नरेश भर्तृहरि ने यह जाना कि मुझसे पहले कनड़ापा योगी ने वैराग्यराज्य में प्रवेश कर सिद्धि प्राप्त की है, तो उन्होंने उज्जैनी का परित्याग कर योग के राज्य में प्रवेश किया।

कबीर का पद इस तथ्य का प्रकाशक है कि भर्तृहरि को योगग्रहण की प्रेरणा कृष्णपाद के जीवन से मिली और वे गोरखनाथजी को गुरुरूप में स्वीकार कर वैराग्य में अभय हो गये, अमरपद—परमपद में अनुरक्त हो गये। इसका आशय यह है कि कृष्णपाद की प्रेरणा नाथयोग के सिद्धान्तों की पोषिका थी।

विरोधिनी नहीं थी। कृष्णपाद कापालिक की अपेक्षा शैवयोगी अधिक थे, यद्यपि यह सच है कि उनकी प्रारम्भिक साधना कापालिक मत और विशेषता से तंत्रगत हेवज्रसाधना से प्रभावित थी।

'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ के सन्दर्भ में उन्हें श्रीमद्भगवत के एकादश स्कन्ध में वर्णित प्रबुद्धनारायण के रूप में नवनाथों में से एक परिगणित किया गया है। उन्होंने प्रबुद्धनारायण योगेश्वर के रूप में राजा यदु को उपदेश दिया कि संसारी मनुष्य माया के पार किस तरह जा सकते हैं। उन्होंने कहा कि भागवतधर्म का आश्रय कर मनुष्य माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है। कान्हपा अथवा कृष्णपाद के रूप में प्रकट होकर उन्होंने सिद्धमत तथा नाथयोग का रहस्य समझाया।

ऐतिहासिकता के स्तर पर कृष्णपाद आदि की योगसिद्धों के देश, काल आदि का निर्धारण नहीं हो सकता। यद्यपि कृष्णपाद गोरखनाथजी और उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, स्वगुरु सिद्ध जालन्धरनाथ और योगिराज भर्तृहरि तथा गोपीचंद के समकालीन कहे गये हैं और वे विक्रमीय दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से कही पहले से ही हठयोगसाधना अथवा नाथयोग को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करते आ रहे है, तथापि यह निर्विवाद है कि वे जीवन्मुक्त, अमरकाय और संपूर्ण ब्रह्माण्ड में कालदण्ड का खण्डन कर विचरण करते रहते हैं। हठयोगप्रदीपिका में वे सिद्धों में परिगणित हैं।

बंगला ग्रन्थ 'मीनचेतन' और 'गोरखविजय' आदि में वर्णित सिद्धों के जीवन-प्रसंगों से यही स्पष्ट होता है कि वे देशकाल की सीमा से परे हैं। यद्यपि जालन्धर को योगिराज गोपीचन्द का गुरु स्वीकार किया गया है तथापि उसकी साधना और वैराग्यपरक

यौगिक जीवन पर योगिराज कृष्णपाद का प्रभाव निर्विवाद है, इस दृष्टि से कृष्णपाद जीवनमुक्त अवस्था में विचरण करते हुए सिद्ध देह अथवा योगदेह से विक्रमीय ग्यारहवीं शतीं में विद्यमान थे, क्योंकि तिरुमलय की शैललिपि से पता चलता है कि दक्षिण के राजा राजेन्द्र चोल ने गौड़ बंगाल के राजा माणिकचन्द्र के पुत्र गोविन्दचन्द्र (गोपीचन्द) को पराजित किया था। इस बात की पुष्टि बंगला ग्रंथ 'गोविन्द्रचन्देर गान' से भी होती है कि गोविन्दचंद्र का किसी दाक्षिणात्य राजा से युद्ध हुआ था। राजेन्द्रचोल का समय १०६३ ई० से १११२ ई० है। इस दृष्टि से योगिराज़ कृष्णपाद गोपीचन्द के समय में भी उपस्थित थे। गोपीचन्द युद्ध में पराजित हुए थे या नहीं, यह संशयात्मक हैं, क्योंकि हो सकता है, कि तिरुमलय के शैल-लेख में राजेन्द्रचोल की प्रशस्ति बढ़ा-चढ़कार की गयी हो, पर यह ठीक है कि युद्ध हुआ था और यह सर्वथा मान्य है कि गौड़ बंगाल की अधीश्वर गोविन्दचन्द्र (गोपीचन्द) योगेश्वर जालन्धरनाथ और उनके शिष्य कृष्णपाद (कानपा या कान्हपा) की प्रेरणा से शैवयोग अथवा नाथयोग से दीक्षित हो गये थे, क्योंकि योगिराजेश्वर गोरखनाथ की भी गोपीचन्द पर विशेष कृपा थी। संत ज्ञानेश्वरकृत 'योगि-सम्प्रदाया-विष्कृति' ग्रन्थ में कृष्णपाद को करणिपा और कणेरीनाथ कहा गया है। 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' की परम्परा के अनुसार उनका नाथयोगी होना स्पष्ट है।

शैवयोग और मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रतिपादित सिद्धामृतमार्ग को उनसे पोषण तो मिला ही, आदिनाथ शिव के महायोगज्ञान के प्रकाश में मत्स्येन्द्रनाथ और कृष्णपाद के गुरु जालन्धरनाथ (हाड़िपा) ने योगसिद्धि समानरूप से प्राप्त की। अन्तर केवल इतना

ही परिलक्षित है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने थोड़े समय के लिये महायोगज्ञान का विस्मरण कर कौल साधना में अनुरक्त होकर योगिनी कौलमत अपनाया तो जालन्धरनाथ और उनके शिष्य कृष्णपाद हेवज्र की साधना में कापालिक मत को थोड़ा-बहुत प्रश्रय देकर नाथयोग (शैवयोग) के सिद्धान्तों के योगाचरण में तत्पर हो गये। योगिराज कृष्णपाद की नाथयोग में अभिरुचि की दिशा में इस तरह का महत्वांकन प्रत्येकदृष्टि से उपादेय है। मत्स्येन्द्रनाथजी, गोरखनाथजी, श्रीजालन्धरनाथ और कृष्णपाद के जीवन के अनेक महत्वपूर्ण प्रसंगों से उनकी समसामयिकता सिद्ध होती है। यह बात सदा स्मरणीय है कि वे कालजयी हैं। समय-समय पर सिद्ध देह से प्रकट होकर वे यौगिक शक्ति का प्रकाशन करते रहते है। ऐतिहासिक धरातल पर यह तथ्य उपलब्ध होता है कि कान्हपा के गुरु जालन्धरनाथ नाथपंथी योगी थे। ऐसा वर्णन मानिकचन्द्र के 'मयनामतीर गान' में मिलता हैं कि कृष्णपाद नाथपंथी योगी जालन्धरनाथ के शिष्य थे, इसलिये कृष्णपाद के नाथपंथी योगी होने की इस ऐतिहासिक पुष्टि में सन्देह के लिये तिलमात्र भी अवकाश नहीं है। जालन्धरनाथ नाथपंथ के बहुत प्रसिद्ध योगाचार्य थे। उनके द्वारा रचित 'सिद्धान्तवाक्य' में नाथेतेज की वन्दना में यह बात स्पष्ट होती है -

जो संसार के अन्धकार का नाश करने के लिये साक्षात् सूर्य के प्रकाश के समान है, जो समस्त सत्कर्मों में परिव्याप्त है, जो प्राणवायु का संचालक है, जो आकाश के समान निर्भर (निरालंब) है, जो मुद्रानादत्रिशूल से परिशोभित है, जो भस्मयुक्त खप्पर धारण करता है, जो, द्वैत (सकल) और अद्वैत (निष्फल) है अथवा द्वैत और अद्वैत , दोनों से परे महायोगी शंकर है, मैं उस श्रीनाथतेजस्वरूप

की वन्दना करता हूँ। गुरु की नाथस्वरूप में यह निष्ठा शिष्य कृष्णपाद की भी नाथस्वरूप में श्रद्धा और अनुरक्ति की परिचायिका है। यह स्वतः सिद्ध है कि कान्हपा अथवा कृष्णपाद शिप्रवर्तित महायोगज्ञान, नाथमत के समर्थक ही नहीं, पोषक भी थे।

योगिराज कृष्णपाद (कान्हपा) का नाम नवनाथों की सूचियों में (प्रायः सभी सूचियों में) सम्मिलित अथवा अंकित है। कान्हपा की विशिष्टता के सम्बन्ध में यह अविस्मरणीय है कि जिस तरह योगेश्वर गोरखनाथ ने मत्स्येन्द्र को योगविभूति सिद्धामृत मार्ग के अनुसार प्रचारित की, उसी तरह कान्हपा ने सिद्धकापलिक मत के परिवेश में शैव योग का पोषण कर अपने गुरु के चरणदेश में श्रद्धा समर्पित की। योगिराज कृष्णपाद यौगिक विभूतियों – सिद्धियों के स्वामी थे। योगिकसम्प्रदायविष्कृति ग्रन्थ की नवनारायण-परम्परा के सन्दर्भ में नवनाथों में कविनारायण (मत्स्येन्द्रनाथ), करभाजन नारायण (गहिनीनाथ), अन्तरिक्ष नारायण (ज्वालेन्द्रनाथ—जालन्धरनाथ), प्रबुद्धनारायण (करपिणपानाथ, कानिपा या कान्हपा), आविर्होत्र नारायण (नागनाथ), पिप्पलायन नारायण (चर्पटीनाथ), चमसनारायण (रेवानाथ), हरिनारायण (भर्तृनाथ-भर्तृहरि) और द्रुमिलनारायण (गोपीचन्दनाथ) के नामों का अंकन है। इस तरह नवनाथों में प्रबुद्धनारायण के रूप में कृष्णपाद ग्रहीत है।

उनके जीवन-दर्शन के परिचायत्मक स्तर पर यद्यपि यह कहना कठिन है कि उन्होंने किस समय में किस स्थान, परिवार अथवा कुल को अपने जन्म से गोरवान्वित किया, तथापि यह स्पष्ट है कि वे नाथयोग के सिद्धाचार्य योगिराजेन्द्र जालन्धरनाथ के शिष्य थे और पाण्डिताचार्य तथा उपाध्याय की उपाधि में समलंकृत होने में

यह स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने ब्राह्मण परिवार में शरीर धारण किया था, पर यह धारणामात्र ही है, निश्चात्मक ढंग से इस सम्बन्ध में कहना असंगत हो सकता है। यह सर्वथा निश्चित है कि वे नवनाथों में से एक थे। उनके जीवनदर्शन का अत्यन्त प्रामाणिक आधार सतयोगी ज्ञानेश्वर कृत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ भगवती परम्परा के रूप में उपलब्ध होता है, जिसमें से वे नवनारायणों में एक प्रबुद्धनारायण है। श्रीमद्भगवत पुराण के पाँचवे स्कन्ध में एक से चार अध्यायों में इस नवनारायण-परम्परा पर प्रकाश डाला गया है। स्वायंभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत थे, प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र ने पूर्वाचिति का पणिग्रहण किया। उनके नव पुत्र थे, जिनमें सर्वप्रथम नाभि थे। नाभि ने मेरु की पुत्री मेरुदेवी से विवाह किया। नाभि और मेरुदेवी की तपस्या के फलस्वरूप आदिनाथ के रूप में ऋषभदेव ने पुत्ररूप में जन्म लिया। ऋषभदेव के पुत्र नवयोगेश्वर हुए।

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥
(श्रीमद्भा० ५।४।११)

'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ ने इन्हीं नवयोगेश्वरों में प्रबुद्ध नारायण को कृष्णपाद (कान्हपा अथवा कानिपा) स्वीकार किया है। कृष्णपाद की उत्पत्ति का यह वैष्णव आधार है। उनकी उत्पत्ति का शैव आधार 'गोरखविजय' में उपलब्ध होता है। उनकी उत्पत्ति (जन्म) दिव्य है। वे स्वाभाविक तथा जन्मजात योगसिद्ध अथवा योगिराज हैं तथा योगेश्वर जालन्धरनाथ के शिष्य है। फैजुल्लारचित बंगला काव्य 'गोरखविजय' और श्यामदासरचित बंगला ग्रन्थ 'मीनचेतन', दोनों का कथानक प्रायः एक-सा है। इसमें उल्लेख है

कि आद्य और आद्या ने पहले देवताओं की सृष्टि की, इसके बाद चार सिद्धों की उत्पत्ति हुई। (धर्ममंगल शून्य पुराण में धर्मनिरंजन की कथा वर्णित है कि) जगत्-सृष्टि के पहले विश्व अव्यक्त था, शून्य से बुद्बुदरूप में ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ। उसके बाद आदिनाथ निरंजन अभिव्यक्त हुए। निरंजन देव के तप के ताप से केतका देवी, मनसा की उत्पत्ति हुई। तपोलीन आदिनाथ मनसा का स्मरण कर कापप्रवण हो गये। केतका के मुख से ब्रह्मा, ललाट के विष्णु और योनि से शिव उत्पन्न हुए। बालुका नदी के तट पर आदिनाथ में लीन हो गये। तीनों पिता का दर्शन करने गये। तीनों-के-तीनों तप में रत हो गये। आदिनाथ परीक्षा के लियें गलित शव के रूप में नदी के प्रवाह में दीख पड़े। ब्रह्मा और विष्णु ने अपने आपको शव से दूर रखा, पर शिव ने दोनों को बुला कर अपने जानु पर शव का दाह-संस्कार किया। ब्रह्मा अग्नि और विष्णु काष्ठ हुए। दह्यमान शव की नाभि से मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ), कान से कानपा (कृष्णपाद), जटा से गोरखनाथ और हाड़ से हाड़ीपाद (जालन्धरनाथ) की उत्पत्ति हुई। चरण से चौरंगीनाथ का प्रकाट्य निरूपित किया जाता है।

इस तरह योगी कृष्णपाद के जन्मग्रहण का परिचय मिलता है। उपर्युक्त प्रसंग में ही वर्णन है कि एक दिन भगवती गौरी ने शिव से निवेदन किया कि आप चारों सिद्धों का विवाह कर वंश चलाने का आदेश दीजिये। मानवीय शरीर से कामविकार होता है। आप आज्ञा दीजिये तो मैं उनकी परीक्षा लूं। उस समय पूर्व दिशा में जालन्धरनाथ, दक्षिण में कृष्णपाद (कान्हपा), पश्चिम में गोरखनाथ और उत्तर में मत्स्येन्द्रनाथ तप कर रहे थे। चारो को ध्यानबल से शिव ने अपने निकट बुलाया। देवी ने भुवनमोहिनीरूप

धारण कर सिद्धों को अन्न परोसा। मत्स्येन्द्रनाथ के मन में काम का संकल्प उठा, उसी तरह की रमणी के साथ बिहार का आशय है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने कुलाचार (तांत्रिक उपासना) के अंतर्गत स्त्री के सौन्दर्य और आकर्षण पर विजय प्राप्त करने की साधना करने का संकल्प लिया। जालन्धरनाथ के मन में संकल्प हुआ कि ऐसी लावण्यवती रमणी के घर झाड़ू लगाऊंगा, इसके सौन्दर्य-उपभोग के लिये। इसका आशय यही है कि जालन्धर नाथ ने निश्चय किया कि ऐसी स्त्री के घर झाड़ू देते हुए, लघु-से-लघु कार्य का सम्पादन करते हुए मैं स्त्री के आकर्षण और सौन्दर्य से मन को विमुख कर, जीत कर शिवपद में रमण करूँ। यही कारण है कि गौड़ बंगाल के मेहरकुल के राजाधिराज माणिकचन्द्र और उनकी पटरानी मयनावती से उनका सम्पर्क हुआ और योगिराज गोपीचन्द ने कृष्णपाद के अनुग्रह से जालन्धरनाथ को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया। जगदीश्वरी भवानी के शाप के परिणाम-स्वरूप स्त्री-विजय के लिये जालन्धरनाथ ने राजमहल में झाड़ू देने तक का कार्य अपनाया था। विश्वमोहिनी गौरी के रूप-सौन्दर्य से आकृष्ट होकर कान्हपा (कृष्णपाद) ने उनकी ऐसी रमणी को प्राण देकर पाने का निश्चय किया। देवी ने उन्हें तुरमान देश में डाहुका पक्षी होने का शाप दिया। गोरखनाथ ने देवी के सौन्दर्य से विमुग्ध होकर संकल्प किया कि मैं ऐसी देवी का स्तनपान करूँ। ये मेरी माता हों।

कान्हपा के जीवनचरित्त के सम्बन्ध में विशिष्ट धारणा यह है कि वे कर्णाटदेशीय ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके शरीर का वर्ण कृष्ण था, काला था, इसलिये इनहें कृष्णपाद कहा गया है, जिसका अपभ्रंशरूप कान्हपाद, कान्हपा, कानिया आदि है। उन्हें ऐतिहासिक धरातल पर महाराज देवपाल का, जिन्होंने ८०९

ई० से ८४९ ई० तक राज्य किया, समकालीन माना गया है। वे एक पण्डित-भिक्षु थे और दीर्घ समय तक उन्होंने सोमपुरी विहार में निवास कर विद्याध्ययन और योगसाधना की थी। यह विहार बंगाल के राजशाही जनपद के पहाड़पुर स्थान में स्थित बताया गया है। वे उच्चकोटि के कवि और विद्वान् तथा योगसिद्ध आचार्य थे। वे योगेश्वर जालन्धरनाथ के प्रधान प्रिय शिष्य थे। वे जन्म से ही मूक थे पर जालन्धरनाथ ऐसे महामहिम योगिगुरु के अनुग्रह से उनकी मूकता का अन्त हो गया। वे अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि हो गये। सारी धारणाओं का अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कृष्णपाद का जन्म दिव्य था, उन्होंने उच्चकुल (ब्राह्मण कुल) में जन्म ग्रहण किया, वे उच्चकोटि के प्रतिभाशाली कवि, योगसिद्ध परमाचार्य, शास्त्रनिष्णात उपाध्याय अथवा पण्डितचार्य थे और सिद्ध जालन्धरनाथ उनके गुरु थे।

कृष्णपाद ने अपनी प्रारम्भिक योगसाधना में तपस्या को बहुत महत्व प्रदान किया था, राजस्थान में कलशाचल नाम के पर्वत की चोटी पर महासिद्ध कृष्णपाद ने तपस्या की थी।

इस तरह श्रीनाथतीर्थावती के संग्रहकर्त्ता जोधपुराधीश्वर महाराज मानसिंह ने कृष्णपाद का महासिद्ध के रूप में स्मरण किया है।

कृष्णपाद उच्चकोटि के ध्यानयोगी थे। उन्होंने अपने गुरु जालन्धरनाथ से हेवज्र सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त किया था। ध्यान में बारह वर्ष तक स्थित रहने के बाद अलौकिक यौगिक शक्तियाँ प्राप्त की, पर विद्वता के सम्बन्ध में उनकी अहमन्यता और अभिमान ने साधना की प्रगति में थोड़ा-बहुत अवरोध स्थापित किया था। उनकी साधना की सिद्धिरक्षिका एक डाकिनी ने उन्हें शीर्षच्छेन

की पद्धति बतायी थी। महासिद्ध कृष्णपाद ने शिला पर स्वपाद चिह्नांकन, वायु-संतरण आदि की शक्तियाँ प्राप्त की। कृष्णपाद ने अपनी प्रारम्भिक साधना में मन पर विजय प्राप्त करने पर विशेष बल दिया। नाथ सिद्धों की बिनया में उनका कथन है -

समुद्र की लहरयाँ पार की जा सकती हैं, पर मन की लहरों, चित्त की चंचल वृत्तियों का पार पाना (निरोध) कठिन हैं। मैं (कृष्णपाद) सत्य अनुभव व्यक्त करता हूँ। कणेरीपाद अथवा कान्हपा ने इस पद में अपने आप को आदिनाथ का पौत्र (शिष्य) और मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र (शिष्य) कह कर नाथयोग-परम्परा में अपनी निष्ठा पुष्ट की है। वे नाथयोगी थे, शिवप्रदत्त महायोगज्ञान की प्राप्ति समानरूप से मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ को हुई थी। जिस तरह मत्स्येन्द्रनाथजी के आदि गुरु शिव कहे गये हैं, उसी तरह (कृष्ण पाद के गुरु) जालन्धरनाथ के आदि गुरु योगब्रह्म शिव ही है; इसलिये उपर्युक्त पद में कणेरीपाद (कान्हपा) का गुरु-ज्ञान के स्तरपर मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र के रूप में आत्मपरिचय इस बात का द्योतक है कि वे शिवप्रवर्तित योग ज्ञान में सन्निष्ठ है।

महासिद्ध योगिराज कृष्णपाद का साक्षात्कार योगिराजेश्वर गोरखनाथ से हुआ था, योगिराज कान्हपा और गोरखनाथजी ने एक-दूसरे के संकेत पर अपने-अपने गुरु का उद्धार किया था। कान्हपाद के कहने पर कामरूप देश के स्त्री की राज्य की महारानी कमला और मंगला के रूप-जाल में आसक्त योगिनी कौल मत का वरण करने वाले मत्स्येन्द्रनाथ को गोरखनाथ ने सिद्धामृत मार्ग अथवा अकुल शैंव योग का स्मरण दिला कर कौलाचार-साधना से मुक्त किया और मेहर कुल कह महारानी मयनावती के पुत्र

राजराजेश्वर गोपीचन्द द्वारा एक कूप में निक्षिप्त हाड़ीपाद जालन्धर नाथ को राजप्रताड़ना से मुक्त कर कृष्णपाद ने गुरु के पद को अपनी श्रद्धा व्यक्त की। उनके प्रभाव से गौड़ बंगाल के राजाधिराज गोपीचन्द ने जालन्धर पाद के चरण का आश्रय प्राप्त कर योगमार्ग की दीक्षा ग्रहण की। जालन्धर पाद का गोपीचन्द की माता मयणावती पर बड़ा प्रभाव था। मयणावती के अनुरोध से जालन्धरनाथ ने उन्हें अपना शिष्य बनाया, पर्यटन आरम्भ किया और लोट कर गोपीचन्द को जो कुछ योग-ज्ञान था, उसका अपहरण कर लिया। गोपीचन्द पटरानियों (उदुना और पदुना) ने राजा को समझाया कि आप के गुरु जादूगर और चमत्कार दिखाने में समर्थ हैं, वे योगी नहीं हैं। राजा ने रानियों की बात में आकर अपने राज्य के एक जंगल में एक कुएँ में जालन्धरनाथजी को डलवा कर उसमें मिट्टी भर कर कुएँ का मुँह बन्द करवा दिया, थोड़ा-सा छिद्र मात्र दीख पड़ता था। ठीक इसी समय महायोग का विसमरण कर कदली वन में (सहिल देश अथवा कामरूप में) मत्स्येन्द्रनाथ रमणी-राज्य में विहार कर रहे थे। महायोगी गोरखनाथ एक वकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। आकाश-मार्ग से योगिराज कृष्णपाद योग बल से कहीं जा रहे थे कि गोरखनाथजी ने सिद्धि के बल से खड़ाऊं आकाश में फेंक कर उन्हीं पर पैर रखकर उन्हें धरती पर पधारने का आमन्त्रण दिया। कृष्णपाद ने वकुल वृक्ष के नीचे आकर गोरखनाथजी से कहा कि आप के गुरु कदली वन में सोलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी कमला और मंगला के साथ विहार में मग्न है। गोरखनाथजी ने योगदृष्टि से कृष्णपाद से कहां कि आपके गुरु जालन्धरनाथ को गौड़ बंगाल के शासक ने कुएँ में डलवा कर उसका (कुएँ का) मुँह मिट्टी से ढकवा दिया है।

कृष्णपाद से गोरखनाथजी की भेंट की पुष्टि गोरखबानी की
द-संख्या दो से होती है। गोरखनाथजी ने मत्स्येन्द्रनाथजी के
णादेश में निवेदन किया था –

हे गुरुदेव! विद्यानगर से आये हुए कान्हापाद (कृष्णपाद) से
ट हुई थी। उन्हीं से आपके कामिनियों के रूपजाल में आसक्त
ने का सन्देश मिला था। गोरखनाथजी से अपने गुरु की प्रताड़ना
ा संकेत पा कर कृष्णपाद गोपीचन्द की राजधानी में गये।
दलीवन में गोरखनाथजी से साक्षात्कार के समय कृष्णपाद की
गशक्ति से आकृष्ट होकर अनेक योगी उनके शिष्य हो गये थे। वे
ी कृष्णपाद के साथ थे। वे राजद्वार पर बैठ गये। उन्होंने बालयोगी
ा वेष बना रखा था। दुर्लभचन्द्रकृत 'गोपीचन्देर गीत' में ऐसा
ल्लेख मिलता है। उनकी योगशक्ति के प्रभाव से महल में संगीत
न्द हो गया। हाथी-घोड़ों ने खाना-पीना छोड़ दिया। बच्चो ने दूध
ीना बन्द कर दिया। अनेक राजकार्य जहाँ-तहाँ ठप्प हो गये।
ोपीचन्द ने समझ लिया कि यह सब बालयोगी का चमत्कार है।

गोपीचन्द के महल में योगी का प्रवेश निषिद्ध था। कोतवाल
ने शिशु योगीवेष वाले कृष्णपाद को गोपीचन्द की पटरानी उदुना
के सामने प्रस्तुत किया। रानी से उन्होंने कहा कि मैं तो गुरुहीन
होकर भटक रहा हूँ और मुझे योगबल का ज्ञान ही नहीं है। रानी के
बन्धन से मुक्त होने पर वे गोपीचन्द के निकट गये, हुंकार छोड़ा;
इसके परिणामस्वरूप हाड़ीपाद (जालन्धरनाथ) के सोलह सौ शिष्य
उपस्थित हुए। राजा ने योगियों को संतुष्ट करने के लिये विशाल
भोज का अयोजन किया। राजा गोपीचन्द ने प्रार्थना की कि मैं मृत्यु
से मुक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। अमर होना चाहता हूँ। कृष्णपाद ने
उन्हें उसी योगज्ञान का उपदेश दिया, जो राजा ने अपने गुरु

जालन्धरनाथ से प्राप्त किया था। कृष्णपाद ने कहा कि आप मृत्यु से बच नहीं सकते। आप गुरु के अभिशाप से तप्त हैं। मयनावती की प्रार्थना कृष्णपाद ने जालन्धरनाथ के प्रकोप से गोपीचन्द की जीवन रक्षा का उपाय निकाला जालन्धरनाथ ने उनकी प्रार्थना से गोपीचन्द को क्षमा प्रदान की। वे योगी होकर राजमहल से बाहर निकल गये।

यद्यपि यह धारणा नितान्त निराधार है कि गोपीचन्द कृष्णपाद के शिष्य थे, तथापि उनकी योगसाधना को कृष्णपाद ने अमित प्रभावित किया था और जालन्धरपाद का शिष्य होते हुए भी उन्होंने कान्हपा अथवा कानपा के प्रति सौहार्द्र और सम्मान का परिचय दिया था।

महासिद्ध कृष्णपाद के सिद्धान्त और योग-परिचय (ज्ञान) के परिप्रेक्ष्य में समीचीन मत यही स्थिर होता है कि वे नाथयोगी अथवा शैवसिद्धान्त-निष्ठा के योगज्ञान के पोषक थे। यद्यपि वे हेवज्र की साधना और कापालिकमत से प्रभावित थे, तथापि उनकी साधनासिद्धि का मूलाधार नाथयोग ही स्वीकार किया गया है। कान्हपा का पन्थ एक उपसम्प्रदाय 'वामारग' के रूप में शैव सिद्धों और नाथयोगियों द्वारा गृहीत है। उनके गुरु जालन्धरपाद का कथन है कि योगसाधक की सिद्धि यह है कि शून्यमण्डल (गगन अथवा ब्रह्मरन्ध्र) में मन पहुँचकर अमन अथवा उन्मन हो जाय। यह रहस्य सद्गुरु की कृपा से ही अनुभूत है। वहाँ परम ज्योति प्रकाशित है।

जालन्धरनाथ ने नाथसम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुरूप एक अनिर्वचनीय शून्य को अपना उपास्य बताया है, पर उन्होंने सरहपाद के महासुख नामक सत् आनन्द को चरम प्राप्तव्य स्वीकार किया, इस सुख में इन्द्रियलोक तृप्त हो जाता है, यह किसी शब्द के माध्यम से नहीं व्यक्त होता, यह अनुभवगमय 'केवल' के रूप में ही शून्य

अथवा इन्द्रिय, मन और बुद्धि के अतीत सिद्धावस्था है। जालन्धरपद शैव कापालिक मत की आर भी आकृष्ट थे। जालन्धरपाद ने सहरपाद के हेवज्र-साधनासम्बन्धी शुद्धिवज्रप्रदीप पर टीका लिखी थी। उनके शिष्य कृष्णपाद ने हेवज्र तन्त्र पर एक टीका योगरत्नमाला अथवा हेवज्रपंजिका लिखी थी। इस तरह गुरु और शिष्य की हेवज्रसाधन में निष्ठा का पता चलता है। सरहपाद और कंबलांबर पाद ने संयुक्त रूप से हेवज्रसाधना का आरम्भ किया था। जालन्धरनाथ हेवज्रसाधन में भी दीक्षित थे, इसलिये उनके शिष्य कान्हपा की हेवज्रसाधन में स्वाभाविक प्रवत्ति निर्विवाद है। इस साधन प्रक्रिया में प्राणायाम की मुख्य आधारवाली हठायोगसाधना का महत्व स्पष्ट है। यही कारण है कि जालन्धरपाद और कृष्णपाद, गुरु-शिष्य, दोनों को हवेज्रसाधना में दीक्षित होने पर नाथमत की हठयोगपरक साधना में सिद्धि-लाभ करने की सुगमता हो सकी।

कृष्णपाद की हेवज्रसाधना में निष्ठा का रूप समझने के लिये हेवज्रसाधन का स्वरूप समझना आवश्यक है। हेरुक अथवा हेवज्र की साधना और स्वरूप का साम्य बहुत-कुछ शिवनटराज की साधना में उपलब्ध होता है। कृष्णपाद रचित 'योगरत्नमाला' में हेवज्रतन्त्र पर विशेष प्रकाश डाला गया है। हेवज्र तन्त्र में हेवज्र के स्वरूप, साधन, साधक, मुरद्रा, साधन-स्थल का समीचीन विवेचन है। इस तांत्रिक साधना में हेवज्र उपास्य हैं, वे कपालमाला धारण करते हैं। वे वीर हैं नैरात्म से सदा आलिंगित है। उनका वर्ण नीला है,वे अरुण आभा से शोभित हैं। उनके उठे केश पिंगल वर्ण के हैं। उनके नेत्र बन्धूक पुष्प के समान लाल हैं। वे पंचमुद्रायुक्त हैं, वे चक्री, कुण्डल, कण्ठी धारण करते हैं, उनके हाथ में सोने के आभूषण हैं, वे मेखला पहने हुए हैं, उनकी दृष्टि क्रोधभरी हैं, वे

व्याघ्र-चर्म धारण करते हैं। उनकी अवस्था सोलह साल की है। उनके हाथ में वज्र, कपाल, खट्वांग औप्र कृष्णवज्र है, अष्ठ योगियों के साथ श्मशान में क्रीड़ा करते हैं चतुर्भुज हैं, उनकी पहली वामभुजा में देवताओं और असुरों के रक्त से पूर्ण नरकपाल हैं, पहली दायीं भुजा में वज्र है, शेष दो भुजाओं में प्रज्ञा भगवद्रूपिणी वज्रवाराही आलिंगित है। वीर साधक भी अस्थिमालादि धारण करता है, उसके कानों में दिव्य कुलण्डल, मस्तक में चक्री, हाथों में दो रुचक, कटि में मेखला, पैरमें नूपुर, बाहुमूल में केयूर, ग्रीवा में हड्डियों की माला है। व्याघ्रचर्म ही परिधान है, वह वृक्ष के नीचे श्मशान में साधना करता है। यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हेरुक के लिये वीर और नाथ शब्दका प्रयोग किया गया है। इस तरह हेरुकका सम्बन्ध शैवनाथयोग-परम्परा में स्थापित है। जालन्धरपाद और कृष्णपाद, दोनों की नाथयोग में निष्ठा का यही सम्न्वयात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित है।

योगिराज कृष्णपाद की स्वीकृति है कि हमारे शरीर में ही चरम परम प्राप्तव्य है। शरीर का मेरुदण्ड ही कंकालदण्ड है। यही मेरु पर्वत है। कंकालदण्ड के रूप में ही गिरिराज सुमेरु स्थित है। इस गिरिराज के कन्दर-कुहर में नैरात्मधातुजगत् उत्पन्न होता है। इसी गिरि-कुहर में स्थित पद्म में यदि बोधि चित्त पतित होता है तो कालाग्नि का प्रवेश होता है और सिद्धि में बाधा पडती है। यही नाथपंथ में बिन्दु का अधोगमन कहा जाता है। ऐसा होने पर योगसिद्धि नहीं होती है। शरीर का पतन हो जाता है।

कृष्णपाद की एक पद की टीका में यह मत व्यक्त किया गया है कि जो लोग गुरुसम्प्रदाय में नहीं हैं, वे साम्यवृत्तिक, व्यावहारिक अर्थ लेकर शरीररूप कमल के मूलभूत बोधिचित्त को शुक्र समझते

हैं। कृष्णपाद ने इस वृत्ति को नष्ट कर डालने का संकल्प किया था। चित्त की संक्षुब्धता का नाश तभी होता है, जब कामनाओं का अन्त उनके सम्पूर्ण भोग से हो जाय। यह सहज शून्यता की प्राप्ति है। नाथ-मत में यही कैवल्य पद अथवा सहज शून्यस्थ अलख निरंजन की दिव्य ज्योति की अनुभूति है। मानव-शरीर का प्रधान आधार रीढ़ या मेरू दण्ड है। इस मेरुदण्ड के भीतर इन नाड़ियों से प्राणवायु का शरीर में संचार होता है। हेवज्र-साधना में यह स्वीकृति हैं कि बायीं नासिका से ललना औश्र दायीं नासिका से रसना नाड़ी प्राणवायु का वहन करती है, ये ही क्रमशः इंडा और पिंगला नाड़िया है। मध्यवर्ती नाड़ी अवधूती कही गयी है, जो नाथयोग में सुषुम्ना के रूप में स्वीकृत है। इस नाड़ी से प्राणवायु का ऊर्ध्वगमन होने पर ग्राह्य और ग्राहक में, उपास्य और उपासक में अभेदता हो जाती है। मेरु गिरि के शिखर पर महासुख का आवास है। यहाँ एक चौसठ दलों का कमल है। यह कमल चार मृणालों पर स्थित है। इस तरह एक चौसठ दल का कमल है। यहाँ योगी निवास कर (वज्रधर रहकर) इस पद्म का आनन्द उस तरह लेता है, जिस तरह भौंरा कुसुम का रस-आस्वादन करता है। कमल के ये चारो मृणाल शून्य, अति शून्य, महाशून्य और सर्वशून्य कहे गये हैं। उष्णीश कमल ही सर्वशून्य का स्थान है। यही डाकिनी जालात्मक जालन्धर गिरिनाम का महामेरु-शिखर है। यहीं महासुख का आवास है। इस गिरि-शिखर पर पहुंच कर योगी (वज्रधर) महासुख सहजानन्द का अनुभव करता है। आनन्द के चार प्रकार है। पहला आनन्द शारीरिक है, दूसरा वाचात्मक और तीसरा आनन्द मानसिक हैं। अन्तिम चौथे प्रकार का आनन्द ज्ञानात्मक है। यही सहजानन्द हैं, जिसमें परम सुख का अनुभव होता है।

कृष्णपाद ने इस सहजानन्द की अनुभूति पर गुरु-ज्ञान के प्रकाश में बल दिया। अवधूती नाड़ी डोम्बिनी या डोमिन है। चंचल चित्त ही ब्राह्मण है, डोम्बिनी के स्पर्श से इसकी चंचलता समाप्त होती है, पर यह उससे दूर रहने का यत्न करता है। विषयों का जंजाल एक नगर है, अवधूती इस नगर से बाहर रहती है। कृष्णपाद इस वृत्त को सम्बोधित करते हैं कि तुम चाहे नगर में रहो, या चित्त तुमसे दूर भागे पर मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकता। मैं (निघृण कापालिक कानपा) तुम्हारे सहवास से परमसुख, महासुख की अनुभूति करने में सफल होऊंगा। मैं चित्त को वश में करूँगा और विषयरूपी नगर के वातावरण से बाहर रहूँगा। विषय-सुख का सेवन न कर सहजानन्द में स्थित महासुख की रसानुभूमि करूँगा।

चौसठ पंखुड़ियों के दलपर डोमिन (अवधूती नाड़ी) के नृत्य का आशय है महामेरु गिरि के जालन्धर शिखर पर स्थित उष्णीष कमल पर अवधूती नाड़ी का विहार। उनका कथन है कि मन्त्र-तन्त्र का अनुष्ठान व्यर्थ है, केवल अपनी घरनी, स्त्री (अवधूती नाड़ी) से रमण कर आनन्द प्राप्त करना चाहिये। नाथयोग में यही सुषुम्नापथ से मन को उन्मन करते हुए सहस्त्रार में परम शिव का साक्षात्कार अथवा कैवल्य या मोक्षपद की प्राप्ति है।

प्राणवायु का निरोध कर यदि योगी इस मेरुशिखर पर वास करता है तो उसकी वृत्तियाँ रुद्ध हो जाती है। वह शान्त, निस्तरण सरोवर की तरह अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। वह पाप, पुण्य विराग और रागादि द्वन्द्वों से रहित हो जाता है।

इस तरह कृष्णपाद ने भावाभवविनिर्मुक्तावस्था को अपनी कापालिक साधना का चरम लक्ष्य स्वीकार किया। यही सहज शून्यावस्था ही नाथयोग में प्रतिपादित कैलवल्य-पद अथवा स्वरूप

अनुभूमि है। चर्यागीतिकोश पृ० २३, चर्यापद ७, ९, १०, ११ और १९ में अवधूती नाड़ी के साथ कृष्णपाद के परिणय का बड़ा णीय वर्णन किया गया है। इस परिणय-साधना की सिद्धि के ये वे अस्थिमाला धारण करते हैं। अनाहत डमरू वीरनाद में नादित होता है और वे कापालिक योगी कान्हापाद आचार में विष्ट होते है। वे घण्टा, नूपुर, कुण्डल, छार या भस्म और मोतियों हार धारण करते है। अवधूती (डोमिन) वृत्ति से उनका विवाह ता है। प्रयाण के समय मर्दल, कांस्यताल आदि बज उठते हैं। य-जय की दुदुंभि बजती है। विवाह के उपरान्त उनका रमण रम्भ होता है और वे उसमें आत्मविभोर हो जाते है। इस रूपक द्वारा यह परिलक्षित किया गया है कि कापालिक मत में दीक्षित कृष्णपाद ने सुषुम्ना नाड़ी में अपने प्राणों का संगम कर मेरु गिरिपर हाससुख की साधना की। कृष्णपाद को दस महाविद्याओं में म्मानित छिन्न-मस्ता का भी उपासक कहा गया है। उनकी शिष्या खलपा की तो तिब्बत में छिन्नमस्ता के ही रूप में पूजा होती है।

कृष्णपाद का शैव कापालिक सिद्धान्त नाथयोग के सिद्धान्तों और साधना पद्धति का समर्थक है। यह एक सर्वमान्य सत्य है। कृष्णपाद योगसिद्ध थे। उन्होंने अनेक ग्रन्थों और टीकाओं का प्रणयन किया। एक मत है कि कृष्णपाद के ५२ ग्रन्थ और १२ संकीर्तन के पद प्राप्त है। दूसरे मत के अनुसार तनजूर में दर्शन पर इनके छह ग्रन्थ तथा तन्त्र पर ७४ ग्रन्थ उपलब्ध होते है। दर्शन ग्रन्थों में शान्तिदेव के बोधिचर्यावितार की इनके द्वारा लिखी गयी टीका 'बोधिचर्यावतार दुःखबोधपदनिर्णय' प्रसिद्ध है। मगही भाषा में इनके पदों और वचनों का संकलन 'कान्हपाद गीतिका' 'महाढुण्ढुनमूल', 'वसन्ततिलका', 'असंबद्धदृष्टि', 'वज्रगीति' और

दोहाकोश में ३२ दोहे आदि विशेषरूप से उपलब्ध हैं। 'नाथसिद्धों की बानियाँ' ग्रन्थ में उनकी (सती कणेरीपाव की) अनेक सबदियों और पदों का संकलन उपलब्ध होता है।

कान्हपा ने बड़ी मार्मिक लोकवाणी में जगत् की क्षणभंगुरता का दिग्दर्शन कराया है और परमानन्द की प्रेरणा से लोकमानस को सम्यक् सम्बुद्ध किया है। उन्होंने कहा कि यह संसार सगा नहीं है, अपना नहीं हो सकता है, क्योंकि असत्, विनाशी है, मैं इसका स्वरूप समझ गया। मुझे हँसी आती है, मैं निर्भय और निःशंक हूँ।

योगिराज कृष्णपाद ने मन पर विजय प्राप्त करने पर बहुत बल दिया। उनका वचन है कि देवता और दानव, दोनों ही मन में निवास करते हैं। इस मन के द्वारा दैवी सम्पत्ति सुरक्षित रखनी चाहिये। यह मन मस्त हाथी है। जिस तरह दीपशिखा पर शलभ गिरता ही है, कुरंग (हरिण) नादश्रवण पर प्राण देता ही है, भौंरा पुष्प के रस का स्वाद लेता ही है, इसी तरह मन चंचल है, विषय का त्याग नहीं कर पाता है। क्षणमात्र में यह सन्यासी बन जाता है, वैराग्य के रंग में रंग जाता है। क्षणमात्र में हाथी की तरह मदोन्मत्त होकर आनन्द मनाने लगता है। यह क्षणमात्र में उन्मन हो जाता है, विषय में रत होते इसे देर नहीं लगती है। केवल इन्द्रियों को वश में करने से कोई योगी नहीं होता, योगी तो वह है जो मन पर अधिकार कर लेता है।

कृष्णपाद ने कहा कि जबतक शरीर में विद्यमान परमात्मा का परिचय (साक्षात्कार) नहीं हो जाता, तब तक जीवात्मा योगी नहीं कहला सकता। वह साधना के नाम पर बिना परमात्मज्ञान के जो कुछ भी करता है, वह धन्धा मात्र है। राव योगी तो वह है, जो परमात का अनुभव कर लेता है। व्यर्थ योग-साधना निष्फल है,

भूसी से चावल नहीं मिलता।

योगिराज कृष्णपाद के शिष्यों और शिष्याओं की परम्परा बड़ो समृद्ध है। उनकी एक शिष्या का नाम मेखला था। वज्रयान सम्प्रदाय में मेखला को बहुत सम्मान प्राप्त है। कृष्णपाद के दोहा-कोश पर मेखला नाम की संस्कृत टीका उपलब्ध है। अधिक सम्भावना है कि यह टीका मेखला द्वारा ही की गयी है। कृष्णपाद की दूसरी शिष्या का नाम कनखल है। कृष्णपाद के शिष्य अचिति थे। कहा जाता है कि एक बार लकड़ी काटकर अचिति ने उसे एक नाग से बाँधा था। वे इतने मस्त थे कि उन्हें पता नहीं चला कि यह नाग है या रस्सी। उनकी योग्यता से प्रभावित होकर कान्हपा ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। भादें (भदलि) भी कान्हपा के शिष्य थे। वे श्रावस्ती के ब्राह्मण थे और चिलकार थे।

शैव योगपरम्परा अथवा नाथयोगमत में कान्हपा को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उन्होंने सिद्धपुरुष जालन्धरनाथ के सिद्धान्त और योगज्ञान के प्रकाश में सहजानन्द के स्वस्थ महासुख का साक्षात्कार किया। वे महासिद्ध योंगिराज थे, योगिराजकृष्णपाद का नाम योग-साहित्य के इतिहास तथा नवनाथों की प्राणमयी परम्परा में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनकी योगविद्या अमिट है, उनकी योगसाधना की सिद्धि अक्षय है।

८. पिप्पलायन नारायण

चर्पटीनाथ

योगिराज चर्पटीनाथ प्रमुख नाथसिद्धों में ही नहीं, अनेक नवनाथ-सूचियों के सन्दर्भ में नवनाथों में भी परिगणित हैं। वे रससिद्धि योगपुरुष थे तथा महायोगी गोरखनाथ के सिद्धामृत मार्ग अथवा सिद्धमत के अत्यन्त प्रभावशाली वैराग्यरसिक योगी थे। प्रेमदास लिखित 'सिधबन्दना' में उन्हें ज्ञानी गुरु के रूप में नमस्कार किया गया है -

'नमो चरपटरायं गुरू ग्यान पायं।'

(नाथसिद्धों की बानियाँ-३)

नवनाथों की एक सूची में चर्पटीनाथ की गणना इस तरह है - मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ, काणेरीपा कानिफानाथ, चर्पटीनाथ, भर्तृहरिनाथ, कंथड़िनाथ और गहिनीनाथ। दूसरी सूची इस तरह है - मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, आदिनाथ, जालन्धरनाथ, चर्पटीनाथ, चौरंगीनाथ, कानिफानाथ, भर्तृहरिनाथ और गोपीचन्दनाथ। चर्पटीनाथ आत्मा के योगी थे। उन्होंने नाथयोग को अन्तस्साधन से समृद्ध करने वाले सिद्धों में प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

निस्सन्देह योगिराज चर्पटीनाथ ने अपनी योगसाधना में आत्मा के साक्षात्कार और चिन्तन को वरीयता दी। उन्होंने आत्मा के अमायिक और सर्वथा शून्य धरातल पर परब्रह्म अलख नि रंजन तत्व का परिशीलन किया। श्रीमद्भगवत के एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय से पाँचवें अध्याय में योगेश्वर नवनारायणों का उल्लेख है। वे ऋषभदेव के पुत्र कहे गये हैं और उन्होंने विदेहराज निमि को

भागवत धर्म का उपदेश दिया है। ये नवनारायण हैं - कविनारायण (मत्स्येन्द्रनाथ), करभाजननारायण (गहिनीनाथ), अन्तरिक्षनारायण (ज्वालेन्द्र अथवा जालन्धरनाथ), प्रबुद्धनारायण (करणिपा अथवा कृष्णपाद), अविर्होत्र नारायण (नागनाथ), पिप्पालयन नारायण (चर्पट अथवा चर्पटीनाथ,) चमसनारायण (रेवणनाथ), हरिनारायण (भर्तृहरिनाथ) द्रुमिलनारायण (गोपीचन्दनाथ)। इस तरह नवनारायणों के सन्दर्भ में नवनाथों की परिकल्पना अथवा सत्यापन से भी चर्पटीनाथ के नाथपंथ के सम्बन्ध का पता चलता है। हठयोगप्रदीपिका के रचयिता ने कालदण्ड को खंडित कर ब्रह्माण्ड में विचरने वाले जिन सिद्धों के नाम का उल्लेख किया है, उनमें चर्पटीनाथ का नाम अंकित है। हठयोगप्रदीपिका १।६ में सिद्ध चर्पटीनाथ के नाम का उल्लेख है। चर्पटीनाथ चौरासीनाथसिद्धों में भी प्रतिष्ठत है। शाबरतन्त्र में कापालिकों के बारह आचार्य और उनके प्रधान शिष्यों के सन्दर्भ में चर्पट का उल्लेख किया गया है। 'नाथसम्प्रदाय' के लेखक ने पृष्ठ ४ पर इस आशय का विचार व्यक्त किया है। 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ में मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ की शिष्य-परम्परा की सूची में गोरक्षनाथ, करणिपा, गोपीचन्द, गहिनीनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, रेवानाथ, मीननाथ, माणिकनाथ, विलयनाथ के नाम के साथ चर्पटनाथ के नाम का अंकन उपलब्ध होता है। चर्पटनाथ की नाथयोग-सम्प्रदाय अथवा सिद्धमत में स्थिति के सन्दर्भ में ऐतिहासिक धरातल पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि वे विक्रमीय दसवीं शती से कहीं पहले विद्यमान थे और अमरकाय श्रीगोरक्षनाथ की कृपा से इस जगी में उनका प्राकट्य हुआ। उन्हें ऐतिहासिक सन-सम्वत् में सीमित करना उनकी प्राचीनता

को संकुचित करना है; वे कालातीत सिद्धयोगी के रूप में समस्त ब्रह्माण्ड में सदा विचरण करते है। इस तरह हठयोगिप्रदीपिका के सन्दर्भ-प्रकाश में उनकी योगसिद्ध पुरुष के रूप में कालातीत विद्यमानता ही युक्तिसंगत और यथार्थ है, बंगला ग्रन्थ 'राजगुरु योगिवंश' में नवनाथों की एक सूची में मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, जालन्धर, करणिपा (कानपा अथवा कानिफा) भर्तृहरि, रेवण, नागनाथ, गहिनीनाथ के नाम के साथ चर्पटनाथ का नाम सम्मिलित है।

नाथ-सम्प्रदासय में चर्पटीनाथ एक अन्यतम योगाचार्य के रूप में स्वीकृत हैं। वे रससिद्ध महात्मा थे। गोरखनाथजी की रस (पारद) की सिद्धि के क्षेत्र में महनीयता सर्वसम्मत है। इस प्रकार रससिद्धि में चर्पटीनाथ की महती वैज्ञानिक जानकारी का पता चलता है, पर उन्होंने इस सिद्धि में अभिरुचि की अपेक्षा आत्मा के विज्ञान में निष्ठा प्रकट की। उन्होंने संसार के क्षणभंगुर स्वरूप के प्रति तटस्थता- वैराग्य-बुद्धि ही नहीं, उपेक्षा और घृणा का भी दृष्टिकोण अपनाया। वे बाह्यवेष और बाह्याडम्बर के घोर विरोधी थे। उनकी वाणी में इस सम्बन्ध में विद्रोही को स्पष्ट झलक मिलती है।

इस सबदी में घटसाधनयोग की सार्थकता प्रकट की गयी है; 'उलटि घटा' से अभिप्राय विपरीतकरणी मुद्रा के द्वारा सहस्त्रार से द्रवित चन्द्रामृतपान की ओर परिलक्षित है। चर्पटीनाथ में रंगीन परिधान, जटा, यज्ञोपवीत-धारण तिलक तथा भस्म आदि की निन्दा नहीं, आत्मज्ञान प्राप्त करने की दिशा में ही उनकी सार्थकता का प्रतिपादन किया है। उनका विचार है कि जब तक साधक या योगी आभ्यन्तर साधना में लगकर आत्मा का स्वरूप नहीं समझता है, तब तक बाह्यवेष इत्यादि नट का स्वांग है।

योगिराज चर्पटनाथ के जन्म लेने का स्थान अनेक खोजों के बाद हिमाचल प्रदेश के चम्बा राज्य का मुख्य नगर चम्बा ही सुनिश्चित किया जाता है। चम्बा के राजप्रसाद के सन्निकट अनेक मन्दिर हैं, उनमें से एक चर्पटीनाथ का मन्दिर है। यह मन्दिर इस तथ्य का द्योतक है कि चम्बा के राजघराने में योगिराज चर्पटीनाथ को विशिष्ट आदर प्राप्त था। वे राजगुरुपद पर आसीन थे। उन्हें चम्बा के राजाधिराज साहिल्लेदेव का आध्यात्मिक गुरु स्वीकार किया गया है, क्योंकि चम्बा राज्य की वंशावली में चर्पटनाथ अथवा चर्पटीनाथ का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि योगिराज चर्पटीनाथ के आशीर्वाद और प्रसन्नता तथा कृपा से राजा साहिल्लदेव को सन्तान की प्राप्ति हुई थी। राजा साहिल्लदेव के उत्तराधिकारी आसट का उल्लेख महाकवि कल्हण ने अपने 'राज तरंगिणी' काव्य ग्रन्थ में किया है और कल्हण के मत से उनका सम्वत् ११४४ वि० में काश्मीर में आगमन हुआ। चम्बा राज्य की वंशावली साहिल्ल और आसट के बीच सात राजाओं की विद्यमानता का समर्थन करती है; इस दृष्टि से लगभग दो सौ साल पहले साहिल्लदेव विद्यमान थे। योगसिद्ध रसाचार्य चर्पटीनाथ उस समय चम्बा में थे पर इसका आशय यह नहीं है कि विक्रमीय नौवीं या दसवीं शताब्दी में उन्होंने जन्म लिया था। उनकी तत्कालीन आयु का पता चलना कठिन है। उन्होंने कब शरीर धारण किया, उनका धरती पर प्राकट्य कब हुआ, इस प्रश्न का समाधान प्रचलित सन्-सम्वतों के द्वारा होना असम्भव है। योगियों और चर्पटीनाथ ऐसे रससिद्धि योगियों की आयु की सीमा का निर्धारण असम्भव है। चर्पटीनाथ की सबदियों में रसेश्वर मत में सिद्ध पुरुष नागार्जुन का उल्लेख है। चर्पटीनाथ ने उन्हें सम्बोधित करते हुए अपने रस (पारद)-सिद्धिमत की

अभिव्यक्ति की है। नागार्जुन को धर्मपाल का समकालीन कहा गया है, जिनका समय नौवीं विक्रमीय सम्वत् है। अतः यह स्पष्ट है कि योगिराज चर्पटीनाथ ने विक्रमीय नौवीं और दसवीं शताब्दी में अपनी यौगिक विभूति से जगत् के असंख्य प्राणियों का कल्याण किया, पारमार्थिक पथ-प्रदर्शन किया।

नाथ-सम्प्रदाय की मान्यता और सन्दर्भ में चर्पटीनाथ का प्राकट्य योगेश्वर गोरखनाथ के अनुग्रह का, आशीर्वाद का पुण्यफल स्वीकार किया गया है। इनके जन्म अथवा शरीरधारण की लोकोत्तरता का पता बंगला काव्य-ग्रन्थ 'मीनचेतन' से चलता है और उसके अनुसार गोरखनाथजी की कृपा से जन्म लेने के कारण इनका नाम प्रसंगवश कर्पटीनाथ भी कहा गया है। 'मीनचेतन' श्यामदास की कृति है और 'गोरखविजय' बंगला काव्य-ग्रन्थ फैजुल्ला की रचना है। दोनों के कथानक एक-से है। इन काव्यों में कर्पटीनाथ अथवा चर्पटीनाथ की उत्पत्ति का निरूपण है। मत्स्येन्द्रनाथ, जालन्धरनाथ, कृष्णपाद और गोरक्षनाथ के सन्दर्भ में कहा गया है कि आद्य और आद्या ने पहले देवताओं की सृष्टि की बाद से चारसिद्ध मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ), गोरक्षनाथ, हाड़ीपाद (जालन्धरनाथ) और कानपा (कृष्णपाद) की उत्पत्ति हुई तथा एक कन्या हुई, जिसका नाम गौरी रखा गया। इन चारों सिद्धों ने वायुमात्र का आहार करते हुए योगाभ्यास आरम्भ किया। एक दिन गौरी ने शिव के गले में मुण्डमाला देखकर कारण पूछा तो शिव ने कहा कि वे मुण्ड गौरी के है। अपने आपको उन्होंने अमर बताया। गौरी ने अपने बराबर मरते रहने का कारण पूछा तो शिव क्षीर-सागर में उन्हें ले जाकर एक डोंगी पर बैठा कर गुप्त ज्ञान सुनाने लगे। डोंगी के नीचे छिप कर मत्स्येन्द्र नाथ ने ज्ञान सुना तो शिव ने

शाप दिया कि एक समय तुम महाज्ञान भूल जाओगे। शिव कैलाश पर गये। देवी ने उनसे कहा कि सिद्धों को विवाह कर वंश चलाने का आदेश दीजिये। शिव ने कहा कि उनमें काम-विकार नहीं है; परीक्षा के लिये उनका आवाहन किया। देवी ने भुवनमोहिनीरूप धारण कर अन्न परोसा। चारों सिद्ध उनके रूप से मुग्ध हुए। चारों ने स्त्री-विजय का संकल्प किया। मीननाथ ने विचार किया कि ऐसी स्त्री के सम्पर्क में निवास कर मैं काम पर विजय करुँ। जालन्धर ने सोचा कि ऐसी रूपवती के महल में जाकर झाड़ूदार बन कर रहूँ और अपने समस्त इन्द्रियों पर विजय करूँ, जिससे मन में कामविकार न आये। कृष्णपाद ने विचार किया कि ऐसी सुन्दरी स्त्री की निकटता में प्राण समर्पित कर मन में कामविकार न आने दूँ। योगेश्वर सिद्ध गोरखनाथजी ने दृढ़ संकल्प किया कि ऐसी रूपवती स्त्री मेरी माता हो तो उसकी गोद में बैठकर दूध पीऊँ। देवी ने गोरखनाथजी की कड़ी परीक्षा ली। वे परीक्षा में खरे उतरे। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें सुन्दर स्त्री-रत्न पाने का वरदान दिया। देवी के वरदान की मान-रक्षा के लिये शिव ने माया से एक कन्या उत्पन्न की, जिसने गोरखनाथजी का पतिरूप में वरण किया। गोरखनाथजी उसके घर में जाकर अपनी सिद्धि के बल से छः माह के बालक बन गये। वे दूध पीने के लिये मचलने लगे। गोरखनाथजी ने उस रूपवती कन्या से कहा कि मुझमें काम-विकार नहीं हो सकता। तुम मेरी कोपीन (करपटी) धुल कर पी जाओ, तुम्हें पुत्र पैदा होगा। कन्या ने आदेश का पालन किया और उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया। इसी पुत्र की प्रसिद्धि कर्पटीनाथ अथवा चर्पटनीनाथ के नाम से हुई। योगिराज चर्पटीनाथ के प्राकट्य की यह दिव्यता अथवा अलौकिकता है।

योगिराज चर्पटीनाथ जन्मजात योगसिद्ध पुरुष थे। सांसारिक जीवन और पारिवारिक सम्पर्क में उनके आसक्त होने का प्रश्न ही नहीं है। उन्होंने सावधान होकर समझाया कि न तो कोई किसी का पुत्र है, न कोई किसी की बहू है। सब-के-सब स्वार्थवश एक-दूसरे से सम्बद्ध है; जो कुछ भी फूलता है, पैदा होता है, वह कालका ग्रास बन जाना है। यह सब जंजाल है। इसमें नहीं फंसना चाहिये।

यह संसार निःसंदेह जंजाल के सिवा और कुछ भी नहीं है। उन्होंने ब्रह्मंचर्य के पालन को योगसाधना का आधार कहा है। यदि यतीद्र ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना चंचल विषयासक्त मन के वश में होकर स्थान-स्थान पर रूप की तृष्णा में घूमता फिरता है, तो न तो उसकी काया योगाग्नि में परिपक्व हो सकती है और न तो उसकी वाणी का ही उपदेश के रूप में किसी पर प्रभाव पड़ा सकता है। वह तो विनाश को ही प्राप्त होता है।

चर्पटीनाथ ने ऐसे योगी को पेट भरनेवाला नट कहा है, जो स्वांग बना कर खेल दिखाया करते हैं। कोई नीला कपड़ा पहनता है तो कोई सफेद परिधान धारण करता है। बड़ी-बड़ी जटा रखकर योगपंथ के सिद्धान्त की ऐसा योगी उपेक्षा करता है, साथ में पाँच शिष्यों को लेकर चलता है। भिक्षा माँग कर पेट भर-भर कर खाता है। कहने के लिये तो वह नाथयोगी है, पर विनाश को प्राप्त होता है। वास्तविक नाथयोगी इन प्रपंचों से परे होता है।

उन्होंने पाखण्ड का पथ छोड़कर लोगों को तथा योग-साधकों को योग-मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। चर्पटीनाथ ने योगसाधना का मूलाधार वैराग्य बतलाया।

उन्हें महायोगी गोरखनाथजी का अनुग्रहप्राप्त शिष्य कहा गया

है। ऐसे तो उनसठवें वज्रयानी सिद्ध का नाम चर्पटी है और तिब्बती परम्परा में उन्हें मीनपा का गुरु कहा गया है, पर वास्तविकता यही है कि वे गोरखनाथजी के ही शिष्य थे। गोरखनाथजी रसायनसिद्ध योगाचार्य भी थे। यह स्वाभाविक है कि उनसे प्रभावित चर्पटीनाथ ने रसायन-सिद्धि में अपने प्रारंभिक साधना-काल में अनुरक्ति प्रकट की। उन्होंने रसायनसिद्धि की खोज की। वे मृत्यु पर विजय पाना चाहते थे। मृत्यु-विजय तो रसायन से हो सकती है, इसलिये उन्होंने रसायन-सिद्धि को अपनाया। तरन तारण से "प्राणसंगली" छपी रचना में चर्पटीनाथ तथा गुरुनानकदेव की बातचीत है। उससे पता चलता है कि वे रसायनसिद्धि के अन्वेषक थे। नानक से बातचीत का सन्दर्भ "प्राणसंगली" में इस बात का संकेतक है कि उनके समय में लोग रसायनसिद्धि में प्रवृत्त थे; इस सम्बन्ध में प्राचीन समय में चर्पटीनाथ ने काफी परिश्रम किया था, इसीलिये बातचीत में उनके नाम को जोड़कर रसायन की महत्ता प्रकट की गयी है। रसायनसिद्धि से अमरत्व अथवा दिव्य देह की प्राप्ति होती है। नाथमत में इस अमरत्व अथवा दिव्य देह की प्राप्ति को कार्यसिद्धि के रूप में मान्यता दी गयी है। रसेश्वर सम्प्रदाय में कार्यसिद्धि पर विशेष विवेचन हुआ है, गोरखनाथ, नागार्जुन, चर्पटीनाथ आदि रससिद्ध आचार्य थे। चर्पटीनाथ ने रसायन के उपयोग से कार्यसिद्धि की खोज की। रसवाद में पारा ही रस का तात्पर्य सिद्ध करता है। पारे को मारने की विधि है, इससे पारे में अद्भुत रंग देने की क्षमता आती है और इस तरह सामान्य धातु को सिद्ध पारा स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है। पारे से रसगुलिका अथवा रसमणियों के बनाने का भी कार्य होता है। मनुष्य के शरीर के भीतर स्वप्रकाश आत्मा के ऊपर अनन्तकाल से काया से संस्कारित आवरण को निमिष मात्र में छिन्न कर देने की

शक्ति रसमणियों में होती है। रसवाद में पारद से निर्मित अनेक रसायन के प्रयोग से शरीर के तत्वों का पोषण होता है। इससे शरीर पत्थर के समान सुदृढ़ हो जाता है। सूक्ष्म आत्मसत्ता में देहसत्ताएं कीभूत होकर सिद्धकाय सत्ता में परिणत हो जाती है। इस शरीर को हरगौरीतनु, प्रणवतनु, सिद्धकाय, सिद्ध देह आदि कहा जाता है। इस तरह पिण्डस्थैर्य की प्राप्ति में चर्पटीनाथ ने रसायनसिद्धि की खोज की। ''सर्वदर्शनसंग्रह'' में रसेश्वरदर्शन के प्रकरण में चर्पटि (चर्पटीनाथ) का उल्लेख उपलब्ध होता है। गोरखनाथजी ने रसायन-सिद्धि के द्वारा पिण्डस्थैर्य पर उतना बल नहीं दिया, जितना बल उन्होंने आत्मा के चिन्तन और आभ्यन्तरिक योग की साधना पर दिया। यही कारण है कि सिद्ध चर्पटीनाथ ने रसेश्वरवाद को महत्व न देकर अपनी साधना में आत्मचिन्तन की विशिष्टता प्रतिपादित की। यद्यपि पारद को शिवके शरीर का रस कहा गया है, अभ्रक और पारद के मिलने से जो रस बनता है, वह मृत्यु और दरिद्रता का नाश करता है, तथापित यह रसायन-विद्या चर्पटीनाथ को अधिक समय तक आकृष्ट नहीं कर सकी। यह बात तो स्पष्ट है कि वे रसायनसिद्धि के जानकार थे, उनकी सबदियों में इसका स्पष्ट आभास मिलता है।

योगिराज चर्पटीनाथ की पूर्व (प्रारम्भिक) योगसाधना में रासायनिक सिद्धि की प्रधानता निर्विवाद है और उत्तरकालीन साधना के चिन्तन के स्तर पर उनकी आन्तरिक योग-साधना की सिद्धि की व्यापकता है। उन्होंने नाथ-मत के सिद्धान्तों के अनुरूप गोरखनाथजी ऐसे महायोगसिद्ध गुरु के ज्ञान-प्रकाश में योग साधना के अन्तर्मुखी पक्ष को ही ग्रहण किया।

नाथमत की योगसाधना को चर्पटीनाथ ने बाह्याडम्बर और प्रदर्शन तथा चमत्कारों से मुक्त कर अपनी काया में व्याप्त परमात्मा के

त्कार, कार्यासिद्धि और मृत्युविजय से सम्वलित किया। उन्होंने
कहा कि यदि साधक अमरता की प्राप्ति नहीं करता है, जीवन्मुक्त
र मृत्यु को वश में नहीं करता है तो उसे बाह्याचार में ही समय
ने से किसी भी तरह की सिद्धि हस्तगत नहीं हो सकती है।
ने योग के स्वरूप पर मत व्यक्त किया कि योगी को मूल बन्ध
कर चौसठ संधियों के मल को प्राणायाम से शोधित कर जरा
यौवन में बदल कर समस्त रोगों का अन्त कर देना चाहिये, यही
की साधना है। ऐसी करनी होनी चाहिये कि फिर मृत्यु न हो,
साधक अथवा योगी कायसिद्धि प्राप्त कर ले।

योगिराज चर्पटीनाथ ने योग-साधनाक्रम से सहस्त्रार से द्रवित
मृत के पान को विशेष महत्व दिया है। हठयोग की साधना का
एक विशिष्ट उपक्रम है और गोरखनाथजी के योग-विधान की
ल्य-पदप्राप्ति में सजह सोपान है। उन्होंने कहा कि विषम बन्ध
वा विपरीतकरणी मुद्रा के द्वारा सूर्य को ऊर्ध्व कर उसे चन्द्रामृत
शोषण से रोकना चाहिये और तालुमूल में स्थित चन्द्रमा को
मुख कर ब्रह्मरन्ध्र के सहस्त्रदल के मूल कन्द से द्रवित अमृत
योगी को स्वयं पान कर शरीर को अमर कर लेना चाहिये।

इस तरह योग-साधना में चर्पटीनाथ ने आसन, षट्चक्र-भेदन,
-मुद्रा के अभ्यास के द्वारा शरीर की शुद्धि और प्राणायाम के
प्रण की शुद्धि पर बल दिया। इससे प्राण वश में और शरीर स्थिर
है, न तो तेल समाप्त होता है और न दीप बुझता है। चर्पटीनाथ
गी के जीवन में उसके भेष को महत्व न देकर उसके आत्मा का
कहलाने की सार्थकता चरितार्थ की। पंजाब विश्वविद्यालय के
लय की ३७४ संख्या की हस्तलिखित पुस्तक में चर्पटीनाथ के
से प्रचलित एक कविता का उद्धरण 'नाथ-सम्प्रदाय' के पृष्ठ

१७२ पर उपलबध है। उसमें चर्पटीनाथ के सिद्धमत को श्रेयस्
बताते हुए कहा है कि योगी को एकान्त साधन में चित्त लगा
चाहिये। गूदड़ी आदि धारण कर इधर-उधर भिक्षा के लिये घूमने
निषेध किया है।

इस कविता में चर्पटीनाथजी ने कठोर यतिधर्म के पालन
निर्देश देकर एकान्त में निवास कर योगी को साधना करने
सदुपदेश दिया है, यही उनका योगदर्शन है। उन्होंने एक सबदी
कहा है कि योगी को वृक्ष के नीचे अथवा गिरि की कन्दरा
निवास कर साधना में तत्पर रहना चाहिये। कायाकल्प के द्व
शरीर को नीरोग रखते हुए रात-दिन योगाभ्यास में प्रवृत्त रह
चाहिये।

योंगिराज चर्पटीनाथ यद्यपि चमत्कार और सिद्धियों के प्रदर्श
में पूर्ण अनासक्त थे, तथापि सिद्धि अपने आप प्रकट हो जाती थ
चर्पटीवनी योगिराज चर्पटीनाथ की योगिसिद्धि की सजीव प्रती
है। यह पुण्यस्थली पंजाब प्रदेश के गुरुदासपुर जनपद में पठानक
के सन्निकट ही स्थित है। योगिराज चर्पटीनाथ इस रमणीय वन
लतामय वृक्षों के शान्तिमय वातावरण में तप करते हुए अल
निरंजन परमात्मा के ध्यान में स्थित थे कि वन के स्वामी के मन
संदेह हुआ कि कहीं योगिराज इसपर अधिकार न कर लें। उ
उसने इस स्थान का परित्याग कर चले जाने का आग्रह कि
वैराग्य-राज्य के अवधूत योगसिद्ध चर्पटीनाथ के लिये उस स्थ
का कोई महत्व ही न था। उन्होंने वन का त्याग कर प्रस्थान कि
ही था कि उनके पीछे-पीछे वन के लतावृक्ष चल पड़े। अद्भु
बात थी। वन के मालिक ने योगिराज से वहीं निवास करने
प्रार्थना की। चम्बा राज्य के तत्कालीन अधिपति महाराज साहिल्लदे

...क चमत्कार से आकृष्ट होकर उनके दर्शन के लिये उपस्थित ... वे निस्सन्तान थे। योगिराज चर्पटीनाथ के आशीर्वाद से उन्हें ...ारत्न की प्राप्ति हुई। एक दिन योगिराज चर्पटवनी में शिष्यों के ... सत्संग कर रहे थे कि एक बारात जा रही थी। सांसारिक ...यिक जीवन से विरक्त योगिराज ने बारात का आशय पूछा तो ...ा गया कि स्त्री-पुरुष का विवाह होगा। उन्होंने भोलेपन में ...ाह करने का संकल्प किया कि राजा साहिल्लदेव ने उन्हीं के ...शीर्वाद से प्राप्त कन्या उनके चरण में समर्पित कर दी। ब्रह्मचर्यव्रत ...अडिग योगिराज वैवाहिक बन्धन से आजीवन ही दूर रहे और ...कन्या चम्पा ने उनके सन्निधान में योगसाधना में सिद्धि पायी। ...ा राज्य में चम्पा देवी का मन्दिर उसकी सिद्धि का स्मारक है। ...टवनी अद्यावधि सुरक्षित है और पंजाब सरकार का कठोर आदेश ...कि कोई भी व्यक्ति चर्पटवनी के लता-वृक्ष न काटे। चर्पटीवनी ...य: बीस एकड़ भूमि में विस्तृत है।

योगिराज चर्पटीनाथ की अनेक सबदियाँ 'नाथसिद्धों की ...ानियाँ' ग्रन्थ में संकलित हैं, जो काशीनागरी प्रचारिणी सभा द्वारा ...काशित है। तरनतारन से प्रकाशित 'प्राणसंगली' में उनके और ...नकदेव के बीच बातचीत के सन्दर्भ में उनके परम्पराप्राप्त विचार ...पलब्ध है। यह योग-साधना और रसायनों का ग्रन्थ है। इसमें ...र्पटीनाथ और नानक देव के बीच बातचीत में विविध रसायनों ...ा उल्लेख है ? चर्पटीनाथकृत 'चतुर्भवाभिवासनक्रम' का तिब्बती ...नुवाद उपलब्ध है। कहा जाता है कि शांकर सम्प्रदाय में प्रचलित ...आचार्य शंकरकृत 'चर्पटमञ्जरी' चर्पटीनाथजी की रचना है, पर ...ह नितान्त संदिग्ध है। रचना का नाम 'चर्पटीमञ्जरी' है और इसमें ...ीवन और संसार की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन है, इसलिये

योगिराज चर्पटीनाथ के नाम से इसका साम्य सिद्ध कर इसक उनकी रचना कह दिया गया। 'चर्पटीमञ्जरी' से चर्पटनाथ व सम्बन्ध नहीं सिद्ध होता।

योगिराज चर्पटीनाथ का उपदेश है कि योगी को भूल कर स्त्री के सम्पर्क में नहीं आना चाहियें। इससे ब्रह्मचर्य और योग साधना का आधार वीर्य क्षीण होता है। शरीर मृत्यु का ग्रास ब जाता है।

उन्होंने योगी को सावधान किया कि ऐसी करनी होनी चाहि कि मृत्यु का ग्रास न बनना पड़े।

योगिराज चर्पटीनाथ ने योगज्ञान को अमरता का विज्ञान कहा उन्होंने अपनी सबदियों में लुइपा और नागार्जुन को भी सम्बोधित किया है। पौड़ी हस्त लेख में दो सबदियों में तथा 'नाथसिद्धों की बानियाँ, की सबदी १४७ और १५० में इस सम्बोधन का पत चलता है। एक में 'चारपट कहै सुणौ रे लोई' और दूसरे में 'चरपट कहें सुणों हे नागा अरजन' से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है।'

योगिराज चर्पटीनाथ ने आत्मा को ही परमानन्द-पद का अभिन्न स्वरूप बताया। वे योगराज्य के आत्मरमणरस के विज्ञानयोगी थे उन्होंने स्वसंवेद्य तत्व सागर में अवगाहन पर परमात्म रत्नज्योति का साक्षात्कार किया। नाथसम्प्रदाय में ही नहीं, सम्पूर्ण योग-साम्राज्य के वे रससिद्ध योगी के रूप में श्रद्धास्पद हैं।

९. द्रुमुल नारायण

गोपीचन्द नाथ

नवनाथों की प्रायः सभी उपलब्ध प्रामाणिक सूचियों में योगिराज गोपीचन्द को नवनाथों में से एक कहा गया है और महाराष्ट्र की नाथसम्प्रदायपरम्परा में उन्हें श्रीमद्भागवत के पंचम और एकादश स्कन्ध में वर्णित नव योगेश्वरों में से द्रुमिलनारायण का रूप स्वीकार किया गया है, उन्हें गोपी चन्द्रनाथ के (गोपीचन्द के) नाम से अभिहित किया गया है। 'नाथसिद्ध वन्दना' में प्रेमदास ने उन्हें ब्रह्मानन्दस्वरूप कह कर नमस्कार किया है।

नमो गोपीचंद रमत्त ब्रह्मनंदं।

(नाथसिद्धोंकी बानियाँ ७)

यद्यपि गोपीचन्द की वैराग्यसाधना और योगमय जीवन पर महायोगी गोरखनाथ के प्रभाव का वर्णन न्यूनाधिक उपलब्ध होता है, तथापि इस दिशा में सिद्ध योगेश्वर जालन्धरनाथ अथवा जालन्धर पाद ही गोपीचन्द के जीवन-क्षेत्र में विशिष्ट प्रभावशाली चित्रित किये गये है। इतना ही नहीं, गोपीचन्द के पिता गौड़ बंगाल के महाराजा माणिकचन्द्र और उनकी पटरानी महारानी मयनामती अथवा मयनावती पर भी सिद्ध जालन्धरनाथ का अमित प्रभाव था। मयनावती की प्रेरणा से पिता माणिकचन्द्र के स्वर्गवास के बाद गोपीचन्द्र ने योग का पंथ ग्रहण किया था। विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लोकमानस में मत्स्येन्द्रनाथ, और भर्तृहरि (भरथरी) के साथ योगिराज गोपीचन्द की (गोपीचन्द के नाम से ही) परिगणना होती थी। उस समय के महाकवि तथा

दिल्लीश्वर शेरशाह के समकालीन मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पद्मावत' प्रबन्ध काव्य में गोपीचन्द के नाम का जो उल्लेख किया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जायसी से कई सौ साल पहले से ही लोकमानस में योगिराज गोपीचन्द का नाम शीर्षस्थानीय होता चला आ रहा था। गोपीचन्द के योगी-रूप में इसी नाम से प्रसिद्ध होने की ऐतिहासिकता अपने आप में अमित महत्वपूर्ण है।

तत्कालीन समाज योगिराज गोपीचन्द को गोपीचन्द के ही नाम से जानता था, मानता था। महामति जायसी का कथन है कि यदि राज्य और भोग-विलास अच्छे होते तो राजा गोपीचन्द उन्हें त्याग कर योग की साधना क्यों करते। जब उन्होंने अपने हृदय की दृष्टि से (आत्मज्ञान प्राप्त कर) आत्मरूपी पक्षी को देख लिया तो वे राज्य छोड़कर कदलीवन (कजरीवन) में जाकर रहने लगे।

नवनाथ-परम्परा परवर्तीं नहीं, जायसी से कहीं पूर्ववती है। उन्होंने नवनाथ और चौरासी सिद्धों के सम्बन्ध में कहा है—

नवौ नाथ चलि आवहिं, और चौरासी सिद्ध।

(पदमावत रतनसेन सूलीखण्ड ८)

ऐतिहासिक दृष्टि से यह निर्विवाद तथ्य है कि गौड़ बंगाल के शासक महाराजा गोपीचन्द विक्रमीय बारहवीं शती के अथवा उसके भी पूर्ववती थे। तिरुमलय शिलालेख से विदित होता है कि किसी युद्धक्षेत्र में दक्षिण के शासक राजेन्द्र चोल ने माणिकचन्द्र के पुत्र गोविन्दचन्द्र को पराजित किया था। राजेन्द्र चोल का समय विक्रमीय बारहवीं शती (१०६३ ई० से ११९२ ई०) निर्धारित किया गया है। गोविन्दचन्द्र को गापीचन्द कहा जाता है। यह धारणा किस सीमा तक सार्थक और ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन है, इस सम्बन्ध

कोई निश्चित मत नहीं है। 'गोविन्दचन्द्रेरगान' के अनुसार उपर्युक्त जेन्द्र चोल के शासनकाल में गोविन्दचंद्र के उनसे युद्ध की स्तविकता पर प्रकाश पड़ता है।

योगिराज गोपीचन्द को गोरखपंथ के माननाथी सम्प्रदाय का वर्तक कहा जाता है। जोधपुर का महामन्दिर इस सम्प्रदाय का धान स्थान कहा गया है। गोपीचन्द ने सारंगी वाद्ययन्त्र का आविष्कार किया था, इसलिये सारंगी को गोपीयंत्र भी कहा जाता है। योगिराज गोपीचन्द के सम्बन्ध में विशिष्ट तथ्य यही है कि वे जालन्धरनाथ के शिष्य थे। गौड़ बंगाल के महाराजा माणिकचंद्र के वे पुत्र थे। वे विक्रमीय सोलहवीं शती के तीन-चार सौ साल पहले से ही गोपीचंद के नाम से सिद्धयोगी के रूप में भारतीय लोकमानस में प्रतिष्ठित होते आ रहे थे और आज तथा आगे सुदूर भविष्य में भी उनकी योगसाधना के प्रति जननिष्ठा अक्षुण्ण है और रहेगी। उनका नाम मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ आदि नवनाथों की सूची में सम्मिलित है। वे राजकार्य का परित्याग कर योगी हो गये। उन्होंने कदलीवन (कजरीवन) में निवास कर योगसाधना की।

विक्रमीय बारहवीं शती में बंगाल के पालवंश के राजाओं का राज्य था। गोपीचंद के पिता माणिकचंद्र पालवंश के राजघराने से सम्बन्धित थे। माणिकचन्द्र को तिलकचन्द्र और विमलचन्द्र भी कहा गया है, पर गोपीचन्द के पिता के रूप में माणिकचन्द्र का ही नाम विशेष रूप से उनके जीवन-गाथा-कारों में सम्मान्य है।

मालव प्रदेश के योगिराज भर्तृहरि की बहन मयनावती का विवाह गौड़ बंगाल के माण्डलिक नरशों के मुकुटमणि माणिकचन्द्र से हुआ था। उज्जयिनी-नरेश महाराजा गन्धर्वसेन अथवा चन्द्रसेन

भर्तृहरि और मयनावती के पिता थे। मयनावती ने महायोगी गोरखनाथ से अपनी बाल्यावस्था में महायोगज्ञान प्राप्त किया था। जिस समय श्रीगोरखनाथ ने योगिराज भर्तृहरि को अपने सिद्धामृतमार्ग में दीक्षित किया था, उस समय राजकन्या मयनावती उज्जयिनी के राजप्रसाद में अपने भाई के सान्निधय में उपस्थित थी।

महारानी मयनावती बंगाल के योगसिद्ध योगेश्वर जालन्धरनाथ का बड़ा सम्मान करती थी। उसकी योगियों के चरणदेश में सहज निष्ठा थी। महारानी की प्रेरणा से महाराजा माणिकचन्द्र भी सिद्ध हाड़ीपाद जालन्धरनाथ का बड़ा सम्मान करते थे। यह तो निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता है कि जालन्धरनाथ ने राजा को योगदीक्षा दी थी या नहीं, क्योंकि उन्हें उनके पुत्र गोपीचन्द का ही पथ-प्रदर्शक स्वीकार किया गया है पर यह असंदिग्ध है कि पटरानी मयनावती के प्रभाव और प्रेरणा से माणिकचन्द्र के मन पर सिद्ध जालन्धरनाथ के महायोगज्ञान का रंग चढ़ गया था। उन्हें (राजा को) रावल योगी के रूप में लोकगीतों तथा अन्य (गोपीचन्द की) जीवन-गाथाओं में चित्रित किया गया है। महाराजा माणिकचन्द्र राज्यपद पर आसीन रहते हुए भी योगी थे। महारानी मयनावती के नाते जालन्धरनाथ का इस राजकुल में सम्बन्ध सदा बना रहता था।

महारानी मयनावती और माणिकचन्द्र इस बात के लिये बड़े चिन्तित थे कि राजसिंहासन के उत्तराधिकारी के रूप में उनके कोई पुत्र नहीं था। महारानी ने रत्नाकर व्रत का अनुष्ठान किया और इसके फलस्वरूप उनके गर्भ से गोपीचन्द का जन्म हुआ। राजप्रसाद में प्रसन्नता का महासागर उमड़ पड़ा। दूर-दूर से देश के ज्योतिषियों ने राजप्रसाद में उपस्थित होकर नवजात बालक की जन्म-कुण्डली

पर विचार किया, वे चिन्तित हो उठे। राजा ने चिन्ता का कारण पूछा तो ज्योतिषियों ने कहा कि बालक बड़ा सौभाग्यशाली है, इसकी आयु लम्बी है पर यौवन में प्रवेश करते ही अल्पवय में ही वैराग्य ग्रहण कर योगमार्ग में दीक्षित हो जायेगा।

राजा ने कहा कि यह बात नितान्त मिथ्या है। आप लोगों ने मेरे पुत्र के भाग्य को व्यर्थ दोषी ठहराया है।

मयनावती ने गोपीचन्द की शिक्षा में विशेष सावधानी दिखायी। राजा माणिकचन्द्र के मन में यह आशंका घर कर गयी कि मेरा पुत्र, जो गौड़ बंगाल के राजसिंहासन का एक मात्र अधिकरी है, कहीं योगज्ञान में रुचि लेने वाली माँ की प्रेरणा से तथा योगसिद्ध जालन्धरनाथ के प्रभाव से योगी न हो जाय, इसलिये वे महारानी से खिंचे-खिंचे रहने लगे औश्र जालन्धरनाथ के राजप्रसाद में प्रवेश कर धीरे-धीरे निषेध का रंग चढ़ता गया। उनका आना-जाना कम हो गया। उन्होंने किसी कारण से असंतुष्ट होकर राजा माणिकचन्द्र को शाप दिया कि छः माह में आपकी मृत्यु हो जायेगी। राजा ने गोपीचन्द को माता मयनावती की यौगिक प्रेरणा से मुक्त रखने के लिये उसे (महारानी को) निर्वासित कर दिया। महारानी ने राजा माणिकचन्द्र को योग का उपदेश देकर प्रभावित करना चाहा था पर राजा को स्त्री को गुरु बनाना अभीष्ठ नहीं था। रानी निर्वासन के बाद फेरुसा नगर चली गयी। मृत्युकाल उपस्थित होने पर राजा माणिकचन्द्र ने मयनावती को बुलाया। रानी ने अपने पति को एक लौह कपाटबद्ध कक्ष में बन्द कर दिया, जिससे मृत्यु से माणिकचन्द्र को बचाया जा सके; पर रानी की योगसिद्धि का बल निष्फल हो गया। कहा जाता है कि पति की प्राण-रक्षा के लिये रानी ने भ्रमरी का रूप धारण कर यमलोक में प्रवेश किया, पर माणिकचन्द्र जीवित न रह सके।

पति की मृत्यु के उपरान्त रानी मयनावती ने शासनभार सँभाला। यथासमय गोपीचन्द राजसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। दक्षिण प्रदेश के राजेन्द्र चोल ने सन्धि के परिणामस्वरूप अपनी कन्या का विवाह गोपीचन्द के साथ कर दिया। गोपीचन्द की दूसरी पटरानियाँ उदयिनी (उदुना) और पद्मिनी (पुदुना) तथा चम्पादेवी थीं। उदयिनी और पद्मिनी बंगला देश के ढाका जनपद स्थित साभार के राजा की कन्यायें थी। उनका जीवन भोग-विलास में बीतने लगा। रानी मयनावती को यह बात शूल की तरह खटकने लगी कि यदि राजा गोपीचन्द योगी नहीं बनेंगे तो अल्पवय में ही उनकी मृत्यु हो जायेगी। उन्होंने राजा से कहा कि तुम योगसिद्ध जालन्धरनाथ से योगदीक्षा ग्रहण करो, यह शरीरनश्वर है, विषय-सुख नश्वर है; सुख-दुख के द्वन्द्व में जीवन को व्यर्थ बिता देना कदापि उचित नहीं है।

गोपीचन्द ने माता मयनावती के समझाने-बुझाने से योगदीक्षा ग्रहण करना उचित समझा, पर सिद्ध हाड़िपा-जालन्धरनाथ ने कहा कि योगी होना आसान काम नहीं है; इसके लिये कठिन-से-कठिन परीक्षा देने की आवश्कता है। गोपीचन्द से उन्होंने कहा कि अपनी राजधानी में से ही मेरे स्नान के लिये आप को पानी भरकर लाना होगा, मेरी भोजन के लिये भिक्षा माँगकर लाना होगा। पटरानियों को माँ कहकर भिक्षा लाना होगा तथा योगज्ञान में दीक्षित होने के लिये माँ की आज्ञा को प्राप्त करना आवश्यक है। जालन्धर ने अपने स्नान का जलपात्र दिया। कहा कि मेरे स्नान के लिये इसमें अपने हाथ से पानी भर कर लाइये। राजा को पहले तो अपनी ही राजधानी में जाकर पानी भरने में बड़ा संकोच हुआ, पर प्रश्न था गुरु की आज्ञा के पालन का। वे जब पात्र नहीं उठा सके, तब राजप्रसाद की दासियों ने पात्र उठा दिया। योगेश्वर जालन्धरनाथ ने कहा

योगदृष्टि से यह बात जान ली। राजा परीक्षा में खरे नहीं उतर सके। जालन्धरनाथ ने कि जलपात्र स्त्री के कर-स्पर्श से दूषित हो गया है। योगी जालन्धरनाथ ने नगर से भिक्षा माँग कर लाने का आदेश दिया। राजा ने कन्धे पर झोली रख ली। नगर में प्रवेश करते ही मन्त्रियों ने स्वागत किया और कहा कि महराज! आप राजसिंहासन पर बैठिये, भिक्षा माँगना आप का काम नहीं है। गोपीचन्द ने कहा कि मैं राजा नहीं हूँ। मै तो जालन्धरनाथजी का शिष्य हूँ। राजकर्मचारियों के विशेष आग्रह पर उन्होंने राजप्रसाद को थोडा-सा आटा स्वीकार कर लिया। योगी जालन्धरनाथ ने कहा कि यह एक ही घर की भिक्षा है, इसलिये यह भिक्षा नहीं, एक घर का दान है, अपवित्र है। योगी जालन्धरनाथ ने रानियों के हाथ से भिक्षा माँग कर लाने का आदेश दिया। गोपीचन्द ने कहा कि यह तो सम्भव नहीं है, मैंने जिनका पाणिग्रहण किया है उन्हें माँ कह कर किस तरह भिक्षा माँग सकता हूँ। योगेश्वर जालन्धरनाथ ने कहा कि राजा! योग का पंथ सब के लिये नहीं है, यह मार्ग बहुत ही कठिन है। जब आप अपनी पटरानियों से योगी के वेष में जाकर भिक्षा माँग कर नहीं ला सकते हैं, तब आप के लिये अमर होना किस तरह सम्भव हो सकता है। राजा गोपीचन्द गुरु के आदेश से भिक्षा लेने के लिये अपने राजप्रसाद की ओर चल पड़े। उनकी पटरानी चम्पादेवी ने भिक्षा दी। योगी जालन्धरनाथ प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा कि अपनी माता मयनावती के हाथ से भिक्षा प्राप्त करने पर आप योग के राज्य में प्रवेश करने का अधिकार पा सकेंगे। माँ की आज्ञा के बिना आप योगी नहीं बन सकते। वे माँ से भिक्षा लेने चल पड़े। माँ का वात्सल्य पूर्ण हृदय गोपीचन्द को देखकर सहज स्नेह और करुणा से द्रवित हो उठा। योग-ज्ञान मे पारंगत

महारानी ने कहा कि वत्स! मैंने जालन्धर नाथ के पास तुम्हें अजर-अमर होने के लिये भेजा था। मेरा उद्देश्य यह नहीं था कि गौड़ बंगाल का महाशासक राज्य का परित्याग कर गैरिक परिधान धारण कर योगी बन जाय। मयनावती के नेत्रों से अश्रु का प्रपात उमड़ पड़ा। उनका कंठ अवरुद्ध हो गया। पुत्रका वियोग उनके लिये सह्य नहीं था। राजमंत्री गण सिसक-सिसक रोने लगे। रनिवास में हाहाकार मच गया। उदयिनी, पद्मिनी और चम्पादेवी आदि पटरानियों के विलास वज्र से भी कठोर हृदयवाले योगियों के चित्त को पिघला देने वाले थे। बड़ा करुण दृश्य था। स्वयं अपने शिष्य गोपीचन्द्र को प्रव्रजित करने के लिये राजप्रसाद में योगेश्वर जालन्धरनाथ उपस्थित थे। उन्होंने मयनावती को समझाया कि राजभोग का सुख अस्थायी और क्षणिक है, आप अपने पुत्र के योगी होने के मार्ग में बाधा न उपस्थित कीजिये। गोपीचंद को गैरिक परिधान में समलंकृत कर महायोगज्ञान प्राप्त करने में सहायता कीजिये। महारानी मयनावती की विह्वलता असीम थी। वे माँ थीं, केवल माँ। वे गौड़ बंगाल में राज्याधीश्वर की संरक्षिका थीं। उन्होंने अपना जी कड़ा किया और जालन्धरनाथ के चरणदेश में गोपीचंद को समर्पित कर दिया। रानी को ज्योतिषियों की बात याद थी कि यदि गोपीचंद योग नहीं ग्रहण करेंगे तो उनकी मृत्यु हो जायेगी। गोपीचंद ने माता मयनावती से सत्य की भिक्षा माँगी।

माता मयनावती ने गोपीचंद को गुदड़ी पहना दी। माता ने योगी होने की स्वीकृति देकर कहा कि तुम्हें गुरुदेव के साथ भ्रमण करते हुए धारा नगरी में नहीं जाना चाहिये। माता ने बारह साल तक योगी के वेष में रहने की आज्ञा प्रदान की। रानी मयनावती ने कहा कि राजर्षि जनक महायोगी थे, वे योगी होकर भी राजकार्य देखते

हते थे। इसी तरह तुम्हें बारह साल तक योगी के वेष में रह कर साधना करने के उपरान्त राजधानी में आकर राजकार्य देखना चाहिये। रिक वेषधारी योगी गोपीचन्द को योगिराज जालन्धरनाथ ने अलख निरंजन, सच्चिदानन्दस्वरूप अनिर्वचनीय शून्यपद में स्थित परमशिव की उपासना की विधि बतायी। गुरु और शिष्य भ्रमण के लिये निकल पड़े।

योगसिद्ध जालन्धरनाथ के साथ भ्रमण करते हुए योगिराज गोपीचंद दक्षिण भारत में पहुँचे। दैवयोग से जालन्धरनाथ ने योग-दीक्षा की दृष्टि से नगर में किसी हीरा नाम की वीरांगना के हाथ गोपीचन्द को बन्धक रख दिया। गोपीचन्द उसके मायाजल में नहीं फंस सके। उनका चित्त तो योगज्ञान में रमणशील था। उसने उनको यातनायें देना आरम्भ कर दिया। गोपीचन्द की रानियों ने यह समाचार सुना। अपनी वियोग-कथा पत्र में अंकित कर उदयिनी और पद्मिनी आदि रानियों ने उसे (पत्र को) तौते-मैंने के पंख में बाँध कर उड़ा दिया। वे उस स्थान पर पहुंच गये, जहाँ बन्धक के रूप में गोपीचंद समय बिता रहे थे। दोनों राजा की दशा का निरीक्षण कर लौट आये। भ्रमणकाल में यह समाचार योगेश्वर जालन्धरनाथ को भी मिला। वे वीरंगना के निवास स्थान पर पहुँच गये। उन्होंने बन्धक की माँग की। तब वारांगना ने कहा कि गोपीचंद की मृत्यु हो गयी। जालन्धरनाथ ने ध्यान की दृष्टि से सारी बात समझ ली। गुरु के द्वारा हुंकार करते ही गोपीचंद का बन्धन टूट गया। वे गुरु के चरणदेश में उपस्थित हुए। गोपीचंद ने राजधानी में लौटने के बाद सदा के लिये राज्य का परित्याग कर योगी होने का दृढ़ निश्चय कर लिया। दैवयोग से वे गुरु के साथ लौटते समय धारा नगरी पहुंच गये थे। माँ ने धारा नगरी में जाने का निषेध किया था, पर

दैव की बात नहीं टाली जा सकती। धारा नगरी के राजा के साथ गोपीचन्द की बहन चन्द्रावली का विवाह हुआ था। जब चंद्रावली को गोपीचन्द के आगमन का पता चला, वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। उसके करुण विलाप से धारा नगरी का कण-कण रो उठा। राजप्रसाद के प्रवेश-द्वार पर खड़े होकर गोपीचन्द ने भिक्षा माँगी।

चन्द्रावली मूर्च्छित हो गयी। लगता था कि शरीर में प्राण ही नहीं है। मूर्च्छा समाप्त होने पर चन्द्रावली और गुरु जालन्धरनाथ के साथ गोपीचन्द अपनी राजधानी में लौट आये। उनकी बहन चन्द्रावली सिद्ध योगिनी के रूप में प्रसिद्ध हुई। गोपीचन्द का मन वैराग्य का रसिक बन चुका था। उन्होंने राज्य का परित्याग कर योगी होने में परमानन्द का अनुभव किया। उन्होंने अपने मन पर विजय प्राप्त की।

जालन्धर नाथ ने गोपीचन्द को पूर्ण रूप से महायोग-ज्ञान प्रदान करने की दृष्टि से उनकी योग-शक्ति, यौगिक विभूति का अपहरण कर लिया। उदुना और पदुना ने राजा को समझाया कि आप के गुरु योगी जालन्धरनाथ पारंगत सिद्ध नहीं है, वे तो कोरे जादूगर और चमत्कार दिखाने में सक्षम हैं। राजा को रानियों की बात में विश्वास हो गया। राजा ने अपने राज्य के एक जंगल के एक कुएँ में जालन्धर नाथ को डालवा कर उसमें ऊपर से मिट्टी भरवा कर कुएँ का मुँह बन्द करवा दिया। थोड़ा-सा छिद्रमात्र दीख पड़ता था। जालन्धरनाथ समाधि में तल्लीन हो गये। ठीक उसी समय की बात है। योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ महायोग-ज्ञान का विस्मरण कर कदलीवन अथवा सिंहल देश में महारानी कमला और महारानी मंगला के रमणी-राज्य में विहार कर रहे थे। कहा जाता है कि महायोगी गोरखनाथ एक वकुल वृक्ष के

नीचे ध्यानस्थ थे। आकाश-मार्ग से योगबल से योगिराज जालन्धरनाथ के शिष्य कृष्णपाद (कान्हपा) कहीं जा रहे थे। गोरखनाथजी ने खड़ाऊँ फेंककर योगबल से उन्हें नीचे उतारा। कृष्णपाद ने कहा कि आप के गुरु कदलीवन में सोलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी कमला और मंगला के साथ महायोग-ज्ञान भूलकर विहार में मग्न है। गोरखनाथजी ने कृष्णपाद से कहा कि आप के गुरु को गौड़ बंगाल के राजा गोपीचन्द ने कुएँ में डलवा दिया है। गोरखनाथजी से कृष्णपाद की भेंट हुई थी, इसमें सन्देह नहीं है। गोरखनाथजी ने अपने गुरु से स्वीकार किया था कि मेरी कान्हपा से, जो विद्या नगर से आये हुए थे, भेंट हुई थी।

कान्हपा (कृष्णपाद) अपने गुरु जालन्धरनाथ को मुक्त करने चल पड़े। महाराजा गोपीचन्द राजसिंहासन पर सुशोभित थे। उदुना और पदुना, पटरानियों की आज्ञा से राजधानी में योगी का प्रवेश निषिद्ध था। कृष्णपाद ने योगबल से राजा गोपीचन्द से भेंट की और महारानी मयनावती की सहायता से अपने गुरु का उद्धार करने की योजना कार्यान्वित की। प्रश्न यह था कि राजा गोपीचन्द योगेश्वर जालन्धरनाथजी की दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जायेंगे। किसी तरह गुरु के शाप और कोप से उनके प्राणों की रक्षा करनी थी। गोपीचन्द के मन में इस बात से पश्चात्ताप था कि उन्होंने रानियों के बहकाने से अपने निरपराध गुरु को कुएँ में डलवा दिया। रानी मयनावती ने सिद्ध कृष्ण-पाद के सुझाव से राजा गोपीचन्द की तीन अष्टधातु-मिश्रित ताम्रमूर्तियाँ बनवायीं। वे उन तीनों प्रतिमाओं को लेकर कृष्णपाद के साथ उस कुएँ के निकट आयें, जिसमें महासिद्ध योगेश्वर जालन्धरनाथजी समाधिस्थ थे। पहली मूर्ति कुएँ पर रख दी गयी, राजा ने बाहर से कहा—

नवनाथों के नाथ हो, बोलो मुझसे नाथजी।
शिष्य हूँ, शरण आया हूँ, तारो मुझको नाथजी॥

कुएँ के भीतर से आवाज आयी—कौन है ? गोपीचन्द ने कहा कि मैं गौड़ बंगाल के राजा माणिकचन्द्र का पुत्र हूँ। जालन्धरनाथ ने कहा कि भस्म हो जाओ। उनके शाप से मूर्ति भस्म हो गयी; इसी तरह तीनों मूर्तियाँ भस्म हो गयीं। इस तरह जालन्धरनाथ के शाप से कृष्णपाद ने गोपीचन्द के प्राणों की रक्षा की। राजा गोपीचन्द को गुरु जालन्धरनाथ ने क्षमा प्रदान की। राजा का मन राजकाज और विषय-सुख से उपराम हो उठा। उन्होंने अपने राज्य का त्याग कर दिया, वे योगमार्ग में दीक्षित हो गये। गोपीचन्द की सबदी में उनके शाश्वत योग-जीवन के वरण की झाँकी मिलती है।

राजा गोपीचन्द ने गौड़ बंगाल का राजसिंहासन अपने चचेरे भाई ललित को सौंप कर कजरीवन (कदलीवन) की राह पकड़ी। हिमालय के ऋषिकेश से बदरिकाश्रम और उसके उत्तरवर्ती क्षेत्र को कदलीवन कहा जाता है। गोपीचंद ने कजरीवन में निवास कर यौगिक साधना में सिद्धि प्राप्त की।

गोपीचंद को सिन्ध में पीर पटाव कहा जाता है। वे वहाँ एक पहाड़ी पर रहते थे। उस पर पहले दयानाथ योगी का अधिकार था। उसके पास एक टोकरी थी। उससे सवालाख फकीरों के लिये वह आग जलाया करता था। उसके पास एक बैल था, जो उसके योगबल से नदी से थैले भरे पानी को खींचता था। वह अपने अनेक चमत्कारों के लिये प्रसिद्ध था। जब गिरनार पर योगेश्वर गोरखनाथ तप कर रहे थे, तब उनकी सिद्धि के प्रभाव से वातावरण में शान्ति छा गयी और दयानाथ का यौगिक चमत्कार समाप्त हो गया। दयानाथ ने तपोबल से यह जान लिया। उसने सांस से आग प्रकट कर जलती

हाड़ी को छोड़ कर कच्छ में धीणोधर की पहाड़ी पर निवास किया। गोपीचंद ने गिरनार पर जाकर गोरखनाथजी से आग बुझाने की प्रार्थना की। गोरक्षनाथजी की दृष्टिमात्र से आग का वेग शान्त हो गया। पहाड़ पृथ्वी पर गिर कर दो टुकड़ों में बँट गया। गोरखनाथजी ने दयानाथ को अपनी योगसिद्धि से प्रभावित किया। गोपीचन्द (पीरपटाव) ने सिन्ध की उस पहाड़ी पर गोरखनाथजी की कृपा से निवास किया। (ब्रिग्स ने अपनी रचना 'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज' ने इस घटना का वर्णन किया है।)

गोपीचंद असाधारण योगसिद्ध थे। उन्होंने योगपरक जीवन में सच्चिदानन्दतत्व का साक्षात्कार किया। इन्द्रियबोधातीत सुखराज अथवा महासुख की उन्होंने अपनी योग-साधना में सहज अनुभूति और सिद्धि प्राप्त की थी। परमानन्द और विरमानन्द के मध्य में स्थित सहज आनन्द ही महासुख का पर्याय कहा गया है। योगिराज गोपीचंद की योगसाधना का लक्ष्य गुरुप्रदत्त महायोगज्ञान प्रकाश में सहजानन्द का अनुभव करना ही कहा गया है। उन्होंने माया और ममता से अतीत गुरु की शरणागति पर ही बल दिया है। उन्होंने अजपाजप की सिद्धि के द्वारा अलख निरञ्जन का साक्षात्कार किया। उन्होंने कहा कि जिस योगी का प्राण शरीर में स्थिर है, उसका मन भी स्थिर है, मन की स्थिरता से शरीर का अमृत—बिन्दु स्थिर होता है और ऐसा होने पर शरीर मृत्यु का ग्रास नहीं होता है। योगी सिद्धदेह में निवास करता है और काल का वंचन कर अमृततत्व का ही वरण करता है। मन ही बहुत बड़ी शक्ति है, मन की स्थिरता से ही समजस्वरूप में स्थिति सम्भव होती है। व्यष्टिपिण्ड में ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष हो जाती है। यदि मन चञ्चल है, तो शरीर निस्सन्देह मृत्यु से बच नहीं सकता, उसका नाश होकर ही रहता है।

महायोगी गोरखनाथजी ने अपनी एक सबदी में योगिराज

गोपीचंद के महायोगज्ञान के प्रकाश में आत्मसाक्षात्कार क स्पष्टीकरण किया है कि भर्तृहरि और गोपीचन्द, दोनों ने ही गुरु के शब्द—महायोगज्ञान के उपदेश में अपूर्व श्रद्धा और आस्था रखक सांसारिक विषचप्रपंचों और द्वन्द्वों में विरक्ति अथवा संपूर्ण निःस्पृह का वरण किया। योगिराज भर्तृहरि ने सिद्धि प्राप्त की और गोपीच ने ब्रह्मैक्य अथवा शून्य पर में प्रतिष्ठित स्वरूपस्थिति की अनुभू की, परमात्मज्योति का दर्शन अथवा आत्म-साक्षात्कार किया।

गोपीचंद ने अचिन्त्यपद की प्राप्ति की। उन्होंने अनुभव कि कि शून्य पद—गगनमण्डली में ही परमात्मा अलख निरंजन शि की स्थिति है। वे माता के महायोग-ज्ञानोपदेश और हाड़ीपाद- जालन्धरनाथ की कृपा से भवसागर से पार उतर कर अमरपद में प्रतिष्ठित हो गये। मयनावती ने उन्हें योगामृत प्रदान कर मृत्यु के भय से मुक्त कर जालन्धरनाथ के पद—चरण में सौंप दिया। उनकी जीवन-गाथा अमिट है। गोपीचन्द की यशःकाया अमृत है।

10. चमस नारायण

रेवणनाथ

परम्परा-प्राप्त नवनाथों की अनेक सूचियों में तथा संत
नेश्वरकृत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ के परिप्रेक्ष्य में महाराष्ट्रीय
नाथ-परम्परा में योगिराज रेवणनाथ को नवनाथों में सम्मानित
र परिगणित किया गया है। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध तथा
कादश स्कन्ध में वर्णित नवयोगीश्वरों—नवनारायणों में रेवणनाथ
योगीश्वर चमसनारायण का अवतार कहा गया है। श्रीमद्भागवत
पाँचवे स्कन्ध के पहले से चौथे अध्याय में वर्णन है कि स्वायम्भुव
के पुत्र प्रियव्रत थे। प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र थे। आग्नीध्र के
नाभिने मेरुराज की कन्या मेरुदेवी से विवाह किया, दम्पति ने
मालय में घोर तप किया, उनके पुत्र ऋषभदेव के नव पुत्र हुए।
कविनारायण, (मंत्स्येन्द्रनाथ), करभाजन नारायण
गहिनीनाथ), अन्तरिक्ष नारायण (जालन्धरनाथ), प्रबुद्धनारायण
कृष्णपाद-कान्हपा), आविर्होत्र नारायण (नागनाथ), पिप्पलायन
रायण (चर्पटीनाथ), चमसनारायण (रेवणनाथ), हरिनारायण
भर्तहरिनाथ), और द्रुमिलनारायण (गोपीचन्द्रनाथ) हैं। इन
वनारायणों ने भागवत धर्म और भगवद्भजन पर विशेष बल
या था, अतएव महाराष्ट्रीय नाथयोग-परम्परा के वैष्णीकरण के
न्दर्भ में उन्हें योगिराज गहिनीनाथ के शिष्य निवृतिनाथ के कृपापात्र
तज्ञानेश्वर ने नवनाथों के रूपमें 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ
विज्ञापित किया। रेवणनाथ के पूर्वरूप योगेश्वर चमसनारायण
राजा निमि को भगवद्भजन के सम्बन्ध में सम्बोधित किया था

कि परमात्मा—परम पुरुष के मुख, बाहु, ऊरु और चरण से ही समस्त (चारों वर्ण के) मानवों की चारों आश्रमों की मर्यादा से युक्त उत्पत्ति हुई है, जो इस तरह परमात्मा से उत्पन्न होकर उनका भजन नहीं करते हैं, उन्हें अधोगति मिलती है।

योगेश्वर चमसनारायण के अवतार नाथसिद्ध योगिराज रेवणनाथ अथवा रेवानाथ ने महाराष्ट्र प्रदेश में अवतरित होकर भागवत धर्म का पोषण करते हुए नाथयोग के सिद्धान्तों और साधना से लोकजीवन को समृद्ध और कृतार्थ किया।

'राजगुरु योगिवंश' ग्रन्थ में नवनाथों की एक सूची प्रकाशित है, जिसमें यथाक्रम नवनाथों के नाम मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ, कानपानाथ, भर्तृहरिनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, चर्पटनाथ और गहिनीनाथ वर्णित है। यद्यपि महाराष्ट्रीय वातावरण सिद्ध अवधूत नाथयोगी दत्तात्रय का विशेष अनुग्रह निरूपित किया गया है तथापि उपर्युक्त परम्परा में स्पष्टरूप से रेवणनाथ को योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ के कृपापात्र दीक्षित शिष्य के रूप में सम्मानित किया गया है। इस परम्परा के अनुसार आदिनाथ के शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ है। मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, रेवणनाथ है। गोरक्षनाथ की शिष्यपरम्परा में गहिनीनाथ, नागनाथ, भर्तृहरिनाथ हैं और जालन्धरनाथ के शिष्य के रूप में कान्हपा और गोपीचन्दनाथ का उल्लेख है।

योगिराज रेवणनाथ ऐसे तो दिक्कालातीत योगसिद्ध महापुरुष है, परन्तु उनके जीवन-दर्शन के आधार जनश्रुति, लोकविश्रुति और नाथसम्प्रदाय की समर्थित परम्परा हैं, थोड़ा-बहुत ऐतिहासिक धरातल भी परिलक्षित हो उठता है।

योगिराज रेवणनाथ की उत्पत्ति अयोनिज है। कहा जाता है

क ब्रह्मा सरस्वती के रूप पर जब मोहित हुए तो उनका वीर्य
खलित हुआ और उसका एक भाग रेवा नदी में गिरने पर उसमें
चमस नारायण की आत्मा ने प्रवेश किया और इसके परिणामस्वरूप
एक अयोनिज बालक उत्पन्न हुआ। रेवा नदी के तट पर बसे बुन्धुल
गाँव के एक किसान सहनसारुज्य और उसकी पत्नी ने बालक का
पालन-पोषण किया। क्योंकि उन्हें बालक की प्राप्ति रेवा नदी के
तट पर हुई थी, इसलिये उनका नाम रेवण रखा गया। रेवण का
बाल्यजीवन अत्यन्त संयमित था, वे बड़े कर्त्तव्यनिष्ठ और
संयमपरायण थे, वे थोड़े ही समय में दिव्य बालक के रूप में
प्रसिद्ध हो गये। जब उन्हें पता चला कि मेरे माता-पिता ने मुझे रेवा
के तट पर प्राप्त किया था, तब उन्हें अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में
चिन्ता हुई और अपने माता-पिता तथा जन्म-ग्रहण का पता लगाने
के लिये उनकी उत्सुकता बढ़त गयी। एक दिन दैवयोग से
आकाशमार्ग से जाते हुए उन्हें सिद्ध अवधूत दत्तात्रेय दीख पड़े।
रेवण ने दत्तात्रेय को प्रणाम किया और नाथसिद्ध अवधूत दत्तात्रेय
से ही उन्हें पता चला कि वे योगेश्वर चमसनारायण के अवतार है।
दत्तात्रेय की प्रेरणा से वे नाथयोग की साधना में प्रवृत्त हुए। उन्हें
सिद्धियों ने वरण किया। रेवण के घर में धनधान्य और सम्पत्ति की
निरन्तर बढ़ती होने लगी। उनकी रेवण सिद्धि के रूप में लोकप्रियता
बढ़ने लगी। रेवण को लोकप्रसिद्धि बहुत खटकती थी। उन्हें एकान्त-
साधना प्रिय थी। उनके आवास पर साधुसंतों, आध्यात्मिक
जिज्ञासुओं और महात्माओं की भीड़ एकत्र होने लगी। दैवयोग से
एक दिन भिक्षाटन करते समय योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ बुन्धुल ग्राम
में पहुँच गये। उन्होंने रेवण सिद्ध को नाथयोग की मन्त्रदीक्षा प्रदान
कर उनका जीवन कृतार्थ किया। योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ ने उनका

नाम रेवणनाथ रखा। वे नाथयोगसाधना से सम्पन्न हो उठे।

रेवणनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथजी के आदेश से गिरनार पर्वत पर निवास कर विकट तपस्या कर नाथयोगसाधना में यथेष्ठ सिद्धि प्राप्त की। उन्होंने नाथयोग के सिद्धान्त में व्यष्टि-पिण्ड में समग्र बह्माण्ड की अभिव्यक्ति का अनुभव करते हुए अन्तर्व्यापी स्वसंवेद्य तत्व के प्रकाश में अलख निरञ्जन का साक्षात्कार किया। स्वरूप में समासन्न होकर उन्होंने हटयोग द्वारा प्राण की साधना कर स्वरूपावस्थान की सिद्धि की ओर कैवल्य-पद का शान्त, एकाग्र चित्त से रसास्वादन किया। योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ के सन्निधान में उन्होंने मार्तण्ड पर्वत पर भी घोर तप किया और नागेश्वर नामक स्थान में तत्वबोध प्राप्त किया।

तीर्थाटन-काल में रेवानाथजी ने बीटे नामक गाँव में पहुँच कर सरस्वती ब्राह्मण के दरवाजे पर अलख का उच्चारण किया और उसके मृतपुत्र के शरीर पर धूनी के भस्म का लेप कर उसे जीवन-दान दिया। इससे उनकी सिद्धि की चर्चा चारों और फैलने पर अनेक मृत शरीर में नवप्राण का संचार हुआ और अनेक रोगग्रस्त प्राणी स्वस्थ हो गये। कहा जाता है कि योगिराज रेवणनाथ ने बीटे ग्राम में ही समाधि प्राप्त की और कालदण्ड का खण्डन कर वे योगसिद्ध देह से अमृततत्व प्राप्त कर लोक-लोकान्तर में विचरण करते रहते है। रेवणनाथ की जीवनगाथा अमिट है।

11. आविर्होत्र नारायण

नागनाथ

तपोमूर्ति योगिराज नागनाथ नाथ-सम्प्रदाय के अत्यनत महिमावान् योगी थे। वे नवनाथों में परिगणित नाथ-सम्प्रदाय के विश्वकोष गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह के अनुसार महानाथ थे। वे रससिद्ध योगी थे। उनकी तपस्या और प्रतिष्ठित स्थान—सन्निधान पर प्रकाश डालते हुए गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहकार ने कहा है—

नागार्जुनो महानाथो ज्वालायेशानसंश्रितः।
सप्तक्रोशे वने चैव तपस्यति महातपः॥

(गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह)

महानाथ नागार्जुन ज्वालामुखी से ईशानकोण (पूर्व-उत्तर के बीच के कोने) पर स्थित (सात कोस) २१ किलोमीटर की दूरी पर वन में घोर तपस्या में तत्पर हैं। निस्सन्देह गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में नागार्जुन ही नागनाथ थे।

उनकी ऐतिहासिकता का समर्थन योगिराज चर्पटीनाथ ने अपनी एक सबदी द्वारा किया है।

इन नागार्जुन—नागनाथजी का एक प्राचीन मन्दिर हिमाचल प्रदेशस्थ ज्वालामुखी स्थान के पास एक वन में आज भी सुरक्षित है। और गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह के उल्लेख की पुष्टि करता है। निस्सन्देह ज्वालामुखी के आसपास का क्षेत्र योगिराज नागनाथ का तपःस्थल था। महराष्ट्रीय नाथ-सम्प्रदाय की परम्परा में उनकी योगसाधना का क्षेत्र महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान का भूमिभाग स्वीकृत है और यह निर्विवाद है कि उन्होंने शैव लकुलीश सम्प्रदाय को नाथ-

सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त कर उसे नाथयोग के सिद्धान्तों से महिमान्वित किया। 'राजगुरु योगिवंश' ग्रंथ में नवनाथों के सम्बन्ध में एक सूची उद्घृत है, जिसमें मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ, कानपा, भर्तृहरि, रेवणनाथ, चर्पटीनाथ और गहिनीनाथ के साथ नागनाथ का नाम अंकित है। 'योगिसम्प्रदायविष्कृति' ग्रन्थ की महराष्ट्रीय परम्परा में नवयोगेश्वरों में अविर्होत्र नारायण का अवतार नागनाथ को स्वीकार किया गया है। यद्यपि 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' ग्रन्थ में यह संकेत नहीं है कि आविर्होत्र नारायण के रूप में कौन अवतरित थे, तथापि धारणा यही है कि वे योगिराज नागनाथ ही थे। ग्रन्थ की भूमिका में भी यहीं मान्यता व्यक्त की गयी है कि नागनाथ ही आविर्होत्र नारायण के रूप में थे। नागनाथ ने अपने आविर्होत्र नारायणरूप में राजा निमि को उपदेश दिया था कि जो पुरुष चाहता है कि ब्रह्मस्वरूप आत्मा की हृदयग्रन्थि खुल जाय, वह वैदिक, तान्त्रिक पद्धति से भगवान् की अराधना करें —

नागनाथ की उत्पत्ति अयोनिज है। कहा जाता है कि सरस्वती के रूप में मोहित होने पर ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ और उसका एक भाग तक्षक नाग की कन्या पद्मिनी के मस्तक पर गिरा। उसने उस वीर्य को चाट लिया। गर्भ में आविर्होत्र नारायण ने प्रवेश किया। उस वीर्य से एक अण्डे की उत्पत्ति हुई और उसमें एक तेजस्वी बालक ने जन्म लिया। क्रोशधर्म नामक निर्धन ब्राह्मण और उसकी पत्नी सुरादेवी ने उस बालक का पालनपोषण किया और आकाशवाणी के आदेश से उन्होंने उसका नाम वटसिद्धनागनाथ रखा। दम्पत्ति की दरिद्रता बालक के घर में आने पर दूर हो गयी। सात वर्ष की आयु में यज्ञों पवीत सम्पन्न हुआ, धीरे-धीरे उसने शास्त्रग्रन्थों का बड़ी योग्यता से अध्ययन किया।

एक दिन गंगातटपर बालकों के साथ खेलते समय उसने दत्तात्रेय को अनुग्रह प्राप्त किया। बालक के जीवन में चमत्कार बढ़ते गये और माता-पिता को विश्वास हो गया कि वह बालक कोई दैवी पुरुष है। एक दिन महाराष्ट्र प्रदेश के कोल्हापुर के लक्ष्मीमन्दिर में भिक्षुक के वेश में दत्तात्रेय ने उसे दर्शन दिया। बालक नागनाथ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। नागनाथ ने बदरिकाश्रम में आकर तप किया। वे तपस्या पूरी कर बाले घाट के जंगल में रहकर नाथयोगसाधना में प्रवृत्त हुए। शिष्यों में उस स्स्थान का नाम बडवाल गाँव रख दिया। बडवाल ग्राम में शिष्यों ने एक योगमठ स्थापित किया। भ्रमण करते समय योगेश्वर मत्स्येन्दनाथ बडवाल ग्राम आये और उन्होंने नाथयोगसिद्धान्त से नागनाथ को सम्बोधित किया और अपने अनुग्रह से उनका साधनामय जीवन कृतार्थ किया। नागनाथ ने बड़वाल गाँव में मठ में निवास कर योगसाधना और तपस्या के द्वारा महती सिद्धि प्राप्त की। उनके आशीर्वाद में उनके शिष्य की मृतपत्नी के शरीर में प्राण का संचार हो गया। संजीवनी विद्या में नागनाथ सम्पूर्ण पारंगत थे। बडवाल गाँव में ही नागनाथ की समाधिस्थली है।

नागसम्प्रदाय में नागार्जुन और नागनाथ की अभिन्नता स्वीकार की गयी है। ऐसी इतिहास में परिप्रेक्ष्य में अनेक नागार्जुन का जीवन-दर्शन होता है। प्रबन्धचिन्तामणि में पादलिप्तसूरि के शिष्य नागार्जुन का जीवन-वृतान्त वर्णित है, जो आकाशगमन की विद्या में पारंगत थे। एक रसेश्वरसिद्ध नागार्जुन थे, एक गोरखपंथ की पारसनाथी शाखा के प्रवर्तकरूप में प्रसिद्ध थे। उन्हें पश्चिम भारत का निवासी बताया गया है। नागार्जुन को परवर्ती योगियों ने नागा अरजंद कहा है। नाथपंथक बारहआचार्यों में उनकी परिगणना है।

जो भी हो, नागार्जुन, जिन्होंने ज्वालामुखी के निकट वनस्थली में तप किया और गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में जिनकी चर्चा है, ही नागनाथ के रूप में नवनाथों में सम्भानित योगिराज नाथसिद्ध हैं। वे ही नागनाथ है। एक नागार्जुन को छठी शताब्दी में विद्यमान कहा गया है, जो नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। इनका माध्यमिक शास्त्र उपलब्ध होता है। कहा जाता है कि इन्होंने इन्द्रजालविषयक 'कौतुकचिन्तामणि' ग्रन्थ की रचना की थी। कहा जाता है कि ७वीं शती में कुरुकुल्ला की उपासना के प्रवर्तक शबरपाद नागार्जुन के सम्बन्ध में जैन प्रबन्धन 'प्रबन्धचिन्तामणि' में उल्लेख है कि टंक पर्वतपर निवास करने वाले रणसिंह की पुत्री भूपलदेवी और वासुकिनाग के संयोग से नागार्जुन ने जन्म लिया। उन्हें महासिद्धि प्राप्त थी। उन्होंने अपने गुरु पादलिप्त सूरि से गगनगामी विद्या सीखी और राजा सातवाहन की रानी चन्द्रलेखा के द्वारा सेंढी नदी के तटपर स्थापित पार्श्वनाथ सिद्ध विम्ब के सन्निधान में कोटिबेधीरस तैयार करने के लिये पारद-मर्दन करवाया था। 'नाथसिद्धों की बानियाँ' में (नागनाथ) नागार्जुन की दो सबदी मिलती है, जिनसे सिद्ध होता है कि ये नवनाथ में से एक योगिराज नागनाथ ही थे।

नागनाथ ने अहंकार के नाश और सद्गुरु की प्राप्ति पर बल दिया और कहा कि योगसधना की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। उन्मनी अवस्था की प्राप्ति के फलस्वरूप ही अपने भीतर परिव्याप्त परमात्मज्योति का साक्षात्कार होता है।

राजस्थान में रावल योगियों की अमित प्रसिद्धि कई सौ वर्षों से चली आ रही है। अनेक राजकुल मेवाड़ के राजवंश, आबू के परमार, जालौर के चौहान आदि रावल कहलाने में अपने आपको

गौरवान्तिव अनुभव करते थे। बापारावल को गारेक्षनाथ का अनुग्रह प्राप्त था। वे लकुशील पाशुपत मत से सिद्ध पुरुष हारीत ऋषि के कृपापात्र थे। बापा का एक सिक्का प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि वे लकुशील पाशुपत मत के अनुयायी थे और उसमें बड़ी श्रद्धा रखते थे। सिक्के पर बापा लिखा है, वर्तुलाकार माला के नीचे बायीं ओर त्रिशूल है और त्रिशूल की दायीं ओर पत्थर की बेदी पर एकलिंग का प्रतीक शिवलिंग है। हारीत ऋषि कनफटा योगी के रूप में अंकित हैं, वे नाथयोगी हैं। उसी में गाय खड़ी है, बापा का अधलेटा अंग है। अकुलीश मत के योगी नाथयोगी के रूप में राजस्थान और गुजरात प्रदेश में स्वीकृत हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक लकुलीश कहे गये हैं, जिनकी प्रतिमायें राजस्थान, गुजरात, मालवा आदि में पायी जाती है। सन् १२८३ ई० का एक शिलालेख सोमनाथ में पाया गया है, जिसमें गोरक्षनाथ का नाम लकुशील के साथ लिखित है। स्पष्ट है कि शैव लकुशील मत के अनुयायी गोरखनाथजी के नाथ-सम्प्रदाय के अंग स्वीकार कर लियें गये। लकुलीश पाशुपत मत के योगी रावल हैं, रावल योगी अपने आपको नागनाथ का अनुयायी मानते है। अतएव यह निर्विवाद है कि नाथसम्प्रदाय के योगिराज नागनाथ का रावल योगियों पर विशेष प्रभाव था और उन्होंने लकुशील पाशुपत मत को नाथ-सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त कर लिया। नवनाथों में नागनाथ का नाम अत्यन्त श्रद्धास्पद और चिरस्मरणीय है।

12. नवनाथ उपदेशामृत

ज्योतिः स्वरूप ओंकार महेश्वर आदिनाथ हैं। धरणीस्वरूप पार्वती उदयनाथ हैं। जलस्वरूप ब्रह्मा सत्यनाथ हैं। तेजस्वरूप विष्णु सन्तोषनाथ हैं। वायु स्वरूप शेषनाग अचलनाथ हैं। आकाश स्वरूप गणेश गजकंथड़िनाथ हैं। वनस्पति स्वरूप चन्द्रमा चौरंगीनाथ हैं। माया स्वरूप करुणामय मत्स्येन्द्रनाथ हैं। अलक्ष्य स्वरूप अयोनिशंकर त्रिनेत्र गोरक्षनाथ हैं। इस प्रकार नवनाथों के स्वरूप सिद्ध योगियों ने कहे हैं। नवशक्ति-युक्त नवनाथों को नमस्कार कर नवधा भक्ति लाभ के लिए नवनाथ कथा कही गई है।

प्राचीन समय में एक बार नवनाथ मण्डली भ्रमण करती हुई धर्मात्मा विदेहराज निमि की राजसभा में पहुँची। ये नवनाथ कार्य कारण और व्यक्त-अव्यक्त भगवद्रूप जगत को अपने आत्मा से अभिन्न अनुभव करते हुए समस्त ब्रह्माण्ड में स्वच्छन्द विचरण करते हैं-

त एते भगवद रूपं विश्व सद सदात्मकम्।
आत्मनोद्रवतिरेकेण पश्यंतो व्यवरन् महीम्॥

इन नवनाथों में यह सामर्थ्य थी कि जहाँ चले जाते इन की गति-मति को रोकने वाला कोई न था। राजा निमि भी साधुओं के परम भक्त थे। उनकी सभा में अनेक सिद्ध योगी, देवर्षि, मुनि और साधुजन रहा करते थे। उन तेजपुँज नवनाथों को देखते ही समस्त सभा उठ खड़ी हुई और प्रणाम किया। राजा निमि ने सत्कार पूर्वक उन्हें आसन पर बिठाकर अर्घ्यपाद्यादि से यथाविधि पूजा की और उनसे प्रश्न किया कि-हे सिद्धो! आप तीनों लोकों को अपने हाथ में स्थित आमलक के समान देखते हैं, अकारण कृपालु आपको मैं

साक्षात् परमेश्वर का स्वरूप समझता हूँ। आप लोग संसार में प्राणिमात्र के लिए भ्रमण करते रहते हैं। हे योगेश्वरों! संसार के प्राणियों के कल्याण का कोई उपाय बतलाइए। इस तरह राजा निमि के जगत कल्याणकारी प्रश्न सुनकर नवनाथ क्रम से उपदेश देते हैं-

१. श्री आदिनाथ भागवत धर्म का व्यापक स्वरूप समझाते हैं।
२. उदयनाथजी भगवत्भक्त के लक्षण बताते हैं।
३. श्री सत्यनाथ माया का स्वरूप समझाते हैं।
४. सन्तोषनाथ जी संसारी मनुष्य माया के पार किस तरह जा सकते हैं इसका उपदेश देते हैं।
५. श्री अचलनाथ भगवान का स्वरूप समझाते हैं।
६. गजकंथड़िनाथ जी कर्मयोग का उपदेश देते हैं।
७. चौरंगीनाथ जी भगवान की लीलाओं का वर्णन करते हैं।
८. श्री मत्स्येन्द्रनाथ अतृप्तकाम अभक्त मानवों की गति का वर्णन करते हैं।
९. गोरक्षनाथजी विविध युगों में भगवान के विविध रंग, नाम, आकृति व पूजा विधि का वर्णन करते हैं।

सर्वप्रथम ओंकार स्वरूप श्री आदिनाथ ने कहा- हे राजन! इस संसार में भगवान के चरणों की उपासना ही ऐसी होती है, जिसका कभी नाश नहीं होता। यही सम्पूर्ण भयों से रहित कल्याण का साधन है। इस उपासना से देह आदि के अभिमान में डूबे हुए पुरुष की सभी भय बाधायें दूर हो जाती हैं। हे विदेहराज! मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने वर्णाश्रम आदि के जो धर्म आत्म प्राप्ति के लिए कहे हैं, वे ही भगवद् धर्म हैं।

हे विदेह! भगवद्भक्त अविद्या से भयभीत नहीं होता। उसके

सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। मनसा वाचा कर्मणा शास्त्र दृष्ट विधि से निहित कर्मों का ईश्वरार्पण ही भगवद्धर्म है। राजन! भय भगवान की माया से होता है। इस भगवान को ही परम गुरु मानना चाहिए और अपने गुरु में भगवद् बुद्धि से बर्ताव करना चाहिए।

जगन्मोहिनी माया से मोहित भगवद् विमुखों को भगवद् स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। यह मेरा है, यह दूसरे का है- ऐसी भेद बुद्धि से जीव बन्धन में पड़ते हैं, इसलिए माया को दूर करने के लिए भगवान की उपासना करनी चाहिए। यथा-स्वप्न का दृश्य समस्त मिथ्या होता है तथा जाग्रत का दृश्य यह जगत मिथ्या होते हुए भी सत्य प्रतीत होता है, क्योंकि अनादि प्रवाह रूप से संसार सत्य है, परन्तु संयोग वियोगात्मकता से मिथ्या हैं, इसलिए पुरुष संकल्प विकल्पात्मक मन को वश में करे। तब पराशक्ति उत्पन्न होती है और वह उससे अभय होता है।

यदि मन का वशीकरण कठिन हो तो भगवान का स्मरण करना चाहिये या भगवत चरित्र का गान करना चाहिए। जिसका मन भगवनमें लग जाता है, वह जड़ोन्मत की तरह भी नाचता है, कभी गाता है, कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी स्तुति करता है, कभी भ्रमण करता है, कभी उपालम्भ करता है, कभी चिल्लाता है,कभी मुदित होता है और कभी निश्चल होकर ध्यान करता है। यह भक्ति का दूसरा उपाय है- संसार में जितने पदार्थ हैं तथा जितने प्राणी हैं, वे सब भगवतस्वरूप हैं, ऐसा मानकर सर्वत्र भक्ति पूर्वक नमस्कार करे। जिस तरह भूखे को ग्रास- ग्रास में तुष्टि होती है,उसी तरह भक्त को पद- पद में वैराग्य होता है। हे निमिराज! इस तरह भक्तिपूर्वक भगवान का भजन करते हुए भक्तों की भक्ति ज्ञानोत्पत्ति में समर्थ होती है। देहपात होने के बाद वे मुक्ति प्राप्त

करते हैं।

राजर्षि निमि ने प्रश्न किया - हे शिव- योगियो! उन भक्तों की किस धर्म में अधिक श्रद्धा होती है? उनका कैसा स्वभाव होता है। उनकी कैसी वृति और वाणी होती हैं, उनके क्या चिन्ह होते हैं?

यह सुनकर द्वितीय योगेश्वर उदयनाथ जी कहने लगे- हे राजन! भगवान के उत्तम भक्त आत्मा को सर्वत्र ब्रह्मवत व्यापक देखते है और समस्त चराचर को आत्मा में देखते हैं। मध्यम श्रेणी के भक्त भेद-बुद्धि से भगवान में भक्ति, भक्तों में मित्रता, अज्ञानियों पर दया और बैरियों की उपेक्षा करते हैं। तीसरी श्रेणी के प्राकृत भक्त मूर्ति में श्रद्धा रखते हैं, वे भी काल क्रम से मध्योत्तम होते हैं। भगवान का ध्यान करने वाले भक्त इन्द्रियों को विषयों की ओर से जाने से रोकते हैं। कदाचित्त प्रवृत्ति भी हो जाय तो संसार को मायामय जानकर प्रतिकूल विषयों से बैर नहीं करते और अनुकूल विषयों में हर्ष नहीं मानते। ये श्रेष्ठ भक्त होते हैं। जो भक्त सदा भगवान का भजन करते हैं वे देहेन्द्रिय धर्मों में आसक्ति नहीं रखते और काम्य कर्मों में उन की वासना नहीं उत्पन्न होती, जिनका एक ईश्वर ही आधार है, वे उत्तम भक्त हैं। जिनमें कुल, जाति, वर्ण, आश्रम, मित्र, विद्या, मान, धन, बन्धुओं का अभिमान नहीं है और प्राणीमात्र को समान देखते हैं, वे भी उत्तम भक्त हैं। जो विषय-विलासों को तुच्छ मानकर भगवान में मन को लगाये रहते हैं, वे उत्तम भक्त हैं।

यह सुनकर राजर्षि निमि ने हाथ जोड़कर पुनः प्रश्न किया-हे योगेश्वरो! यह समस्त जगत भगवन्मायामय है, ऐसा जो जानता है, वह यदि उत्तम है तो माया का वर्णन कीजिए।

तीसरे योगेश्वर श्रीसत्यनाथ ने कहा- हे राजर्षि! प्राणियों को

योग-मोक्षादि देने के लिए भगवान ने पंचभूतों से जितने प्राणी उत्पन्न किए हैं, व उनकी माया हैं। कर्मेन्द्रियों से कर्म कर सुख-दुःखादि भोगता हुआ प्राणी बार-बार जन्म लेता है, मरता है, मुक्ति नहीं पाता है, यह भगवान की माया है। प्रलयकाल आने पर सौ साल तक निरन्तर जल वृष्टि नहीं होती है।

हजारों सूर्य तपते हैं, सो वर्ष तक हाथी की सूण्ड के समान जल की धाराओं से पूर्ण मेघ बरसते हैं, जिससे विश्व जलमग्न होता है। पृथ्वी जल में लीन हो जाती है। जल तेज में लीन होता है। तेज वायु में लीन होता है। वायु आकाश में लीन होती है। आकाश तामस अहंकार में लीन होता है। इन्द्रियों के साथ बुद्धि राजस अहंकार में लीन होती है। इन्द्रियां एवं मन के देवता सात्विक अहंकार में लीन होते हैं। अहंकार महत्तत्व में लीन होता है। महत्तत्व प्रकृति में लीन होता है। यह त्रिगुणात्मक समस्त संसार भगवान की माया है।

राजा निमि ने पूछा- हे सिद्धों! विषय वासना से बद्ध जीव इस माया से कैसे पार होते हैं ?

चौथे योगेश्वर सन्तोषनाथ जी बोले-दुस्तर माया नदी को तरने के लिए भक्ति की नौका के सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है। कर्मजालों में फँसे मोहान्धों का निस्तार नहीं है। सिवा भक्ति के अनेक प्रकार के उपायों से उपार्जित धन भी सुखदाई नहीं होता है। इसी समय अन्य वस्तुएँ भी शाश्वत सुख नहीं देतीं, क्योंकि समस्त सांसारिक सुख क्षणिक हैं इसी तरह स्वर्ग में न्यूनाधिक तारतम्य से ईर्ष्या-द्वेष आदि दोषों से दुःख अधिक हैं, सुख अल्प है। कर्मफल की समाप्ति हो जाने पर नीचे गिरना पड़ता है।

इसलिए कल्याण की इच्छा करने वाले को चाहिए कि कर्म

ार ब्रह्म दोनों के तत्व को जानने वाले सकल निगम-आगम में
ष्णात, भोग के अनुष्ठान से अन्तःकरण की वासना को भस्म
रने वाले, पवित्र हृदय से हाथ में रखे आँवले के समान समस्त
वन के देखने वाले, शिष्य के चित्त का संताप हरने वाले शिव
ोगी गुरु के चरणों में शरणागत हो। विधिपूर्वक गुरुकुल में निवास
रता हुआ मनसा, वाचा, कर्मणा, सर्वदा और सर्वथा भगवद्-
ुद्धि से गुरु की सेवा करता हुआ, कटुता को त्याग कर निष्कपट
ाव से हृदय के समस्त संशयों को गुरु चरणों में निवेदन कर गुरु
पादिष्ट मार्ग से प्रथम क्षेत्र-मित्र, पुत्र, कलत्र, धन-धान्य, देह, गेह
ादि में वैराग्य पूर्ण साधु-संगति की रीति का ज्ञान प्राप्त करे।
सके अनन्तर सुख में मित्रता, दुःख में करुणा, पुण्यात्मा में मुदिता
ौर पापी में उपेक्षा की भावना करता हुआ चित्त को प्रसन्न रखे।

जल, मिट्टी आदि से बाह्य शुद्धि एवं यम, नियम आदि से
न्तःकरण की शुद्धि करता हुआ, निर्लोभ, निर्मोह, निष्परिग्रह,
रहंकार, निरातंक, निरामय, निःस्पृह, वीतराग अवधूत होकर
दृच्छा लाभ से सन्तुष्ट चित्त, जटाधारी, वल्कल वस्त्रधारी, कन्दमूल
लाहारी और जन संसर्ग से दूर रहकर समय सार्थक करे। शास्त्रों
श्रद्धा, गुरु में भगवद् बुद्धि, पुस्तकों का परिहार, परापवाद का
रित्याग, वेद विरुद्ध मत का तिरस्कार, श्रुति संवाद से स्मृतियों
ी परीक्षा, नित्य धर्म-चिन्तन, स्वल्प भाषण, वृथालाप से विरक्ति,
ाणयाम-परायणता, इन्द्रियों का निग्रह, मन को वश में करना
ौर भगवान का जन्म-अवतार कर्म और गुण का नित्य श्रवण
था श्रेष्ठ कर्मों का ही आचरण आदि अनवद्य कर्म गुरु से सीखना
ाहिये और विपरीत को त्याग देना चाहिए।

यज्ञ, दान, व्रत, उपवास, जप, तप, सदाचार तथा मन को

अच्छे लगने वाले अन्य वैदिक कर्म ईश्वर-प्राणिधान-विधि से भगवान के चरणों में अर्पण करना चाहिए। स्त्री, पुत्र, धन, बन्धु-ग्रहादि समस्त को भगवत्प्रदत्त प्रसाद जानकर यथा समय उपयोग करना चाहिए।

स्थावर, फिर जंगम, फिर मनुष्य, फिर धर्म परायण भगवद् भक्त, फिर योगीश्वरों की ईश्वर बुद्धि से सेवा करनी चाहिए। जब भगवान में पराशक्ति से तन्मयता हो जाती है, तब भक्त भगवान के दर्शन के बिना अपने को अभागा कहकर मानकर धिक्कारता है, रोता है। कभी यह सोचकर हँसता है कि भक्तवत्सल भगवान भक्त के वश में होते हैं। कभी वह आर्त की तरह उच्च स्वर से चीत्कार करता है, कभी परमानन्द से प्रसन्न होकर नाचता है।

कभी भगवान के ध्यान में निमग्न होकर स्थान के समान वह निश्चल हो जाता है। इस तरह भगवद्भक्त माया को तर जाता है।

राजा निमि ने पुनः प्रश्न किया कि - हे अवधूतों! ब्रह्म का क्या स्वरूप है। ब्रह्म सदाशिव, नारायण, परमात्मा, आदिनाथ, ईश्वर, गोरक्ष इत्यादि पदों का वाच्य एक है या भिन्न है?

पाँचवें योगेश्वर श्री अचलनाथ ने कहा - हे विदेहराज! एक ही ब्रह्मा सम्बन्ध-भेदों से अनेक नाम-रूपों से भिन्न प्रतीत होता है। जो सृष्टि करता है, वह सृष्टा है जो रक्षा करता है वह गोरक्ष है, जो संहार करता है, वह हर है। जो व्याप्त है वह विष्णु है। जो शं-कल्याण करता है, वह शंकर है। जिसमें जगत शयन करता है, वह शिव है। जो विशेष रूप से विराजमान होता है, वह विराट है। जिससे शं-सुख होता है, वह शंभु है। जो प्राणियों का शासक है, वह ईश्वर है। जो रुलाता है, वह रुद्र है। जो जगत का नाश करता है, वह शर्व है। जो समर्थ है, वह ईशान है। कर्मफल भोगने वाले

ीव पशु हैं, उनका पालक पशुपति है। पशु ज्ञान है, उनका पति शुपति है। जो प्राणियों का प्रेरक है, वह प्रभु है। अनेक नाम रूपों जो क्रीड़ा करता है, वह देव है। जो महान देव हैं, वह महादेव है। ो व्याप्त करता है, वह आत्मा है।

जो परम ईश्वर है, वह परमेश्वर है। षडेश्वर्य भग है, भगयुक्त गवान है। जल नारा है, जो नारा में निवास करता है, वह नारायण । जो सर्वान्त में शेष रहे, वह शेष है। इस हृदय में जो गमन करता , वह इन्द्र है। शरीर रूपी पुर में जो निवास करता है, वह पुरुष है। ो मिलने वाले का त्राण करता है, वह मित्र है। जो जगत का वरण रता है, वह वरुण है।

जीवों का नियमन करने वाला यम है। दहराकाश में गमन रने वाला मातरिश्व है। समस्त नरों को अपने में आत्मसात आनयन रने वाला वैश्वानर है। सर्वत्र गमन करने वाला वायु है। सर्वोच्च र पर ले जाने वाला अग्नि है। ऐश्वर्यवान एवं आशीर्वाद से कल्याण रने वाला नाथ है। लोकों का नाथ लोकनाथ है। जिसमें सब वास करते हैं, वह वसु है। वसुदेव ही वासुदेव हैं। विश्व का धान और धारण करने वाला विधाता है। जिसमें योगी रमण रते हैं, वह राम हैं। जो परिवृद्ध होता है, वह ब्रह्म है।

इस तरह एक परमेश्वर के अनेक कार्य भेदों से नामों की रुक्ति की जाती है, वास्तविक भेद नहीं है। जो जीवों की जागृति, वप्न, सुषुप्ति में साक्षी रूप में भासता है, वह ब्रह्म है। जो समाधि में रम ज्योति है, वह ब्रह्म है। स्फुलिंग महाअग्नि को प्रकाशित कर कता है, उससे प्रकाशित होता है। इन्द्रियां आत्मा को प्रकाशित हीं कर सकतीं, आत्मा से इन्द्रियाँ प्रकाशित होती हैं। जहाँ से वेद मन के साथ लौट जाता है, वहाँ इन्द्रियों का क्या कहना?

जो वाणी का प्रेरक है, वह ब्रह्म है-ऐसा कहकर श्रुति मौन ह ग३। संसार में स्थूल-सूक्ष्म सब ब्रह्म ही है। सबका मूल कारण ब्रह्म है। अनन्त शक्तिमान एक अनेक रूप में प्रतीत होता है। आत्मा जन्मता, न बढ़ता और न परिणत होता है, न क्षीण होता है, न न होता है। बाल्य, तारुण्य, वार्धक्य देह के धर्म हैं। आत्मा एकरस है वह निर्विकार और आनन्ददाता है।

राजा निमि ने कहा-हे जगन्मंगल योगीश्वरों! आप कर्मयो का उपदेश कीजिए, जिससे मनुष्य इसी जन्म में कर्मपाश का छेद कर कैवल्य मुक्ति प्राप्त करे। यही प्रश्न हमने सनकादिक सिद्धों किया था, उन्होंने उत्तर नहीं दिया। क्या कारण है?

छठे योगेश्वर गजकंथड़िनाथ जी ने कहा- हे राजन! ईश्वर के निःश्वासरूपी शब्द राशि वेद में कर्म, अकर्म, विकर्म-तीन तर के कर्म होते हैं। वेद अपौरुषेय है, जहां वाक्यों का पूर्वा पर समन्व योगियों को भी दुष्कर है। कर्म की गति गहन है। उस समय तु बालक थे, इसलिए सनकादिकों ने उत्तर नहीं दिया था। वे परोक्षवादी है, एक अर्थ गुप्त रखकर दूसरे अर्थ का प्रतिपादन कर है। उसकी अपनी समझ से प्राणी कर्म करता है। तदनुकूल ही फ मिलता है। जिस तरह रोगी बालक को वैद्य मीठी औषध देता है उसी तरह वेद स्वर्गादि सुख के लोभ से मोक्षार्थी पुरुष के कर्म व उपदेश देता है। जो वेद विहित कर्म नहीं करता, वह घोर नरक जाता है। जो वेद निर्दिष्ट कर्म करता है, वह ज्ञान, वैराग्य, भक्ति लाभ द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है।

वेद में स्वर्गादि भोग का उपदेश केवल कर्म का प्रशंसावाच है। यह वैदिक कर्मयोग है। गुरु द्वारा उपादिष्ट मार्ग से पवित्र होक समाहित मन से पवित्र देश में यथाकाल प्राणयाम कर इष्ट मूर्ति क

मंत्रपूर्वक पाद्य, अर्घ्य, आसन, मधुपर्क, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्यादि सामग्रियों से यथाविधि पूजा कर स्तुति, नमस्कार, जप, ध्यान कर भगवान की प्रदक्षिणा कर प्रसाद ग्रहण कर सिर में लगाकर नैवेद्य लेना चाहिए। मूर्ति को सिंहासन पर रखकर विसर्जित करना चाहिए। इस तरह ध्यान अग्नि, सूर्य, जल, वायु, पृथ्वी तथा अन्य दिक्पालों की उपासना परमेश्वर बुद्धि से करनी चाहिए। ऐसा करने वाला कर्मजाल से मुक्त होता है। यह तान्त्रिक कर्मयोग है।

राजा निमि ने भगवान के अवतार के सम्बन्ध में जिज्ञासा की थी कि-हे नवनाथ सिद्धों! भगवान समय-समय पर अपने अवतारों में जो कर्म करते हैं, उनका उपदेश कीजिए।

सातवें योगेश्वर चौरंगीनाथ जी ने कहा-जो अनन्त भगवान के अनन्त जन्म, कर्म एवं गुणों की गणना करना चाहता है, वह समुद्र के बालुका-कणों को गिनना चाहता है। उस परमेश्वर ने आकाशादि पंच महाभूतों को उत्पन्न कर ब्रह्माण्ड के उदर में स्वयं प्रवेश किया। उसका पुरुष नाम हुआ। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देव उत्पन्न हुए, जो सृष्टि, स्थिति, लय आदि करते हैं। दक्ष प्रजापति की कन्या धर्म की पत्नी के गर्भ से नर-नारायण दो अवतार हुए। जो आज भी नारदादि सिद्ध ऋषि एवं योगियों की मण्डली के साथ हिमालय के बद्रिकाश्रम में तपस्या करते हैं।

उनके योगबल से भयभीत इन्द्र ने एक समय तपोभंग करने के लिए वसन्त और कामदेव के साथ अप्सराओं को भेजा कामदेव ने वसन्त ऋतु के प्रवृत्त हो जाने पर मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं की लीला-विलासों से उनकी समाधि खण्डित करने का पूरा प्रयत्न किया। मदन शाप के भय से काँपने लगे। नर नारायण ने कहा-हे कामराज मदन! डरो मत, आतिथ्य ग्रहण करो, आश्रम

को कृतार्थ करो। वह अप्सराओं के साथ नतमस्तक नर-नारायण की स्तुति करने लगे।

मदन ने स्तवन किया-हे देव! आप माया रहित निर्विकार हैं, निरंजन, निष्काम, निष्पृह और योगीश्वर हैं। आपके चरणारविन्द की सेवा सुर नर मुनि सभी करते हैं। आपके सम्मुख इन्द्र क्या वस्तु है ? जिनके नाम से भक्त विघ्न दूर करते हैं, उन्हें विघ्न कौन पहुँचा सकता है ?

मनुष्य दो तरह के हैं। जो अपनी भक्ति का त्याग कर भोग के लिए कर्म करते हैं, वे प्रायः क्रोधादि के वश में हो जाते हैं या हम लोगों के वश में हो जाते हैं। जो हमारे वश में आते हैं, वे क्षणिक स्वर्ग भोग का रसास्वादन करते हैं और जो क्रोध के वश में होते हैं, वे अतिशय क्लेश उठाते हैं। कुछ तपस्वी भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि द्वन्द्व सहिष्णु होते हुए भी क्रोध वश तिनके की अग्नि के समान अल्प शक्ति वाले गोष्पद जल में डूब जाते हैं।

चिरकाल की संचित तपस्या नष्ट कर देते हैं। नर नारायण ने कामदेव का गर्व चूर-चूर करने के लिए योग बल से हजारों दिव्य स्त्रियों की सृष्टि की। उनका रूप देखकर समस्त लोगों को मोहित करने वाले अप्सरायें और जगत को उन्मादित करने वाले कामराज मोहित हो गए। नर नारायण ने कहा- हे मन्मथ! इनमें से इच्छित कामिनी की याचना करो। कामदेव त्रिलोकी को वश में करने वाली उर्वशी नाम की स्त्री रत्न को ग्रहण कर स्वर्ग चले गए। अमरावती की सुधर्मा सभा में सिंहासनारूढ़ इन्द्र इस वृत्तान्त को सुनकर लज्जित हो गए। हंसावतार से परमेश्वर ने ब्रह्मा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। दत्त का अवतार ग्रहण कर परमेश्वर ने अनसूईया को अतुल कीर्ति प्रदान की।

सनकादिक सिद्धों के अवतार से साधकों को सिद्धि दी। हयग्रीव अवतार ने दुःखी जीवों का उद्धार किया। मत्स्यावतार लेकर उन्होंने शंखासुर का वध किया, औषधि-बीजों के साथ मनु की रक्षा की। कूर्मावतार से मन्दराचल को धारण कर रत्न उत्पन्न किया। नृसिंहावतार से हिरण्यकशिपु का वध कर प्रह्लाद की रक्षा की। चक्री का अवतार लेकर चक्र से नक्र को मारा, गजेन्द्र को मोक्ष दिया। उन्होंने कश्यप के होम के लिए समिधा की व्यवस्था की, बालखिल्य ऋषियों को गोष्पद जल में मग्न होने से बचाया। इन्द्र को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त किया, दैत्य के कारागृह से देवांगनाओं को मुक्त किया।

अमृत हरण के लिए मोहिनी अवतार से असुरों को मोहित किया। वामन अवतार से पाताल मं बलि बन्धन का बन्धन किया, तीन पद क्रमों से तीनों लोकों को व्याप्त किया। जामदग्न्य अवतार से सहस्त्रबाहु का बल नष्ट किया। भगवान ने राम का अवतार लेकर रावण का वध किया। कृष्णावतार से गोवर्धन का उद्धार किया। बुद्धावतार से हिंसा रोकी। कल्किवतार से म्लेच्छों को समाप्त कर सत्ययुग की स्थापना की।

राजा निमि ने पुनः पूछा-हे अवधूतों! जो नर भगवद् भक्ति रहित होकर केवल विषयों में रचे-बसे रहते हैं, उनकी क्या गति होती है। योगेश्वर करुणामय माया श्री मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा- हे राजन! भगवान नारायण के विराट स्वरूप के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, अरू से वैश्य, पाद से शूद्र की उत्पत्ति हुई। सत्व प्रधान ब्राह्मण, सत्व रज प्रधान क्षत्रिय, रज तम प्रधान वैश्व और तम प्रधान शूद्र होता है। सदाचार में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा है, शौर्य में क्षत्रिय की, व्यवसाय में वैश्व की और सेवा में शूद्र की प्रतिष्ठा है।

हृदय से ब्रह्मचर्य, कुक्षि से गृहस्थ्य, वक्षःस्थल से वानप्रस्थ, मस्तक से योगाश्रम उत्पन्न हुए।

जो भगवान का भजन नहीं करते, वे कृतघ्न मरकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं। कर्मजाल से मोहित मनुष्य भक्ति की निन्दा करते हैं, वे शाश्वत सुख नहीं पाते। स्वार्थ के लिए सहस्त्रों अनर्थ करते हैं, उनका निस्तार नहीं है। जो देश, जाति, कुल, धन, बन्धु, पुत्र, कलत्र, मित्र, क्षेत्र, बल, बुद्धि, विद्या, अधिकार आदि से मुग्ध हुए मद में अन्ध लोग भगवान और भक्त की निन्दा करते हैं, उनका कल्याण नहीं है। जो न जानते हुए भी वेदज्ञों का अभिमान करते हुए निवृत्ति परक वेद की प्रवृत्ति परक प्रतिपादित करते हैं। अपने कपोल कल्पित मतों से मनुष्य को मोहित कर स्वार्थ सिद्ध करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं और जो वेद विरुद्ध ग्रन्थों का प्रणयन कर सिद्ध, ऋषि तथा भगवान के नाम से दुराचार कर प्रचार करते हैं। केवल पशु हिंसा, मद्य, मांस, मादक द्रव्य आदि अभक्ष्य-भक्षण से विषय-विलास में निरत रहते हैं, वे उत्तम गति प्राप्त नहीं करते हैं।

धन धर्म के लिए है, दुर्विषय के लिए नहीं है। शरीर परोपकार के लिए है सुख भोगने के लिए नहीं है। विद्या तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए है, विवाद में दुरुपयोग के लिए नहीं है। सोमरस यज्ञ के लिए है, यथेष्ट पान के लिए नहीं है। बल दीन दुखियों की रक्षा के लिए है, उनका दमन करने के लिए नहीं। बुद्धि का उपयोग विषम परिस्थिति में कर्तव्य के निर्णय के लिए है, दूसरे के दोष दर्शन के लिए उसकी उपयोगिता नहीं है। इन वस्तुओं का विपरीत प्रयोग करने वाले दुष्ट जन कदापि कल्याण की प्राप्ति नहीं करते। जो निर्दयी पुरुष पशु की हिंसा कर पेट-पालन करते हैं, उनकी हिंसा पशु भी उसी तरह उनके मरने के बाद करते हैं। ज्ञानी भक्त अनायास

ही भवसागर को पार करते हैं। जो मनुष्य निन्दा-परनिन्दा, अपवाद-पिशुनता, अनिष्ट-चिन्तन और कलह आदि में तत्पर रहते हैं, वे निरवधि नरक में जाते हैं।

राजा निमि ने पूछा-हे योगीश्वरों! भगवान किस समय किस वर्ण और आकार से अभिव्यक्त होते हैं, उनकी किस प्रकार की प्रजा किस विधि से उपासना करती है?

नौवें नाथ अयोनिशंकर श्री गोरक्षनाथ ने कहा- राजन! परमेश्वर सत्युग में शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, स्वर्ण-जटाधारी, वल्कलधारी, मृगचर्म से अलंकृत, यज्ञोपवीत, दण्ड, कमण्डल-मण्डित ब्रह्मचारी के रूप में रहते हैं। उस समय मनुष्य शान्त, निर्वैर, सर्वभूत-हितकारी, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में समान, इन्द्रिय-निग्रही, योग परायण, ध्यान निरत होकर सब प्रकार से हंस सुवर्ण, बैकुण्ठ-धर्म-योगेश्वर ईश्वर, मनु, पुरुष, अव्यक्त परमात्मा आदि नामों में भगवान की उपासना करते हैं। त्रेतायुग में भगवान रक्तवर्ण, चतुर्भुज, पिंगलवर्ण, जटाधारी, मेखला, स्त्रुव, श्रुतिधारी, यज्ञ मूर्ति रूप विराजमान रहते हैं। उस समय लोग धर्मात्मा, ब्रह्मचारी, ऋग, यजुः, साम तीन वेदों से प्रतिपादित विधि द्वारा भगवान की यज्ञपुरुष, वृष्णिगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, उरुगाय, वृषाकपि, जयन्त आदि नामों से पूजा करते हैं। द्वापर युग में कृष्णवर्ण, नील वस्त्र, चतुर्भुज, शंख-चक्र-पद्म-गदा--चारों आयुधों से युक्त और श्रीवत्स आदि से समलंकृत भगवान अभिव्यक्त होते हैं। तत्वज्ञानी पुरुष वैदिक और तान्त्रिक विधि से वासुदेव, शिव शंकर, सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ आदि नामों वाले भगवान का भजन करते हैं। कलियुग में भगवान नीलकर्ण, शंख, चक्र, गदा, पद्म, भूषित, चतुर्भुज, नन्दसुनन्दादि पार्षदों से सेवित कल्कि रूप में रहते हैं। उस समय मनुष्य भगवान को ईश्वर, गोरक्ष, माधव,

सर्वज्ञ आदि नामों से भजते हैं। इस तरह चारों युगों में परमेश्वर की आराधना की जाती है। गुणग्राही जन अन्य युगों की अपेक्षा कलियुग की प्रशंसा करते हैं। सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में पूजा से जो फल मिलता है वह फल कलियुग में केवल भक्ति-योग से मिल जाता है। उस समय शिव, गोरक्ष, ईश्वर, प्रभु आदि भक्तों के उपास्य होते हैं। जिस देश में ताम्रपर्णि, कृतमाला, यशस्विनी और कावेरी आदि नदियाँ बहती हैं, उसमें उनका जलपान करते ही तत्काल मनुष्य भगवद् भक्त हो जाते हैं।

जो पुरुष देव-पितृ-ऋषि-गुरु ऋण वाले होते हें, वे भी भगवान की शरण में आकर उऋण हो जाते हैं। भगवान के शरणागत समस्त पापी मुक्त हो जाते हैं।

मिथिला नरेश राजा निमि नौ योगेश्वरों से इस प्रकार भगवद धर्म का वर्णन सुनकर बहुत ही आनन्दित हुए-

धर्मान भागवतान इत्थं श्रुत्वाय मिथिलेश्वरः।
जायन्ते यान् मुनीन् प्रीतः सोमाध्य योव्हपूजयत्॥
ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्व लोकस्य पश्यतः।
राज धर्मानुपातिष्ठन्नत्वा परमां गतिम्॥

विदेहराज निमि ने अपने ऋषि और आचार्यों के साथ नौ नाथ सिद्धों का षोडशोपचार पूजन किया। इसके बाद सब लोगों के सामने ही नव योगेश्वर आकाश मार्ग से अदृश्य हो गए। राजा निमि ने नवनाथों से सुने उपदेशों का आचरण किया और परमगति प्राप्त की।

नव नाथ चरित्र

एवं सिद्धांत सार

प्रकाशक
श्री सरस्वती प्रकाशन
सेंट्रल बैंक के पीछे, चूड़ी बजार, अजमेर
☎ 425505